कारण नहीं करा दिया गया पर जब कारणों की तह में गये सहज ही कारण समझ में आ गया। वास्तविकता यह है कि इस ग्रन्थ की प्रतियां बड़ी दुर्लभ हैं और जो हैं भी वे इतनी अशुद्ध और अस्पष्ट हैं कि उसका हिन्दी अनुवाद करना तो दूर, शुद्ध स्वरूप में लिखना भी बड़ा जटिल और दुस्साध्य कार्य है।

जैन इतिहास और जैनागमों के उद्भट विद्वान् पंन्यास कल्याण विजयजी महाराज साहब ने बहुत वर्षों पहले अपने भण्डार के लिए इस ग्रन्थ की एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति से लिखित प्रति अपने गुरुदेव से प्राप्त की और उसमें संशोधन करने का तथा उसे प्रकाशित करवाने का प्रयास किया। अन्यान्य अत्यावश्यक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे उस कार्य को सम्पन्न न कर सके और इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्थगित ही रहा।

इसी वर्ष जैन आगम-साहित्य तथा प्राकृत एवं संस्कृत आदि भारतीय प्राच्य भाषाओं के विद्वान् ठाकुर गजसिंहजी राठोड़ का जैन इतिहास विषयक खोज हेतु पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब की सेवा में जालोर आना हुआ। श्री केसरविजय जैन ग्रन्थागार की हस्तलिखित ऐतिहासिक प्रतियों का अवगाहन करते समय ठाकुर साहब की शोधप्रधान दृष्टि तित्थो-गाली पइन्नय की उक्त हस्तलिखित प्रति पर पड़ी और उन्होंने पं० कल्याण-विजयजी महाराज के निर्देश एवं मार्ग दर्शन में इस ग्रन्थ का विशुद्ध रूप में [illegible], संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद करना मई, १९७५ में प्रारम्भ किया। [illegible] ग्रंथ की अन्य प्रतियों के अभाव में पं० श्री कल्याणविजयजी और ठाकुर साहब को इस ग्रंथ के अशुद्ध पाठों को शुद्ध करने में अनेक कठिनाइयों का [illegible] करना पड़ा। ठाकुर साहब की प्रार्थना पर स्थानकवासी परम्परा के [illegible] श्री [illegible]जी महाराज साहब ने ठाकुर साहब द्वारा लिखित इस [illegible] अवलोकन [illegible]

यह ग्रंथ प्रेस में छपना प्रारम्भ हो गया था उसके पश्चात् स्वनामधन्य स्व० आचार्य श्री राजेन्द्रसूरीजी महाराज के आहोर नगर स्थित ज्ञान भण्डार से इस ग्रंथ की एक अति प्राचीन प्रति मिली। आहोर भण्डार के व्यवस्थापकों के सौजन्य से श्री राठोड़ को उस प्रति की फोटोस्टेट कापी करवाने की सुविधा मिली और उस फोटो कापी की सहायता से इस ग्रन्थ के कतिपय पाठों को शुद्ध स्वरूप प्रदान करने में बड़ी सुविधा हुई। इसके लिए हम अभिधानराजेन्द्र नामक विशाल ग्रंथराज के रचनाकार स्व० श्री राजेन्द्रसूरी जी के आहोर स्थित ग्रंथागार के व्यवस्थापकों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं।

हमारी यह आंतरिक उत्कट अभिलाषा थी कि इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने वाले पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब के कर-कमलों में इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति शीघ्रातिशीघ्र समर्पित करें पर कराल काल ने हमारी सब आशाओं-अभिलाषाओं को कठोर वज्राघात कर कुचल डाला। केवल जैन जगत् ही नहीं, अपितु इतिहास क्षितिज के प्रकाशमान प्रचण्ड मार्तण्ड पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज इहलीला समाप्त कर स्वर्गस्थ हो गये। हमें केवल इतना ही संतोष है कि इस ग्रन्थ के कतिपय मुद्रित फार्म उनके कर-कमलों में उनके स्वर्गस्थ होने से एक मास पूर्व पहुंच गये थे और उन्होंने इस ग्रन्थ के फार्म देखकर आन्तरिक सन्तोष अभिव्यक्त किया था।

हम अर्चना प्रकाशन, अजमेर के अधिष्ठाता और कर्मचारी वर्ग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ के प्राकृत मूल पाठ, संस्कृत छाया को भी यथाशक्ति शुद्ध रूप में मुद्रित करने में पूर्ण परिश्रम किया।

सदस्यगण,

श्री श्वेताम्बर जैन (चार थुई) संघ, जालोर

एवं

श्री श्वेताम्बर जैन (चार थुई) संघ सायतगढ़।

जिला पाली

स्व. श्री ओटरमलजी बालगोता के सुपुत्र :—

सर्व श्री अमृतचन्दजी और माणकलालजी

ललितकुमारजी और महेन्द्रकुमारजी

मोडमाड़ा जिला जालोर

पंन्यास प्रवर श्री कल्याणविजय जी महाराज साहब

का

जीवन परिचय

मेरे परम आराध्य गुरुदेव पंन्यास श्री कल्याणविजय जी महाराज साहब जैन जगत् के महान् प्रभावक सन्त हुए हैं। उन्होंने जिन शासन की उन्नति और समाज के नैतिक एवं धार्मिक धरातल के उत्कर्ष के लिए अपने ६८ वर्ष के उत्कृष्ट साधनापूर्ण श्रमण जीवन में जो महान् कार्य किये हैं, वे जैन धर्म के इतिहास में सदा सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते रहेंगे। "वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना" नामक ग्रन्थ लिखकर इस महासन्त ने भारतीय इतिहासविदों ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान् इतिहासज्ञों में भी विपुल यश मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। जैनागमों, निर्युक्तियों, चूर्णियों, टीकाओं, भाष्यों एवं इतिहास ग्रन्थों का बड़ा ही गहन और सूक्ष्म अध्ययन कर आपने विविध विषयों पर अधिकाधिक विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। ज्योतिषशास्त्र स्थापत्य और मूर्तिकला के तो वे विशिष्ट विद्वान् माने जाते थे। जैन इतिहास के सम्बन्ध में ग्रन्थों, शोधपूर्ण लेखों, पट्टावलियों आदि के माध्यम से आपने [illegible] शोधपूर्ण तथ्य रखे, उनसे प्रभावित हो अनेक इतिहासविदों ने उन्हें समय-समय पर "इतिहासमार्तण्ड" के सम्मानपूर्ण सम्बोधन से सम्बोधित किया है।

जैन साहित्य और इतिहास के सम्बन्ध में शोध हेतु एक विद्वान् श्रद्धेय [illegible] विविध विषयों के विभिन्न [illegible] शोधपूर्ण [illegible] किये गये, जैन परम्परा [illegible] (भंडार) [illegible]

लाइब्रेरी भण्डार को देखा। वे गुरुदेव के अगाध ज्ञान एवं गरिमापूर्ण बहुमुखी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए। उस समय जो उनके मुख से उनके हृदय के जो उद्गार निकले, उनसे पंन्यासप्रवर कल्याणविजय जी म० सा० की अतिमानव महानता का सहज ही आभास हो जाता है। अतः अति संक्षेप में उनके उन उद्गारों का उल्लेख किया जा है। उन विद्वान ने कहा—

“महाभारत के शान्ति पर्व में एक बड़ा ही हृदयग्राही उल्लेख उपलब्ध होता है। भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र के रणांगण में शरशय्या पर लेटे हुए हैं। शिखण्डी को आगे कर अर्जुन द्वारा किये हुए गांडीव धनुष के शरप्रहारों से संसार के उस अप्रतिम योद्धा के पृष्ठभाग का रोम-रोम छलनी के छेदों के समान बिंधा हुआ है। देह के पिंजरे में इतने गहरे इतने अधिक मर्मान्तक व्रण गाण्डीव के अमोघ बाणों से हो रहे हैं कि प्राण पखेरू को उस पिंजरे में से उड़ जाने के लिए कोई किंचितमात्र भी बाधा नहीं है। पर बालब्रह्मचारी भीष्म इच्छामृत्यु का वरण करने के लिए कृतसंकल्प हैं और सूर्य के दक्षिणायन में आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—कौन्तेय! संसार का ज्ञानसूर्य अस्त होना ही चाहता है। महान् रणयोगी भीष्म सूर्य के उत्तरायण में आते ही देह त्याग देंगे। तुम्हें संसार के किसी भी विषय का; धर्म के मर्म का अथवा विमुक्ति का ज्ञान प्राप्त करना हो तो उनके चरणों में बैठ कर सूर्य के उत्तरायण में आने से पहले-पहले, यह ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। उस नरश्रेष्ठ भीष्म के दिवंगत होते ही विशिष्ट ज्ञान का सूर्य अस्त हो जायगा—

तस्मिन् हि पुरुषव्याघ्रे, कर्मभिः स्वैर्दिवंगते।
भविष्यति मही पार्थ, नष्टचन्द्रेव शर्वरी ॥२०
तद् युधिष्ठिर गांगेयं, भीष्मं भीमपराक्रमम्।
अभिगम्योपसंगृह्य, पृच्छ यत्ते मनोगतम् ॥२१
तस्मिन्नस्तमिते भीष्मे, कौरवाणां धुरंधरे।
ज्ञानान्यस्तं गमिष्यन्ति, तस्मात्त्वां चोदयाम्यहम् ॥२२

—शान्तिपर्व, अध्याय ४६

भीष्म को महाभारत में योगेश्वर कृष्ण ने ज्ञान का पूर्णचन्द्र अथवा दिनमणि बताया है, उसी प्रकार आज के युग में ये महामान्य पंन्यासप्रवर कल्याणविजय जी विविध विषयों के पारदृश्वा ज्ञानसूर्य हैं। जैन विद्वान् ही

ही नहीं सभी विषयों के शोधार्थी इस ज्ञानसूर्य से प्रकाश और मार्गदर्शन प्राप्त कर अपने लक्ष्य में सफलकाम हो सकते हैं। लाख-लाख प्रणाम है इस ज्ञानसूर्य को सरस्वती के महान् उपासक को।

ये उद्गार हैं पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजय जी महाराज के पांडित्य एवं प्रतिभापूर्ण महान् व्यक्तित्व से प्रभावित एक उच्चकोटि के विद्वान् के।

जन्मना अभावों और अभियोगों में पला हुआ निराश्रित शिशु अपने दृढ़ संकल्प और सतत परिश्रम से इतना महान् बन गया, यह अपने आप में एक बड़ी ही अद्भुत, बड़ी ही प्रेरक कहानी है, जो प्रत्येक मानव को यह विश्वास दिलाती है, उसकी धमनियों में कुछ कर गुजरने के लिये एक अद्भुत विद्युत का संचार करती है। अति संक्षेप में उस कर्मयोगी महासन्त का जीवन परिचय 'स्वान्तःसुखाय परहिताय च' दिया जा रहा है—

पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब का जन्म विक्रम सं० १९४४ में भूतपूर्व सिरोही राज्य के लास नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्णा अमावस्या को मृगशिरा नक्षत्र में हुआ। आपके पिता का नाम किशनरामजी और माता का नाम अचीबाई था। आप ब्राह्मण जाति के जागरवाल पुरोहित नाम से विख्यात वंश कुल में उत्पन्न हुए। जिस समय आप १२ वर्ष के अबोध बालक थे उसी समय वि० सं० १९५६ में आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। वि० सं० १९५६ में भारत में बड़ा ही भयानक दुष्काल पड़ा, जिसमें भूख ने लाखों मनुष्यों को [illegible] किया। इतना भयंकर काल था कि नाम सुनते ही सिहर उठने वाले बुजुर्ग आज भी विद्यमान हैं। असहाय विधवा को अपना और अपने बच्चों का पेट भरने के लिये गांव गांव भटकना पड़ा। चरित्रनायक के जन्म से पूर्व ही इनके अग्रज का अल्पायु में देहान्त हो गया था अतः माता-पिता ने [illegible] इस विश्वास से सोचा कि [illegible] जीवित रह जाय। उस [illegible] विश्वास [illegible] ही रहा। आपके पश्चात् आपकी एक बहिन [illegible] का जन्म हुआ।

[illegible]

[illegible]

जन्मभूमि का त्याग और उधर एक मात्र आश्रय माता की दगाता। वि. सं. १९५७ में आपकी माता [illegible]बाई भी अपने अबोध बच्चों को असहाय छोड़ परलोकवासिनी बन गई। १३ वर्ष की छोटी वय में ही हमारे चरित्रनायक को किस प्रकार की भीषण आपत्तियाँ सहनी पड़ीं, इसका अनुमान प्रत्येक पाठक सहज ही लगा सकता है। पर वस्तुतः विपत्ति ही वीरों और विचारकों को जन्म देती है। एक राजस्थानी कवि ने कहा भी है—

संग जल जावे नारियाँ, अर नर जावे कट्ट।
घर बालक सूना रमे, उण घर में रजवट्ट॥

हमारे चरित्रनायक उस समय के तोलाराम ने भी आपत्तियों से घबराकर धैर्य नहीं छोड़ा। उतर पड़े वे कर्मक्षेत्र में। माता की मृत्यु के पश्चात् आपने देवगढ़ के सेठ हंसराजजी प्रेमराज जी पोरवाल के यहाँ आजीविकोपार्जन हेतु कार्य करना प्रारम्भ किया। बारह-तेरह वर्ष की आयु का बालक तोलाराम श्रेष्ठी के घर के काम में जूझने लगा। घर के छोटे बच्चों को रखना, गाय और भैंस को चारा, आटा पीसना, गाय भैंस का दूध निकालना और दधिमन्थन करना, ये बालक तोलाराम के जिम्मे मुख्य काम थे। इनके अतिरिक्त घर के और भी आवश्यक कार्यों को करने में हमारे चरित्रनायक ने किसी प्रकार की आनाकानी नहीं की। "सब को काम प्रिय है न कि चाम (सुन्दर गौरवर्ण)" इस कहावत के अनुसार बालक तोलाराम ने घर भर के लोगों का मन जीत लिया। सभी तोलाराम को अपने घर का ही एक सदस्य समझने लगे।

अध्यापक के पास घर के बालकों को पढ़ते देखकर तोलाराम भी उनके पास बैठ जाता। तीव्रबुद्धि तोलाराम थोड़े ही दिनों में प्रारम्भिक लिखना पढ़ना और गणना सीख गया।

जिस घर में बालक तोलाराम रह रहा था वह घर जैनधर्मावलम्बी था। विविध देशों में विचरण करते हुए जैन साधु-साध्वियों का देवगढ़ में आना-जाना रहता ही था। तोलाराम पर स्नेहातिरेक से घर के लोग बहुधा साधु-साध्वियों को बालक तोलाराम के हाथ से ही आहार-पानी आदि बहराते थे।

संयोग से श्री [illegible]जी महाराज का देवगढ़ में पदार्पण हुआ। उनके साथ [illegible]जी नामक एक वैरागी थे जो आज भी महान् [illegible] के नाम से [illegible] के रूप में विराजमान हैं। वैरागी [illegible] को श्री [illegible]जी महाराज के साथ घूमते हुए देख कर बालक

तोलाराम के अन्तर्मन में भी अध्ययन और ज्ञानार्जन की भूख बड़े ही तीव्र वेग से जागृत हुई। बालक तोलाराम ने श्रेष्ठीपरिवार के समक्ष अपनी आन्तरिक अभिलाषा प्रकट की। उदार श्रेष्ठि-परिवार ने अपना अहोभाग्य समझ तोलाराम को श्रमणश्रेष्ठ कान्तिचन्द्रजी महाराज की सेवा में रहने की अनुमति सहर्ष दे दी।

बालक तोलाराम वैरागी गुलाबचन्द्र के साथ-साथ कान्तिचन्द्र जी महाराज से शिक्षा ग्रहण करने लगा। अहर्निश आत्मार्थी साधुओं के सम्पर्क में रहने के फलस्वरूप बालक तोलाराम भी वैराग्य के गहरे रंग में रंग गया। अनेक वर्षों तक वैरागी शिक्षार्थी के रूप में मुनि कीर्तिचन्द्रजी के पास शास्त्रों का और लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आशुकवि नित्यानन्दजी श्रीमाली के पास सारस्वतचन्द्रिका, सिद्धान्त कौमुदी, सिद्ध हेम शब्दानुशासन, धर्मशर्माभ्युदय कादम्बरी, रघुवंश, श्रुतबोध, वृहद्रत्नाकर एवं ज्योतिष, न्याय आदि विषयों के अनेक ग्रन्थों का मार्मिक अध्ययन किया।

विक्रम सं० १९६४ में वैशाख शुक्ला ६ के दिन सिंह लग्न में ऐतिहासिक नगर जालोर में महामुनि केसरविजयजी महाराज के पास हमारे चरित्रनायक वैरागी तोलाराम पुरोहित ने २० वर्ष की युवा वय में अपने साथी वैरागी गुलाबचन्द के साथ निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय केसरविजयजी महाराज ने तोलाराम का नाम कल्याणविजय और गुलाबचन्द का नाम सौभाग्यविजय रखा।

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् मुनि कल्याणविजयजी ने प्रमाण नयतत्वालोक, स्याद्वादमंजरी, रत्नाकरावतारिका आदि नेक न्यायशास्त्रों, आगमों, निर्युक्तियों, चूर्णियों, महाभाष्यों, ज्योतिषविद्या के ग्रन्थों और इतिहास ग्रन्थों का बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया।

मुनि कल्याणविजयजी के अध्ययन की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही कि विविध विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन करते समय जो भी विशिष्ट, अश्रुतपूर्व और किसी भी दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात किसी भी ग्रन्थ में दृष्टिगोचर हो गई तो उसे उसी समय डायरी में लिख लिया। सरस्वती के इस महान् उपासक सन्त ने जीवन भर अध्ययन करते समय यही क्रम जारी रखा। उनके इस अथक परिश्रम का ही फल है कि उनके हाथ की लिखी हुई सैंकड़ों डायरियाँ, नोटबुकें, रजिस्टर, लेख आदि आज भी उनके ज्ञानभण्डार में विद्यमान हैं, जो अनेक विद्वानों के अभिमत के अनुसार विविध

विषयों के शोधार्थियों के लिए बड़े ही उपयोगी और मार्गदर्शक हो सकते हैं।

६८ वर्ष के अपने साधनापूर्ण जीवन में इस महासन्त ने भारत के सुदूरस्थ विभिन्न प्रांतों में घूम-घूम कर नगर नगर, ग्राम-ग्राम और घर-घर में भगवान् महावीर का दिव्य सन्देश पहुंचाया। अपने अमोघ उपदेशों से समाज में व्याप्त कुरूढ़ियों और अज्ञान को दूर करते हुए, अपने लेखों और ग्रन्थों से भावी पीढ़ियों को सदा के लिए सत्पथ का दिशानिर्देश करते हुए अपना स्वयं का और पर का भी कल्याण कर अपने कल्याणविजय नाम को सार्थक किया।

विक्रम सं० १९९४ में मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन अहमदाबाद में आपको तथा मुनि सौभाग्यविजयजी महाराज को आपके गुरु एवं संघ द्वारा गणिपद प्रदान किया गया। इसी दिन हमारे चरित्रनायक को गणिपद के साथ पंन्यासपद भी प्रदान किया गया।

पंन्यासपद ग्रहण करने से पूर्व और पश्चात् आपने स्थान-स्थान पर अनेक मंदिरों की प्रतिष्ठाएं करवाईं। जालोर में आपकी प्रभावपूर्ण प्रेरणा से जालोर में नन्दीश्वर तीर्थ की स्थापना एवं समाज कल्याण के विविध कार्यों के लिए एक अति विशाल भूखण्ड खरीदा गया। आपकी प्रेरणा से ही संघ ने उस भूखण्ड में आपके अमूल्य निर्देशन में एक अति भव्य और विशाल नन्दीश्वर तीर्थ का निर्माण करवाया, जो भारतवर्ष में सबसे बड़ा नन्दीश्वर तीर्थ है। इस नन्दीश्वर तीर्थ का निर्माण कार्य वर्षों तक चलता रहा और अन्ततोगत्वा वि. सं. २००५ की माघ शुक्ला ६ के दिन आपश्री के करकमलों से ही इस महान् तीर्थ की प्रतिष्ठा करवाई गई। प्रतिष्ठा के समय इस तीर्थ में ५०० मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई गई।

इसी भूखण्ड में समाज के लोगों की सुविधा के लिए तथा इस तीर्थ की यात्रा करने हेतु आये हुए यात्रियों की सुविधा के लिए एक विशाल धर्मशाला का निर्माण करवाया गया। इसी भूखण्ड में शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए सर्वप्रथम एक बाल पाठशाला का निर्माण करवा कर छात्रों को सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान की गई थीं।

यह सब विशाल भूखण्ड पूर्ववर्ती मारवाड़ राज्य के तत्कालीन महाराजा श्री उम्मेदसिंहजी महाराज साहब के कृपा-प्रसाद । [illegible] की सहायता से प्राप्त हुआ था।

वाणी की ही तरह पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज की लेखनी में भी बड़ा चमत्कार और अद्भुत प्रभाव था। सच्ची बात को सयौक्तिक रूपेण डंके की चोट के साथ कहना और लिखना यह उनकी जन्मजात विशेषता थी। सच्ची बात को समाज के समक्ष रखने में उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी से किंचित्मात्र भी भय का अनुभव नहीं किया।

एक अजैन कुल में उत्पन्न हुए शिशु ने अपने दृढ़ संकल्पों एवं अध्यवसायों के बल पर कालान्तर में एक विशाल कल्पतरु के समान विराट् स्वरूप धारण किया, धर्मप्रेमी मानव समाज को अपने अमृतोपम त्रिविधताप से संतप्त मानव समाज को और विशेषतः धर्मप्रेमी समाज को शीतल सघन छाया से शान्ति और उपदेशामृतफलों से तृप्ति प्रदान की और इस प्रकार ६८ वर्ष तक समाज को शान्ति पहुंचाने के अनन्तर इस महासन्त ने विक्रम सं० २०३२ आषाढ़ शुक्ला १३ के दिन प्रातःकाल ६.१५ बजे ८८ वर्ष की आयु में इहलीला समाप्त कर स्वर्गारोहण किया। ज्ञान का सूर्य अस्त हो गया।

आज इस महासन्त का भौतिक शरीर हमारे समक्ष नहीं है पर इनके द्वारा किये गये समाजहित, संघहित और जनकल्याण के कार्य शताब्दियों तक भावी पीढ़ियों को मार्गदर्शन कराते हुए प्रेरणा देते रहेंगे।

कोटि-कोटि प्रणाम है उस महान् विभूति को।

● मुनि मुक्तिविजय



सम्पादकीय

'खियोगासी वहम्मां'—नामक इस सैद्धान्तिक एवं इतिहास ग्रन्थ के सम्पादन, छाया एवं हिन्दी अनुवाद करने की इसी वर्ष (१९७५) के प्रथम चरण में श्रीमान् श्री [illegible] महाराज साहब ने मुझे प्रेरणा की। मैंने उस महाग्रन्थ की छाया लिखवाने पर उनके द्वारा सर्वशोधित प्रति के आधार पर [illegible] इस कार्य को मई १९७५ में प्रारम्भ किया। प्रति बड़ी ही अशुद्ध थी। अनेक स्थलों को देखकर तो मन पर निराशा भी हुई। दुविधा थी कि इस प्रकार का महान कार्य मैं सम्पन्न कर भी सकूँगा अथवा नहीं। पर जिस कार्य को एक बार हाथ में ले लिया उसे अधूरा छोड़ने की आत्मस्वभाव ने स्वीकृति नहीं दी।

यों तो मैं इस ऐतिहासिक ग्रन्थ से पूर्णतः अपरिचित नहीं था। इसके [illegible] अनेक ग्रन्थों और इतिहास लिखने में [illegible] रहा था। सन् १९७१-७२ में [illegible] गौरव [illegible] 'कहावतों' के साथ-साथ खियोगासी [illegible] का [illegible] था। [illegible] दोनों ग्रन्थों के [illegible] में [illegible] हुई थी। खियोगासी वहम्मां की [illegible] और भारतीय इतिहास [illegible]

अवस्थाओं में कतिपय अहोरात्रों तक चिन्तन का विषय भी रह चुकी थीं। विद्यार्थी जीवन में कुछ आगमों का अध्ययन करते समय अन्तःस्थल में एक तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई थी कि सौभाग्य से यदि कभी सुअवसर मिला तो आगमों का सुन्दर अनुवाद और विवेचन करूँगा। चालीस वर्षों के लम्बे व्यवधान के पश्चात् उस उत्कण्ठा के अनुरूप अवसर मिला है तो इस अवसर को निराशा के घने कोहरे में खो देना उचित नहीं इस विचार से मनोबल जागृत हुआ और इस कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उत्कट चिन्तन और अहर्निश प्रयास से उत्तरोत्तर सफलताएँ मिलती गईं, उत्साह बढ़ता गया। अन्ततोगत्वा ढाई मास के कठोर बौद्धिक परिश्रम से ग्रन्थ की मूल गाथाओं, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद का आलेखन पूरा हुआ। मेरे आराध्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने अपनी अत्यधिक व्यस्त दैनन्दिनी में से पर्याप्त समय निकाल कर इस ग्रन्थ के पाठों में अपेक्षित संशोधन किया। वास्तविकता तो यह है कि आचार्य श्री की असीम अनुकम्पा से ही मैं इस कार्य को कर सका हूँ।

इस ग्रन्थ की ८०० गाथाओं की छाया और अनुवाद कर लेने के पश्चात् श्री राजेन्द्रसूरिजी महाराज के आहोर भण्डार से इस ग्रन्थ की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी मिल गई। जोधपुर में २५-६-७५ को इस प्रति की फोटोस्टेट कापियां तैयार करवाईं। यद्यपि यह प्रति भी अशुद्धियों से भरी थी पर दो प्रतियां हो जाने के कारण पाठों के मिलान और शुद्धीकरण में पर्याप्त सहायता मिली।

इस ग्रन्थ के संपादन के लिये इसकी अनेक प्रतियों की आवश्यकता के साथ-साथ एतद्विषयक शोध के लिये गहन अध्ययन, विपुल ऐतिहासिक सामग्री, कठोर श्रम और पर्याप्त समय की आवश्यकता थी और है। क्योंकि इसकी अनेक गाथाएं अव्यवस्थित और अत्यधिक अशुद्ध होने के साथ साथ समवायांग आदि आगमों में और अन्यान्य ग्रन्थों में भी थोड़े परिवर्तित स्वरूप में उपलब्ध होती हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के मूल तथा टीकागत अनेक शब्द और वाक्यांश भी इसकी गाथाओं में यथावत् स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब तथ्य इस ग्रन्थ के रचनाकार के समय आदि के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये बड़े सहायक हो सकते हैं। इन सब गहराइयों में उतरने के लिये आवश्यक अध्ययन क्षमता, समय, सामग्री आदि साधनों का मैं अपने आप में अभाव अनुभव करता हूं।

इस ग्रन्थ के विहंगमावलोकन से ही प्रत्येक पाठक को विश्वास हो जायगा कि यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है न कि किसी अन्य परम्परा का। यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है, इस तथ्य को सिद्ध करने वाले प्रमाण इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर एक नहीं अनेक भरे पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर हुण्डावसर्पिणी काल में होने वाले १० आश्चर्यों का इसमें विशद विवेचन किया गया है। इन दस आश्चर्यों का उल्लेख करने वाली जो गाथा श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों में उपलब्ध होती है, वह उसी रूप में इस ग्रन्थ में विद्यमान है। आगम साहित्य के अध्येताओं में से आज अधिकांश की यही धारणा है कि दस आश्चर्य केवल जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल की चौबीसी के काल में ही हुए। पर प्रस्तुत ग्रन्थ तित्थोगाली पइन्नय में स्पष्ट उल्लेख है कि ये दस आश्चर्य प्रवर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में ढाई द्वीप के ५ भरत और पांच ऐरवत— इन दसों क्षेत्रों में हुई दसों ही चौबीसियों के काल में हुए और उसके परिणामस्वरूप जिस समय भरत क्षेत्र में १९वें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ स्त्रीरूप में उत्पन्न हुए उसी समय अन्य ४ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्रों में भी १९ वें तीर्थंकर स्त्री रूप में ही उत्पन्न हुए।

जहां तक इस ग्रन्थ के प्रणयनकाल का प्रश्न है—इस समग्र ग्रन्थ में प्रतिपादित तथ्यों का गहराई से चिन्तन मनन करने पर भी इस प्रश्न का कोई स्पष्ट प्रामाणिक अथवा सर्वमान्य उत्तर नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ की गाथा संख्या ८७१ में "निव्वाणिय सियवाई" यह अन्तिम चरण और ८७२ और ८७३ में क्रमशः "जो सियवायं भासति" तथा "जो सियवायं निंदति" इन दो अन्तिम चरणों को देखकर अनेक विद्वान् इस ग्रन्थ के प्रणेता का समय अनुमानित करने का प्रयास करते आये हैं पर मेरी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की अटकलबाजी से कोई सुनिश्चित सर्वमान्य निर्णय अथवा निष्कर्ष नहीं निकलने वाला है जिस "सियवाद" (स्याद्वाद) शब्द के आधार पर अनुमान की दौड़ लगाई जा रही है वह स्वयं ही विवादास्पद है। सुनिश्चित रूप से प्रमाणपुरस्सर आज कोई विद्वान् यह नहीं कह सकता कि अमुक समय से "स्याद्वाद" शब्द का प्रयोग जैन वाङ्मय में हुआ। जब स्याद्वाद शब्द के प्रादुर्भाव का समय ही अन्धकार में विलीन है तो उसके आधार पर अन्य ग्रन्थ का समय किस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है। अनिर्णीत और अनिश्चित तथ्य को आधार मान कर किसी ग्रन्थ

इन सब अभावों की स्थिति में भी मैंने अपनी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस ग्रन्थ को सर्वांग सुन्दर और विद्वद्भोग्य बनाने का पूरी लगन के साथ प्रयास किया है। मैं इस कार्य में कितना सफल हो सका हूं, इसका निर्णय तो पाठकों पर ही निर्भर करता है।

इतिहास में थोड़ी अभिरुचि होने के कारण विगत अनेक वर्षों से इस ग्रन्थ को उपलब्ध करने और पढ़ने की तीव्र उत्कण्ठा थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इतिहास के अनेक विद्वान्, कतिपय शोधार्थी और इतिहास में थोड़ी बहुत भी अभिरुचि रखने वाले विज्ञ इस ग्रन्थ को पढ़ने के लिये लालायित रहे हैं। पर अद्यावधि इसका प्रकाशन न होने के कारण उनको इसे पढ़ने ही नहीं देखने तक भी उत्कण्ठा अपूर्ण ही रही है। पिछले चार पांच वर्षों से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के ये विचार भी पढ़ने को मिले कि यह ग्रन्थ न श्वेताम्बर परम्परा का है और न दिगम्बर परम्परा का ही, यह तो यापनीय परम्परा के समान किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है। इतिहास-प्रेमियों की इसे पढ़ने की जिज्ञासा को शान्त करने की इच्छा के साथ साथ यह ग्रन्थ किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है, इस भ्रान्ति को दूर करने की अदृष्ट प्रेरणा भी न मालूम क्यों मेरे अन्तःकरण में स्फुरित हुई और उत्तरोत्तर बलवती होती ही गई। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि अपनी सामर्थ्य से बाहर के इस ग्रन्थ के सम्पादन जैसे गुरुतर भार को अपने सिर पर वहन करने का मैंने साहस कर लिया।

इक्ष्वाकुवंश पर महाकाव्य का प्रणयन करते हुए महाकवि कालिदास जैसे समर्थ विद्वान् ने भी निम्नलिखित श्लोकार्द्ध द्वारा उस महान् कार्य के निष्पादन के लिये अपने आपको अल्पमति बताते हुए कहा है:—

'क्व सूर्यप्रभवो वंश, क्व मे अल्पविषया मतिः।'

तो ऐसी दशा में अनादि अनन्त जिनेन्द्रवंश और उस जिनेन्द्र वंश द्वारा प्रतिपादित धर्मतीर्थ के प्रवाहों का विवरण प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थराज का सम्पादन प्रयास मेरे जैसे स्वल्पातिस्वल्पज्ञ अकिंचन व्यक्ति के लिये कितना हास्यास्पद है, इस विचारमात्र से ही किसी अन्य की तो क्या कहूं मैं स्वयं भी अपने आप पर हंस पड़ता हूं। पर जो कार्य कर रहा हूं वह अति श्रेष्ठ है, अति पुनीत है और कर्मकलुष को ध्वस्त करने वाला है, इस विचार से पुनः आश्वस्त और प्रकृतिस्थ हो जाता हूं।

के किसी तथ्य के निर्णय पर पहुंचने का प्रयास किया जाय तो वह निर्णय भी अनिर्णीत, अनिश्चित, अप्रामाणिक और अस्वीकार्य ही होगा।

मैंने भी अपने सामर्थ्य के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रणेता का समय सुनिश्चित करने का पर्याप्त प्रयास किया है। इस ग्रन्थ की एक एक गाथा का पर्यालोचन करते समय मेरी दृष्टि अनेक ऐसी गाथाओं पर पड़ी, जिन्हें मैंने इस समस्या के समाधान करने में आंशिक रूपेण आधार बनाने की बात सोची। उनमें से गाथा इस प्रकार है:—

भगवं कह वुच्छिण्णो, नट्ठाओ उवरिमाई चत्तारि।
एवं जहा विदिट्ठं, इच्छइ सम्भावतो कहिउं ॥७०३॥

अर्थात्—"भगवन् ! ऊपर के (ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां और चौदहवां, ये अन्तिम) चार पूर्व किस प्रकार नष्ट हो गये ? इस सम्बन्ध में आपने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा जैसा देखा—जाना है, वह कृपा कर मुझे बताइये।"

यह गाथा इस ग्रंथ के रचनाकाल के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये सहायक सिद्ध हो सकती है। इस गाथा में प्रश्नकर्ता स्वाध्यायी श्रमण ने सर्वज्ञकल्प विशिष्टज्ञानी गुरु से केवल अन्तिम चार (ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें) पूर्वों के नष्ट होने का कारण ही पूछा है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ में उल्लिखित [illegible] प्रश्नकर्ता श्रमण के समय में दस पूर्व यथावत् पूर्णरूपेण विद्यमान थे। यदि इन पूर्वों में से पांच, चार, तीन, दो अथवा एक भी पूर्व उनके समय में विद्यमान नहीं होता तो वह चार पूर्वों के नष्ट होने का कारण पूछने के स्थान पर नौ, दस, ग्यारह, बारह अथवा १३ पूर्वों के नष्ट होने का कारण अपने विशिष्ट ज्ञान [illegible] गुरु से पूछता। इससे स्पष्टतः यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन-काल में १० पूर्व यथावत् विद्यमान थे।

इस अनुमान की पुष्टि इस बात से भी होती है कि प्रस्तुत 'तित्थोगाली पइन्नय' ग्रन्थ में भगवान् महावीर के छठे पट्टधर आर्य स्थूलभद्र तक ही पट्टधरों के नाम का उल्लेख है। आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् किसी एक पट्टधर का भी इस ग्रन्थ में उल्लिखित पट्टधरपरम्परा में नहीं किया गया है। यदि पट्टधरों के नामानुक्रमी क्रम से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया जाता तो आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् हुए आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ती, आर्य

बलिस्सह आदि दशपूर्वधर महान् आचार्यों का तथा वीर नि० सं० ५२५ के आसपास स्वर्गस्थ हुए अन्तिम दशपूर्वधर आचार्य आर्यवज्र का और साढ़े नव पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने वाले एवं अनुयोगों का पृथक्करण करने वाले आर्यरक्षित का कहीं न कहीं अवश्य ही उल्लेख किया जाता।

मेरे इस अनुमान की पुष्टि करने वाले और भी अनेक प्रमाण इस ग्रन्थ में विद्यमान हैं। इस पूरे ग्रन्थ को पढ़ने से ग्रन्थकार की एक विशिष्ट शैली पाठक के समक्ष साक्षात् साकार हो उठती है। जो जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल से पूर्व घटित हो चुकी थीं उनके लिए ग्रन्थकार ने प्रत्येक धातु का भूतकाल का प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित गाथाएँ चिन्तनीय एवं मननीय हैं—

एतेण कारणेन, पुरिसजुगे अठमम्मि वीरस्स।
सवराहेण पणट्ठाइं, जाण चत्तारि पुव्वाइं ॥८०३
तं एवमंगवंसो य, नंदवंसो मरुयवंसो य।
सवराहेण पणट्ठा, समयं सज्झायवंसेण ॥८०५

इन गाथाओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन मनन करने तथा 'पणट्ठाइं' और 'पणट्ठा' शब्दों के भूतकाल के प्रयोग पर विचार करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन से पूर्व ही चार पूर्व,— स्वाध्याय वंश (अनवष्टप तप, पारंचित तप और चार पूर्व) और नन्दवंश नष्ट हो गये थे। यहां जो 'मरुयवंस' के नष्ट होने का उल्लेख है वह शोध का विषय है। मौर्य वंश का द्योतक तो यह नहीं हो सकता क्योंकि इसमें न तो कहीं मौर्यवंश का ही उल्लेख है और न मौर्यकाल की आदि से लेकर अन्त तक की किसी एक भी घटना का ही।

जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक घटित नहीं हुई हैं उनका उल्लेख करते समय ग्रन्थकार ने सर्वत्र प्रत्येक धातु का भविष्यत् काल का रूप दिया है। स्थूलभद्र के समय तक की घटनाओं के सम्बन्ध में भूतकाल का प्रयोग कर चुकने के तत्काल पश्चात् की गाथा संख्या ८०७ के —

'होही अपच्छिमो किर, दसपुव्वी धारओ वीरो'

इस अन्तिम अर्द्धभाग में 'होही' अर्थात् 'भविष्यति' शब्द प्रयोग स्पष्टतः यही प्रकट करता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के बहुत काल पश्चात् यह घटना घटित होगी। शेष पूर्वों के विच्छेद तथा एकादशांगी के ह्रास

का आगे की जिन-जिन गाथाओं में उल्लेख किया गया है वहीं सब जगह भविष्यत्काल का ही प्रयोग है। गाथा संख्या ८०८—

एयस्स पुव्वसुय सायरस्स, उदहिव्व अपरिमेयस्स।
मुणसु जह अप काले, परिहाणी दीसते अच्छा ॥

में प्रयुक्त 'जह', 'अप', 'काले' और 'पच्छा' शब्द साधारण से साधारण विचारक के हृदय पर यही छाप अंकित करते हैं कि इस गाथा से पूर्व की घटनाएं इस ग्रन्थ के प्रणयन काल से पूर्व घटित हो चुकी थीं और इस गाथा से आगे जिन घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, वे सब घटनाएं इस ग्रन्थ के प्रणयन के पश्चात् घटित होंगी।

इन सब प्रमाणों से यह अनुमान किया जाता है कि यह रचना दशपूर्वधर काल की है। पर इसका स्वरूप थोड़ा विकृत हो चुका है। नन्दीसूत्र के आद्य मंगल में उल्लिखित संघस्तुति की तीन चार गाथाएं प्रस्तुत ग्रन्थ में भी यथावत् रूपेण विद्यमान हैं। इन गाथाओं से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि यह रचना वीर निर्वाण सं० १००० में स्वर्गस्थ हुए आर्य देवर्द्धि गणी के पश्चाद्वर्ती काल की है। क्योंकि इस ग्रन्थ में अनेक गाथाएं प्रक्षिप्त हैं, यह बात तो इस ग्रन्थ की अन्तिम गाथा से ही सिद्ध हो जाती है। इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर गाथाओं की संख्या १२५६ अंकित की गई है जब कि इस ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् दी गई इस गाथा में इस की कुल गाथाओं की संख्या १२३३ ही दी गई है।

इन सब तथ्यों से यही सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ का रचना काल वीर नि० सं० २१५ के पश्चात् का दशपूर्वधर काल है और नन्दी सूत्र के आद्य मंगल की जो गाथाएं इसमें उल्लिखित हैं वे वस्तुतः इसमें पश्चाद्वर्ती काल में प्रक्षिप्त की गई हैं। भाष्यों, चूर्णियों आदि अन्य जैन वाङ्मय में जो इसकी गाथाएं उपलब्ध होती हैं वे निश्चितरूपेण इसी ग्रन्थ से प्राचीन काल में ली गई हैं।

इस ग्रन्थ की जो ताड़पत्रीय प्रति पाटन के भण्डार में है वह भी अति प्राचीन (संभवतः वि० सं० १५०० के आस पास की—मेरे पास लिखित लेखन संवत् है पर इस ग्रन्थ के १०० ताड़पत्रों की हुई पत्र हैं, अतः लिपिबद्ध और पत्र है इस का लेखन संवत् नहीं मिल सका) है। इस ताड़पत्रीय प्रति के अनुरूप लेखन से यह अनुमान किया जाता है कि ताड़पत्रों पर ही लिखी और

कण्ठ परम्परा से आये हुए इस ग्रन्थ के पाठ उस ताड़पत्रीय प्रति में लेखन के समय तक कतिपय अंशों में विस्मृत और विकृत हो चुके थे।

प्रेस के व्यवस्थापक ने संशोधन हेतु मेरे पास प्रूफ भेजने में असमर्थता प्रकट करते हुए प्रूफ देखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ही ले लिया था। प्राकृत और संस्कृत के प्रूफ देखने में तो कठिनाई अवश्य भावी है। इस कारण इस पुस्तक की छपाई में कतिपय अशुद्धियां रह गई हैं जो इसलिए क्षम्य हैं कि संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद को देखने पर किंचित् अशुद्धियां रह गई हैं उन्हें प्रत्येक पाठक स्वतः ही ठीक कर सकता है।

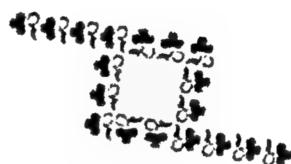
मेरे स्वयं के प्रमाद, बुद्धि व्यामोह अथवा समयाभाव के कारण भी सम्भव है अशुद्धियां रह गई हों। मुझे सहृदय पाठकों पर पूर्ण विश्वास है कि वे मुझे इसके लिये अवश्यमेव क्षमा कर देंगे।

गजेन्द्र सदन, लोटोती (पाली)
दि० २५-१०-७५

ठाकुर गजसिंह राठोड़
न्यायव्याकरण-तीर्थ



शुद्धि-पत्र



अशुद्ध	शुद्ध	गाथा	पृष्ठ
पाव	पिव	११ छाया	४
भाव विभनि	भाव विभक्ति	१७	५
गंधु	धु	२२	७
निक्कोड द	निक्कोडण	६८	२१
निव्वाहमु ब	णिव्वुडं	६८ छाया	२१
पदाकर	सब वस्तुओं के समान	६८ पद्य	२१
गुणशीत	गुणशील	७११	२२०

तित्थोगाली पइन्नय

तीर्थोद्गारिक प्रकीर्णक

जयइ ससिपाय-निम्मल-तिहुयण-वित्थिण्ण-पुण्णजस-कुसुमो ।
उसभो केवल-दंसण-दिवायरो दिट्ठदट्ठव्वो ।१।
(जयति शशिपाद*-निर्मल त्रिभुवन विस्तीर्ण पुण्य-यश कुसुमः ।
ऋषभः केवल-दर्शन-दिवाकरः दृष्ट-द्रष्टव्यः ।)

चन्द्रकिरण के समान समुज्ज्वल, जिनका पावन यश रूपी पुष्प सम्पूर्ण (ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्) लोकों में व्याप्त है, वे संसार के समग्र चर-अचर एवं रूपी-अरूपी पदार्थों को देखने—जानने वाले अनन्तदर्शन के सूर्य प्रभु ऋषभदेव जयवन्त हैं ।१।

बावीसइं च निज्जियपरीसह-कसाय-विग्घ-संघाया ।
अजियाईया भवियारविन्द-रविणो जयंति जिणा ।२।
(द्वाविंशति च निर्जित-परीषह-कषाय-विघ्न-संघाता ।
अजितादिका भविकारविन्दरवयः जयंति जिनाः ।)

परीषहों, कषायों और विघ्नों के (सम्पूर्ण) समूहों पर (पूर्णतः) विजय प्राप्त करने वाले एवं कमलपुष्प स्वरूप भव्य प्राणियों के लिये सूर्यों के समान (सुखप्रद) भगवान् अजितनाथ आदि बावीस तीर्थंकर जयवन्त हैं ।२।

जयइ सिद्धत्थ-नरिंद-विमल-कुल विउल नहयल-मयंको ।
महिपालमलिमउडमणिमहियमहिओ महावीरो ।३।
(जयति सिद्धार्थनरेन्द्रविमलकुल-विपुल नभस्तल-मृगांकः ।
महिपाल-मौलि-मुकुट-मणि-महितो महावीरः ।)

महाराज सिद्धार्थ के उज्ज्वल कुलरूपी गगन मण्डल के पूर्णचन्द्र तथा नरेन्द्रों, महर्षियों, नागेन्द्रों और सुरेन्द्रों (द्वारा वन्दित) भगवान महावीर जयवन्त हैं ।३।

* [illegible]

नमिऊण समण-संघं सुनाय-परमत्थ-पायडं वियडं ।
वोच्छं निच्छयमत्थं, तित्थोगालीए संखेवं ।४।
(नत्वा श्रमण-संघं सुज्ञात-परमार्थ-प्राकृतं विकटं ।[1]
वक्ष्यामि निश्चितार्थं, तीर्थोद्गालिकस्य संक्षेपम् ।)

परमार्थ के पूर्णरूपेण ज्ञाता, अनादि और विराट श्रमणसंघ को नमन कर मैं तीर्थोद्गार[2] (तीर्थोद्गम) अथवा तीर्थ के ओग्गालों[3] (दश क्षेत्रों में) प्रवाहों के सुनिश्चित अर्थ का संक्षेपतः कथन करूँगा ।४।

रायगिहे गुण-सिलए भणिया वीरेण गणहराणं तु ।
पयसयसहस्समेयं, वित्थरओ लोगनाहेणं ।५।
(राजगृहे गुणशीलके, भणिता वीरेण गणधरेभ्यस्तु ।
पदशत-सहस्रमेतं, विस्तरतः लोकनाथेन ।)

त्रिलोकीनाथ भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के गुणशीलक नामक उद्यान में विस्तारपूर्वक एकलाख पद-प्रमाण तीर्थोद्गारिक अथवा तीर्थ प्रवाहों के प्रकीर्णक का कथन गणधरों को किया ।५।

अइ संखेवं मोत्तुं, मोत्तूण पवित्थरं अहं भणिमो ।
अप्पक्खरं महत्थं, जह भणियं लोगनाहेण ।६।
(अति-संक्षेपं मुक्त्वा, मुक्त्वा प्रविस्तरं अहं भणामि ।
अल्पाक्षरं महार्थं, यथा भणितं लोकनाथेन ।)

अति संक्षेप और अति विस्तार इन दोनों पद्धतियों का परित्याग कर मैं प्रगाढ़ अर्थ भरे स्वल्पाक्षरों में उसका उसी प्रकार वर्णन करूँगा जिस प्रकार कि विश्वनाथ (प्रभु महावीर) ने कहा था ।६।

कालोउ अणाईओ, पवाहरूवेण होइ नायव्वो ।
निहणविहूणो सो च्चिय, बारस अरगेहिं निद्दिट्ठो ।७।
(कालस्तु अनादिकः, प्रवाहरूपेण भवति ज्ञातव्यः ।
निधन-विहीनः स खलु, द्वादशारकैः निर्दिष्टः ।)

---

१ महान्तम् । २-३ देखिये 'पाइयसद्द-महण्णवो

काल अनादिकाल से (नदी के) प्रवाह के समान निरन्तर गतिशील है, यह जानना चाहिए। वह (काल) अन्तरहित है और बारह अरों (काल विभागों) द्वारा उसका निर्देश किया गया है।७।

दव्वट्ठयाए निच्चो, होई अणिच्चो अ नयमए बीए।
एगन्तो मिच्छत्तं, जिणाण आणा अणेगंता।८।
(द्रव्यार्थतया नित्यः भवति अनित्यश्च नयमते द्वितीये।
एकान्तो मिथ्यात्वम्, जिनानां आज्ञा अनेकान्ता।)

वह कालद्रव्य द्रव्यार्थिक नय अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा नित्य-शाश्वत और द्वितीय पर्यायार्थिक नय अर्थात् पर्याय की अपेक्षा अनित्य (विनाशशील) है। इसे एकान्तरूप से नित्य अथवा अनित्य मानना मिथ्यात्व है क्योंकि जिनेश्वरों (वीतराग सर्वज्ञों) ने अनेकान्त (स्याद्वाद) सिद्धान्त को स्वीकार करने की आज्ञा प्रदान की है।८।

ओसप्पिणी य उस्सप्पणी य, भरहे तहेव एरवए।
परियत्तंति कमेणं, सेसेसु अवट्ठिओ कालो।९।
(अवसर्पिणी च उत्सर्पिणी च, भरते तथैव ऐरवते।
पर्यटनः क्रमेण, शेषेषु अवस्थितः कालः।)

ढाई द्वीप के पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्रों में अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल क्रमशः परिभ्रमण करते रहते हैं। शेष सभी क्षेत्रों में यह काल अपरिवर्तनीय रूप में सदा एक समान विद्यमान रहता है।९।

ओसप्पिणी पमाणं, भणंति लोगुत्तमा निहयमोहा।
सव्वण्णू जिण-वरिंदा, समासओ मे निसामेह।१०।
(अवसर्पिणी प्रमाणं, भणंति लोकोत्तमा निहत-मोहाः।
सर्वज्ञाः जिनवरेन्द्राः, समासतः मे निशामयत।)

मोह को विनष्ट करने वाले लोकोत्तम सर्वज्ञ जिनेश्वर (संक्षेप में) अवसर्पिणी काल का (जो) प्रमाण बताते हैं, उसे संक्षेप में सुनिये।१०।

जोयण वित्थिण्णोखलु पल्लो* एगाहिय-परूढाणं ।
भरिओ असंख-खंडियकयाण वालग्ग-कोडीणं ।।११।
(योजन-विस्तीर्णः खलु पल्यः एकाह्निक प्ररूढाणाम् ।
भरितअसंख्यखण्डीकृतानां वालाग्र-कोटीनाम् ।)

एक योजन (४ कोस) लम्बे, चौड़े और गहरे एक पल्य (वस्तु रखने का खड्डा) को दो दिन पहले जन्मे हुए यौगलिक शिशुओं के एक एक बाल को करोड़ करोड़ अति सूक्ष्म टुकड़े कर, बालों के उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म टुकड़ों से (दबा दबा) कर भर दिया जाय।११।

वाससए वाससए, एक्किक्के अवहडंमि जो कालो ।
सो कालो बोधव्वो, उवमा एक्कस्स पल्लस्स ।१२।
(वर्ष शते वर्ष शते, एकैके अपहृते यः कालः ।
स कालो बोधव्यः, उपमा एकस्य पल्यस्य ।)

उस पल्य में से बाल के एक एक टुकड़े को एक एक सौ वर्षों के अन्तर से निकाला जाय। इस प्रकार उन बालों के टुकड़ों से उस पल्य के पूर्णरूपेण रिक्त होने में जितना समय लगता है, उस समय को एक पल्य की उपमा से समझना चाहिए।१२।

एतेसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।
तं सागरोवमस्स उ, एकस्स भवे परिमाणं ।१३।
(एतेषां पल्यानां कोट्या कोटिः भवेत् दशगुणिताः ।
तत् सागरोपमस्य तु, एकस्य भवेत् परिमाणम् ।)

इस प्रकार के दश कोटाकोटि पल्योपमों का एक सागरोपम परिमाण वाला काल होता है। अर्थात् दश कोटाकोटि पल्योपम का सागरोपम काल होता है।१३।

दस कोडाकोडीए सागरनामाण हुंति पुण्णाउ ।
ओसप्पिणीपमाणं, तहेवुसप्पिणीए वि ।१४।

---

* पल्लो-पल्य पल्यकःखलु यत्र कापि वस्तु घ्रियते ।

(दश कोट्या कोटिसागरनाम्नां भवन्ति पूर्णास्तु ।
अवसर्पिणीप्रमाणं, तथैव उत्सर्पिण्या अपि ।)

सागरोपम नामक इस काल की दश कोटा-कोटि संख्या जब पूर्ण हो जाती है, तो उस काल को अवसर्पिणी-परिमाण काल कहते हैं। अवसर्पिणी काल के समान उत्सर्पिणी काल भी दस कोटाकोटि सागरोपम का होता है।१४।

ओसप्पिणी य उस्सप्पिणी य, दोन्निवि अणाइनिहणाओ ।
न वि होई अति कालो, नवि होही सव्वसंखेवो ।१५।
(अवसर्पिणी च उत्सर्पिणी च द्वे ऽपि अनादिनिधने ।
नापि भवति अतिकालः नापि भवति सर्व-संक्षेपः ।)

अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल—ये दोनों अनादि काल से (इसी प्रकार) चले आ रहे हैं। इनके इस काल-परिमाण में न कभी किञ्चिन्मात्र भी आधिक्य होता है एवं न कभी किञ्चिन्मात्र न्यूनता ही।१५।

ते चेव कालसमया तासिं वोच्छामहे समाणेणं ।
ओसप्पिणी अणुलोमा, पडिलोमुस्सप्पिणी भणिया ।१६।
(तौ चैव काल समयौ तयोः वक्ष्यामहे समानेन ।
अवसर्पिणी अनुलोमा, प्रतिलोमा उत्सर्पिणी भणिता ।)

ये काल के दो विभाग हैं। इनका भी समान रूप से विवरण प्रस्तुत करूँगा। अवसर्पिणी काल अनुलोम अर्थात् ह्रासोन्मुख और उत्सर्पिणी काल प्रतिलोम अर्थात् उत्कर्षोन्मुख कहा गया है।१६।

इच्चेव काल समया हवंति ओसप्पिणीए भरहमि ।
तेसिं नामविभत्तिं, अहक्कमं कित्तइस्सामि ।१७।
(एवं चैव कालसमयाः भवंति अवसर्पिण्याः भरते ।
तेषां नाम-विभक्तिं, यथाक्रमं कीर्तयिष्यामि ।)

भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के छः विभाग होते हैं। उनके नाम और विभागों का मैं यथाक्रम से वर्णन करूँगा।१७।

सुसमसुसमा य सुसमा, तइया पुण सुसमदूसमा होई ।
चउत्थी दूसम सुसमा* दूसम अतिदूसमा छट्ठी ।१८।
(सुषमसुषमा च सुषमा, तृतीया पुनः सुषमदुःषमा भवति ।
चतुर्थी दुःषम सुषमा, दुःषमा, अतिदुःषमा षष्ठी ।)

सुषमसुषमा, सुषमा, तीसरा सुषम—दुःषमा, चौथा दुःषम-सुषमा पांचवां दुःषमा और छठा अतिदुःषमा ।१८।

एते चेव विभागा, नवरं उस्सप्पिणीए छच्चेव ।
पडिलोमा परिवाडीए, तेसि होइ नायव्वा ।१९।
(एते चैव विभागा, नवरं उत्सर्पिण्यां षड् चैव ।
प्रतिलोमाः परिपाट्या, तेषां भवति ज्ञातव्याः ।)

ये ही छः काल विभाग उत्सर्पिणी काल में भी होते हैं परन्तु यह ज्ञातव्य है कि वे अवसर्पिणी काल के छः काल विभागों के प्रतिलोम अर्थात् उल्टे अनुक्रम से होते हैं ।१९।

सुसमासुसमाएउ चत्तारि हवंति कोडाकोडीउ ।
तिण्णि सुसमाए कालो, दो सुसमदूसमाए उ ।२०।
(सुषमासुषमायां तु चतस्रः भवन्ति कोटिकोट्यः ।
तिस्रः सुषमायां कालः, द्वे सुषमादुःषमायां तु ।)

सुषमसुषमा नामक आरक चार कोटाकोटि सागरोपम का, सुषमा नामक आरक तीन कोटाकोटि सागरोपम का और सुषम-दुःषमा नामक आरक दो कोटाकोटि सागरोपम काल का होता है ।२०।

एक्का कोडाकोडी, बायालीसाए तह सहस्सेहिं ।
वासाण होइ ऊणा, दूसमसुसमाए सो कालो ।२१।
(एका कोटिकोटिः द्वाचत्वारिंशद्ः तथा सहस्रैः ।
वर्षाणां भवति ऊना, दुःषमसुषमाया स कालः ।)

* प्रति में 'सुसमाचउत्थी' पाठ है, जो किसी लिपिकार की त्रुटि का आभास कराता है ।

दुःषम सुषमा नामक आरक बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम का होता है।२१।

अह दुसमाए कालो, वाससहस्साइं एक्कवीसं तु।
तावइओ चेव भवे, कालो अइदूसमाए वि।२२।
(अथ दुःषमायां कालः, वर्षसहस्राणि एकविंशति तु।
तावान् चेव भवेत्, कालः अति दुःषमाया अपि।)

दुःषमा नामक आरक इक्कीस हजार वर्ष का और अति दुःषमा (दुःषमदुःषमा) नामक आरक भी उतने ही अर्थात् इक्कीस हजार वर्ष का होता है।२२।

नवसागरोवमाण, कोडाकोडीओ होंति दुगुणाओ।
जा होइ अकम्मभूमी भरहेरवएसु वासेसु।२३।
(नव सागरोपमानां, कोटिकोट्यः भवन्ति द्विगुणिताः।
या भवति अकर्मभूमिः, भरतैरवतेषु वर्षेषु।)

भरत और ऐरवत दोनों में ९ कोटाकोटि सागरोपम काल अवसर्पिणी का और ९ कोटाकोटि सागरोपम काल ही उत्सर्पिणी का—इस प्रकार दोनों के काल को जोड़ने पर १८ कोटाकोटि सागरोपम काल तक भरत और ऐरवत दोनों में अकर्म भूमि (भोग भूमि) रहती है।२३।

स्पष्टीकरण—ऐसा प्रतीत होता है कि तेवीसवीं गाथा में मोटे रूप से अकर्म भूमि का काल बताया गया है। वस्तुतः अवसर्पिणी काल के सुषमदुःषमा नामक तृतीय आरक की समाप्ति के ८४ लाख पूर्व शेष रहने पर भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में कर्मभूमि का प्रादुर्भाव तथा उत्सर्पिणी काल के दुःषमसुषमा नामक चतुर्थ आरक के प्रारम्भ में ८४ लाख पूर्व व्यतीत हो जाने पर ५ भरत और ५ ही ऐरवत—इन १० क्षेत्रों में कर्मभूमि का अवसान हो जाता है। इस प्रकार १८ कोटाकोटि सागरोपम के अवसर्पिणी के प्रथम तीन और उत्सर्पिणी के अंतिम इन छह आरकों में १ करोड़ ६८ लाख पूर्व तक कर्मभूमि काल रहता है। अर्थात् एक करोड़ ६८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ मास और

१५ दिन कम १८ कोटाकोटि सागरोपम काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में अकर्म भूमि (भोगभूमि) रहती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८ सागरोपम जैसे सुदीर्घ काल की तुलना में एक करोड २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, साढ़े आठ मास का काल नगण्य समझकर तित्थोगालीय पइन्नाकार ने यहां इस काल का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। यह भी संभव है कि इस प्रकार का स्पष्टीकरण करने वाली कोई गाथा पूर्व काल में रही हो और वह कालान्तर में लिपिकार के प्रमाद के कारण विलुप्त हो गई हो।

काल गणना में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे, इस उद्देश्य से इस गाथा के अनन्तर निम्नलिखित गाथा प्रस्तुत की जा रही है:—

चोवट्ठिं सयसहस्सा, पुव्वाण दुगुणिया दुन्नि सुसमदूसमासु।
ता होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु दससु वासेसु ॥

तेवट्ठिं च सहस्सा, वियड्ढावासाण होंति उड्ढस्स।
जा होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु वासेसु। २४।
(त्रिषष्टिं च सहस्त्राः वैताढ्यावासानाम् भवन्ति ऊर्ध्वस्य।
या भवति कर्मभूमिः भरतैरवतेषु वर्षेषु ॥)

ऊपर के अर्थात् १ करोड़ २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ मास १५ दिन दोनों सुषमदुःषमा आरों, ८४ हजार वर्ष कम २ सागरोपम परिमाण वाले दोनों दुःषम-सुषमा आरकों दोनों दुःषम आरकों एवं दोनों दुःषम-दुःषमा आरकों के क्रमशः पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के ६३ हजार वर्ष परिमित काल और दोनों दुःषम-दुःषमा आरकों के क्रमशः परार्द्ध और पूर्वार्द्ध के २१ हजार वर्ष पर्यन्त वैताढ्य (गिरि कन्दराओं में) वास के काल को मिला कर दो सागरोपम, एक करोड़ २८ लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ मास काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में कर्मभूमि रहती है।

स्पष्टीकरण :—प्रचलित धारणानुसार दोनों दुःषम दुःषमा आरों के प्रारम्भ से अन्त तक पूरे ४२ हजार वर्ष पर्यन्त भरत तथा

ऐरवत क्षेत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का वैताढ्य की कन्दराओं में निवास माना गया है। पर इस गाथा से प्रकट होता है कि तित्थोगालिय पइन्नयकार ने अवसर्पिणी काल के दुःषम दुःषमा के उत्तरार्द्ध में उत्सर्पिणी काल के दुःषम दुःषमा पूर्वार्द्ध तक अर्थात् २१ हजार वर्ष तक ही इन दस क्षेत्रों के मानवों एवं तिर्यञ्चों का वैताढ्यवास माना है। २४।

एसो ठिति विरहिओ, कालो पुण होइ धम्मचरणस्स ।
एत्तो परं तु वोच्छं, छव्विहमणुमाणओ कालं ।२५।
(एषः स्थितिविरहितः, कालः पुनर्भवति धर्मचरणस्य ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, षड्विधं अनु मानतः कालं ।)

यह धर्माचरण की स्थिति से रहित काल होता है। अब इस से आगे छः प्रकार के काल-मान का अनुक्रमशः मैं कथन करूंगा। २५।

दससु वि कुरूण सरिसं, भरहमिणं आसि सुसमसुसमाए ।
नवरिमणाहियकालो, एरवयादीण वि तहेव ।२६।
(दशस्वपि कुरुषु सदृशं, भरतमिदं आसीत् सुषम-सुषमायां ।
नवरं अनावर्तितः कालः, ऐरवतादिषु अपि तथैव ।)

सुषम-सुषमा नामक आरक में भरत क्षेत्र की तरह दसों कुरुक्षेत्रों तथा इसी प्रकार ऐरवत आदि क्षेत्रों में भी समान रूप से अनपवर्त्य अर्थात् अपरिवर्तनीय सुषमसुषमा काल रहता है। २६।

एतेसिं खेत्ताणं, मणिकणगविभूसियाउ भूमीओ ।
रयणाण पंचवन्निय, सोहंति चित्त-चित्ताओ ।२७।
(एतेषां क्षेत्राणां, मणिकनकविभूषिताः भूमयः ।
रत्नानां पंचवर्णिकाः, शोभंते इह चित्र-चित्राः ।)

उस सुषम-सुषमा नामक आरक में उपरि वर्णित सभी क्षेत्रों के भू-भाग मणियों एवं स्वर्ण से विभूषित और सर्वत्र पांच प्रकार के रत्नों से खचित मनोहर चित्र-विचित्र सुशोभित रहते हैं। २७।

वावीपुक्खरणीओ, देसे देसेत्थ दीहियाओ य ।
पेच्छणगसंकुलाओ, सयणासण मंडिय तहाओ ।२८।
(वापी पुष्करिण्यः, देशे देशे अत्र [च्छ] दीर्घिकाश्च ।
प्रेक्षणकसंकुलाः, शयनासनमण्डिताः तथा तु ।।)

उस आरक में स्थान स्थान पर सर्वत्र देखने योग्य अनेक मनोरम दृश्यों से सकुल, शैया-आसनों आदि से सुसज्जित वापियां, पुष्करिणियां एवं दीर्घिकाएँ होती हैं ।२८।

महुघयइक्खुरसोदगखीरासव वरवारुणी जलाओ ।
काओ य पगइपाणिय फलिय सरिच्छत्थ भरियाओ ।२९
(मधु–घृत–इक्षुरसोदकक्षीरासव-वरवारुणी जलाः ।
काश्च प्रकृतिपानीय-स्फटिकसदृशा अत्र भरिताः ।)

जो शहद घृत, इक्षु रस द्राक्षा, क्षीर, आसव और उत्तम वारुणी के समान सुस्वादु एवं सुगन्धित जल से परिपूर्ण तथा उनमें से कतिपय वापियाँ आदि स्फटिक मणि के समान स्वच्छ प्राकृतिक पानी से भरी रहती हैं ।२९।

जाओ वि रयणवेलुय, परिगयाउ सोयणे सुह विहाराओ ।
तामरस कमल कुवलय, नीलुप्पलसोहिय जलाओ ।३०।
(या अपि रत्नवैडूर्य-परिगताः शोभनाः सुखविहाराः ।
ताम्ररस-कमल-कुवलय, नीलोत्पलशोभित-जलाः ।।)

वे सब वैडूर्य रत्नों से निर्मित अतिसुरम्य, सुखपूर्वक विचरण करने योग्य तथा ताम्ररस कमल, कुवलय एवं नीलोत्पल से सुशोभित जल से परिपूर्ण होती हैं ।३०।

तासिं चडोलखडहडगविविह उप्पायज्जगइ पव्वयगा ।
इंदियसुहोवभोगा, सभावजाया रयणचित्ता ।३१।
(तासां च अडोल खटहटक विविध उत्पाद जगति पर्वतकाः ।
इन्द्रिय सुखोपभोगा, स्वभावजाता रत्न-चित्रा ।)

उन वापियों, पुष्करिणियों और दीर्घिकाओं के चारों ओर अति सुन्दर प्राकृतिक प्राकार जगतियाँ आदि रत्नों से जड़ित और चक्षु आदि इन्द्रियों को बड़ा आनन्द प्रदान करने वाली होती है ।३१।

देसे देसे य सुरम्मा, केलिलयाहरग केयइ घरा य ।
तेसु वि य रयणचित्ता, मणिकणगसिलातला रम्मा ।३२।
(देशे देशे च सुरम्या केलिलता-गृह-केतकि-गृहाश्च ।
तेष्वपि च रत्नचित्रिताः, मणिकनकशिलातला रम्याः ।)

स्थान स्थान पर नयनाभिराम लताओं से निर्मित केलि-कुंज और केतकी मण्डप होते हैं। उन निकुञ्जों और केलि-गृहों में अनेक प्रकार के रत्नमय चित्रों से सुशोभित अति कमनीय मणि शिलाएँ एवं कनक-शिलाएँ यथास्थान बिछी रहती हैं ।३२।

एतेसु य अन्नेसु य, पहाणभोगोवभोगपउरेसु ।
विविहे पुण्णफलाइं से य सक्कसिरिमणुभवंति ।३३।
(एतेषु च अन्येषु च, प्रधान भोगोपभोग प्रचुरेषु ।
विविधानि पुण्यफलानि च शक्रश्रियमनुभवन्ति ।)

पांच भरत तथा पांच ऐरवत एवं देवकुरु, उत्तरकुरु आदि उत्कृष्ट कोटि के भोगोपभोग प्रधान क्षेत्रों में यौगलिक मानव विविध पुण्यफलों के रस स्वरूप इन्द्र के समान सुख ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं ।३३।

गाम नगरागराई, पिइपिंडनिवेयणा अम्मपत्ता ।
एते न संति भावा, एतेसु जुगलयनिवेसु ।३४।
(ग्रामनगराकरादि, पितृपिण्डनिवेदना च अम्बपत्नाः ।
एते न सन्ति भावाः, एतेषु युगलकनिवेशेषु ।)

इन काल में युगलिक मनुष्य उनके रहने के स्थानों में ग्राम, नगर, आकर, पिता-पुत्र का पारस्परिक सम्बन्ध और अम्बपत्न अर्थात् भ्राता-पुत्रादि का अस्तित्व तक नहीं रहता ।३४।

सामिसमिच्चचरिअं, ववहारो नत्थि रायधम्मो वा ।
नंदि मिहुणगा सव्वे, देसापरिसोविणो वा ।३५।

(असि-मसि-कृषि-वाणिज्यं, व्यवहारः नास्ति राजधर्मो वा ।
तेषां मिथुनानां तदा, रोषः पोषः अपदेशो वा ।)

उस समय के उन यौगलिक मानवों में असि (तलवार), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, पारस्परिक आदान-प्रदान, शासक-शासित, आक्रोश, पोषण और परस्पर उपकार-अपकार आदि का व्यवहार नहीं होता ।३५।

पउमुप्पलनीसासा, विरूवितणू निब्भया निरुवलेवा ।
वंगवलिपलियरहिया, एतेसु नरा तया सुहिया ।३६।
(पद्मोत्पलनिश्वासा, विरूपितनु निर्भया निरुपलेपाः ।
वंक-वलि-पलितरहिता, एतेषु नरा तदा सुखिनः ।)

इन क्षेत्रों में उस समय के मानव कमल पुष्प की भीनी मादक सुगन्ध के समान श्वासोच्छ्वास वाले, विशिष्ट सुन्दर शरीरधारी, पूर्ण निर्भय, छल-छद्म द्वेषादि से निर्लिप्त, बांक-टेढ़ श्वेतकेश आदि शारीरिक दोषों से रहित एवं सर्वथा सुखी होते हैं ।३६।

गंभीरनिद्धघोसा, साणुक्कोसा अमच्छर सहावा ।
अणुलोमवाउवेगा, अपरिमिय--परक्कमपलोया ।३७
(गंभीर निद्धघोषाः, सानुक्रोशा अमत्सरस्वभावाः ।
अनुलोम वायुवेगाः, अपरिमितपराक्रमप्रलोकाः ।)

उस समय मानव-मिथुन घनरवगम्भीर गुंजायमान स्वर, मात्सर्य-मुक्त स्वभाव, वायु के समान अप्रतिहत यथेच्छ वेग और अपरिमित पराक्रम एवं तेज सम्पन्न होते हैं ।३७।

कस्सइ अणभियोगा, अहमिंदा वज्जरिसभसंघयणा ।
माणुम्माणुववेया, पेसलच्छसव्वंगसंघयणा ।३८।
(कस्यापि अनभियोगाः, अहमिन्द्रा वज्रऋषभ-संहननाः ।
मानोन्मानोपपेताः पेशलाच्छसर्वांगसंहननाः ।)

ये सभी मानव युगल सबके प्रति अभियोग रहित, समान रूप से सभी 'मैं इन्द्र हूँ' इस प्रकार की भावना वाले वज्र ऋषभ नाराच संहनन-धारी, सुडौल देहधर, सुगठित एवं सुन्दर अंगोपांग युक्त होते हैं।३८।

ते नरगणा सुरूवा, सुभगा सुहभागिणो सुरभिगंधा ।
मिगरायसरिसविक्कम, वरवारण मत्तसरिसगई ।३९।

(ते नरगणाः सुरूपाः, सुभगाः सुखभागिनः सुरभिगंधाः ।
मृगराजसदृशविक्रम, —वरवारणमत्तसदृशगतयः ।)

ये नर-नारी गण परम सुन्दर, सुभग, सुखभाजन, सुवासित मनमोहक सुगन्ध सिंह के समान पराक्रमी और मदोन्मत्त श्रेष्ठ गजराज की गति सदृश गमन करने वाले होते हैं।३९।

पगइपयणुकसाया, अप्पिच्छा अणिहिसंचयअचंडा ।
बत्तीस लक्खणधरा, पुढवी पुप्फफलाहारा ।४०।

(प्रकृति प्रतनुकषायाः, अल्पेच्छा अनिधि-संचय-अचण्डाः ।
द्वात्रिंशल्लक्षणधराः, पृथ्वी-पुष्प फलाहारा ।)

वे सब स्वभावतः क्षीण कषाय, स्वल्पेच्छ निधि एवं संचयविहीन शान्त, ३२ लक्षणों से युक्त और पृथ्विज खाद्य तथा फलों का आहार करने वाले होते हैं।४०।

पुढविरसो य सुगाओ मच्छंडियखंड-सक्कर-समाणो ।
पुप्फ फलाटु उत्तर रसतरा, अणुवमरसा उ साउफला ।४१।

(पृथ्वीरसश्च सुस्वादः, मत्स्यंडि-खंड-शर्करा समानः ।
पुष्पा प्रकटुत्तर रसतराः, अनुपमरसास्तु स्वादु फलाः ।)

उस समय में पृथ्वी का स्वाद मिश्री अथवा शक्कर के समान मधुर फूलों का रस नितान्त परम-उत्कृष्ट और सुस्वादु, फलों का रस इतना स्वादिष्ट होता है कि उन के स्वाद का वर्णन करने के लिये संसार में कोई उपमा नहीं है।४१।

पुप्फ फलाणं च रसं, समयस्स-इट्टयरं विणा विंति ।
संबच्छरापरि नाहिय, बत्तीसहियं मोयण पगाओ ।४२

(पुष्प-फलानां च रसं, अमृतरस-इष्टतरकं जिनाः ब्रुवन्ति ।
संवत्सर-परिसज्जित, नवनिधिपति भोजन-गृहात् ।)

जिनेश्वर भगवान उस समय के फूलों तथा फलों के रस को अमृत रस और नवनिधिपति चक्रवर्ती की पाकशाला में वर्ष भर के परिश्रम से निर्मित भोजन की अपेक्षा भी अत्यन्त इष्टतर अर्थात् स्वादिष्ट बताते हैं ।४२।

भरहाइ दस वि खेत्ता, देव-कुराई वि तत्तिया चेव ।
एते वीसं खित्ता, वियाण पढमिल्लुए अरगो (गे) ।४३।
(भरतादि दशापि क्षेत्रा, देवकुर्वाद्यापि तावत्काः चैव ।
एते विंशति क्षेत्राः, विजानीहि प्रथमिल्लके आरके ।)

पांच भरत, पांच ऐरवत पाँच देवकुरु और पांच ही उत्तरकुरु इन वीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की अवधि में इस प्रकार की स्थिति समझनी चाहिए ।४३।

आउसरीरुस्सेहो, सागर कोडीउ जाव चत्तारि ।
पलिओवमाई तिण्णिउ, तिण्णि य कोसा समा भणिया ४४।
(आयुशरीरोत्सेधः सागर कोट्यः यावत् चत्वारि ।
पल्योपमानि त्रीणि त्रयो क्रोशाः सभा भणिता ।)

इन वीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की चार कोटाकोटि सागरोपम की सम्पूर्ण अवधि में समान रूप से यौगलिक मानवों की आयु तीन पल्योपम और शरीर की लम्बाई तीन कोस बताई गई है ।४४।

एतेसु य खेत्तेसु, तेसिं मणुयाण पुव्व सुकएणं ।
दसविह दुमाउ तइया, उवभोग-सुहा उवणमंति ।४५।
(एतेषु च क्षेत्रेषु, तेषां मनुजानां पूर्वसुकृतेन ।
दशविधा द्रुमास्तदा, उपभोग-सुखानि उपनमंति ।)

इन वीस क्षेत्रों में उस समय के मानव-मिथुनों को उनके पूर्वोपार्जित पुण्य के फलस्वरूप दश प्रकार के द्रुम अर्थात् कल्पवृक्ष श्रेष्ठ सुखोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री तत्काल प्रस्तुत करते हैं ।४५।

मत्तंगयाय भिंगा, तुडियंगा दिव्वजोइचित्तंगा ।
चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणियणा य ।४६।
(मत्तंगकाश्च भृंगाः, त्रुटितांगा दीप-ज्योति-चित्रांगाः ।
चित्ररसाः मण्यंगा गृहकारा अनग्नाश्च ।)

उन दस प्रकार के कल्पवृक्षों के नाम निम्नलिखित हैं:-- मत्तांग (१) भृंग (२), त्रुटितांग (३), दीप (४), ज्योति (५) चित्रांग (६), चित्ररस (७), मण्यंग (८), गेहकार (९) और अनग्न (१०) ४६

मत्तंगएसु मज्जं सुहपेज्ज भायणाइं भिंगेसु ।
तुडियंगेसु य संगय, तुडियाइं तह पगाराइं ।४७।
(मत्तंगकेषु मद्यं, सुख-पेयं भाजनानि भृंगेषु ।
त्रुटितांगेषु च संगत— त्रुटितानि तथा प्रकाराणि ।)

मत्तांग नामक कल्पवृक्षों से उन मानवों को अहर्निश सुखानुभूति में मग्न रखने वाला पेय, भृंग नामक कल्पवृक्षों से भाजनपात्रादि, त्रुटितांग नामक वृक्षों से सुरीला आदि विविध प्रकार के वाद्य यन्त्र ।४७।

दीवसिहा जोइसिनामगा य एते करिंति उज्जोयं ।
चित्तंगेसु य मल्लं, चित्तरसा भोयणट्ठाए ४८।
(दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च एते कुर्वन्ति उद्द्योतम् ।
चित्रांगेषु च माल्यं, चित्ररसा भोजनार्थाय ।)

दीपशिखा एवं ज्योति नामक वृक्षों से अपेक्षित सुखद प्रकाश, चित्रांग नामक कल्पवृक्षों से माला, हार आदि मनोज्ञ प्रसाधन और चित्ररस नामक कल्पवृक्षों से भोजन सामग्री ।४८।

मणिअंगेसु य भूसणवराइं, भवणाइं भवणरुक्खेसु ।
आइण्णेसु य पत्थिनं, वत्थाइं बहुप्पगाराइं ४९।
(मण्यंगेषु च भूषणवराणि, भवनानि भवनवृक्षेषु ।
अनग्नेषु च वर्णितं, वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ।)

अद्ध भरहमज्झिल-तिभागे गंगसिंधुमज्झंमि।
एत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पन्ना कुलगरा सत्त ।७१।
(अर्ध भरतमध्यस्थ, त्रिभागे गंगा-सिन्धु-मध्ये।
अत्र बहुमध्यदेशे, उत्पन्नाः कुलकराः सप्त ।।)

भरतार्द्ध के मध्यस्थित त्रिभाग के गंगा और सिन्धु के बीच के प्रदेश के ठीक मध्यस्थ भू-भाग में (क्रमशः) सात कुलकर उत्पन्न हुए ।७१।

पुव्वभवजंम नामप्पमाण-संघयणमेवसंठाणं।
विणिच्छिआउभागा, भवणोवाओ य नीती य ।७२।
(पूर्वभव-जन्म नाम-प्रमाण, संहननमेवं संस्थानम्।
विनिश्चितायुभागः, भवनोत्पादश्च नीतिश्च ।।)

मैं (उनके) पूर्व भव; जन्म नाम, प्रमाण, संहनन, संस्थान, निश्चित आयु-भाग, भवन निर्माण और नीतियों का कथन करूंगा ।७२।

अवरविदेहे दो वणिय-वयंसा माइ उज्जुए चेव।
कालगया इह भरहे, हत्थीमणुओ य आयाय ।७३।
[अपरविदेहे द्वौ वणिक् वयस्यौ मायावी ऋजुकश्चैव।
कालगता इह भरते, हस्ती मनुजश्च आयातः ।।]

अपर विदेह क्षेत्र में दो वणिक मित्र थे। उनमें से एक वणिक् मायावी और दूसरा सरल प्रकृति का था। मर कर वे दोनों यहां भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए। मायावी वणिक् का जीव हाथी के रूप में और ऋजु-प्रकृति वणिक् का जीव मनुष्य के रूप में ।७३।

दट्ठुं सिणेहकरणं, गयमारूहणं च नामनिप्फत्ती।
परिहाणिम्मिह कलहो, सामत्थण-विणवणं हत्थी ।७४।
[दृष्ट्वा स्नेहकरणं, गजमारोहणं च नामनिष्पत्तिः।
परिहानौ इह कलहः, सामर्थन-विज्ञपनं हस्ती ।।]

मनुष्य (विमलवाहन नामक प्रथम कुलकर) और हाथी ने एक दिन परस्पर एक दूसरे को देखा। पूर्वजन्म की मैत्री के कारण तत्काल उन दोनों का परस्पर स्नेह हो गया। हाथी उस पुरुष के पास आकर बैठा और वह पुरुष उस पर आरूढ़ हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने लगा। सुन्दर श्वेत गजराज पर आरूढ़ उस पुरुष को देखकर यौगलिकों ने उसका नाम विमलवाहन रक्खा। काल प्रभाव से कल्प-वृक्षों एवं उनके द्वारा प्राप्त होने वाली भोग-सामग्री के परिक्षीण होने पर यौगलिकों में कल्पवृक्षों के स्वामित्व के प्रश्न को लेकर कलह होने लगे। कलह के मूल कारण पर यौगलिकों ने परस्पर विचार-विमर्श किया और विमलवाहन को अपना मुखिया मानकर उनके समक्ष सामूहिक रूप से निवेदन किया कि वह उनके पारस्परिक कलह को दूर करें। विमलवाहन ने उस श्वेत हस्ती पर आरूढ़ हो सर्वत्र घूम घूम कर यौगलिकों में कल्पवृक्षों का समुचित बंटवारा किया।७४।

पढमित्थ विमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो अ पसेणइए, मरुदेवे चेव नाभी य ।७५।
[प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, चक्षुम-यशोमान् चतुर्थ अभिचंद्रः ।
ततश्च प्रसेनजितकः मरुदेवश्चैव नाभिश्च ।७५।

उन सात कुलकरों के नाम इस प्रकार हैं :—विमलवाहन (१), चक्षुष्मान (२), यशोमान (३), अभिचन्द्र (४), प्रसेनजित् (५), मरुदेव (६) और नाभि (७) ।७५।

नवधणुसयाइं पढमो, अट्ठ य सत्तट्ठ सत्तमाइं च ।
छच्चेव अद्धछट्ठा, पंचसया पणवीसा य ।७६ दारं।
(नव-धनुःशतानि प्रथमः, अष्टौ च सप्तार्धं सप्तशतानि च ।
षट्चैव अर्धषष्ठं, पंचशता-पंच विंशतिश्च ।७६द्वारं।)

प्रथम कुलकर के शरीर की ऊंचाई ९०० धनुष, द्वितीय की ८०० धनुष, तृतीय की ७५०, चतुर्थ की ७००, पंचम की ६००, छठे की ५५० और सातवें कुलकर के शरीर की ऊंचाई ५२५ धनुष की थी।

वज्जरिसह संघयणा, समचउरंसा य हुंति संठाणे ।
वण्णं वि य वुच्छामि, पत्तेयं जस्स जं आसी ।७७।
[वज्रऋषभ-संहननाः, समचतुरस्राश्च भवन्ति संस्थाने ।
वर्णमपि च वक्ष्यामि, प्रत्येकं यस्य यदासीत् ।।]

ये सभी कुलकर वज्रऋषभनाराच-संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धारक थे। इनमें से प्रत्येक का जो जो वर्ण था, उसका भी मैं कथन करूंगा ।७७।

चक्खुम जसमं च पसेणइय, एते पियंगुवण्णाभा ।
अभिचंदोससिगोरो; निम्मलकणगप्पभा सेसा ।७८।
[चक्षुमान यशोमांश्च प्रसेनजित्, एते प्रियंगुवर्णाभाः ।
अभिचन्द्रः शशिगौरः; निर्मल-कनकप्रभाः शेषाः ।।]

इनमें से चक्षुष्मान, यशोमान और प्रसेनजित, ये तीन कुलकर जामुन के समान वर्ण वाले, अभिचन्द्र कुलकर चन्द्रमा के समान गौर वर्णवाले और शेष तीन—विमलवाहन, मरुदेव तथा नाभि कुलकर कुन्दन के समान वर्ण वाले थे ।७८।

चंदजस चंदकंता; सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी; कुलगरपत्तीण नामाइं ।७९।
[चन्द्रयशा चन्द्रकान्ता; सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुकान्ता च ।
श्रीकान्ता मरुदेवी; कुलकर-पत्नीनां नामानि ।।]

कुलकरों की पत्नियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—चन्द्रयशा (१), चन्द्रकान्ता (२), सुरूपा (३), प्रतिरूपा (४), चक्षुकान्ता (५), श्रीकान्ता (६) और मरुदेवी (७) ।७९।

संघयणं संठाणं, उच्चत्तं चेव कुलगरेहिं समं ।
वण्णेण एगवण्णा, सव्वाउ पियंगुवण्णा उ । ८० ।
(संहननं संस्थानं, उच्चता चैव कुलकरैः समं ।
वर्णेन एकवर्णाः, सर्वाः प्रियंगुवर्णास्तु ।)

इन कुलकर पत्नियों के संहनन संस्थान और शरीर की ऊंचाई उनके पति के समान ही थी। शरीर के वर्ण की दृष्टि से वे सभी केवल एक प्रियंगु (जामुन) वर्ण की थीं ।८०।

पलिओवम दसभाओ, पढमस्साऊ तओ असंखिज्जा।
ते आणुपुव्विहीणा, पुव्वा नाभिस्स संखेज्जा ।८१।
(पल्योपमदशभागः प्रथमस्य आयुः तत असंख्येयाः।
ते आनुपुर्व्या हीना, पूर्वा नाभेः संख्येयाः)

प्रथम कुलकर विमलवाहन की आयु पल्योपम का दशवां भाग थी। तदनन्तर द्वितीय कुलकर से छठे कुलकर—इन पांच कुलकरों की आयु असंख्यात पूर्व की किन्तु पूर्ववर्ती से पश्चाद्वर्ती की उत्तरोत्तर अल्प थी। अन्तिम कुलकर नाभि की आयु संख्यात पूर्व की थी ।८१।

[1]पुव्वस्स उ परिमाणं, सयरिं खलु हुंति कोडिलक्खाउ।
छप्पन्नं च सहस्सा, बोधव्वा वास-कोडीणं ।८२।
(पूर्वस्य तु परिमाणं, सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाः।
षट्पंचाशच्च सहस्राः, बोद्धव्याः वर्ष कोटीनाम् ।)

पूर्व का परिमाण यह है कि ७० करोड़ लाख और ५६ हजार करोड़ वर्षों का एक पूर्व होता है ।८२।

जं चेव आउयं कुलगराणं, तं चेव होई तासिंपि।
जं पढमगस्स आउं तावइयं होइ हत्थिस्स ।८३।

---

1. होई पुव्वंगमेव, चुलसीई [illegible] [illegible]।
तं वग्गियं तु पुव्वं, सत्तरि छप्पन्न [illegible] ॥
मतिरेवं च—पुव्वस्स उ परिमाणं, सयरिं खलु होंति कोडि-लक्खाओ।
छप्पन्नं च सहस्सा, बोधव्वा वास-कोडीणं ॥

—[illegible]-(अप्रकाशित)

(यच्चैव आयुषं कुलकराणां, तच्चैव भवति तासामपि ।
यत्प्रथमकस्यायुः, तावत्कं भवति हस्तिनः ।)

कुलकरों की जितनी आयु होती है, उतनी ही आयु कुलकर पत्नियों की भी होती है । प्रथम कुलकर की आयु के समान ही उनके हाथी की भी आयु होती है ।८३।

जं जस्स आयुयं खलु, तं दसभाए समं विभइऊणं ।
मज्झिलअं निभागं, कुलगर-कालं वियाणाहि ।८४।
(यद्यस्य आयुष्यं खलु, तत् दशभागैसमं विभज्य ।
मध्यमकं त्रिभागं, कुलकर-कालं विजानीथ ।)

जिस कुलकर की जितनी आयु है, उस आयु को समान रूप से दश भागों में विभाजित किया जाय । उन दश भागों में से मध्य के तीन भागों को कुलकर का कुलकर-काल समझना चाहिए ।८४।

पढमो य कुमारत्ते, भागो चरिमो य वुड्ढभावंमि ।
तप्पयणुपेज्जदोसा, सव्वे देवेसु उववण्णा ।८५।
(प्रथमश्च कुमारत्वे, भागः चरमश्च वृद्धभावे ।
तत्प्रतनुप्रेयदोषाः, सर्वे देवेषु उत्पन्नाः ।)

प्रत्येक कुलकर का उसकी आयु के दश भागों में से कुलकर-काल के पहले का भाग कुमारावस्था में और अन्तिम भाग वृद्धावस्था में व्यतीत होता है ।८५।

दो चेव सुवण्णेसु उदहिकुमारेसु होंति दो चेव ।
दो दीवकुमारेसु एगो नागेसु उववण्णो ।८६।
(द्वौ चैव सुवर्णेषु, उदधिकुमारेषु भवतः द्वौ चैव ।
द्वौ दीपकुमारेषु, एकः नागेषु उपपन्नः ।)

उन सात कुलकरों में से दो कुलकर स्वर्णकुमारों में, दो उदधिकुमारों में, दो दीपकुमारों में उत्पन्न हुए तथा एक नागकुमारों में ।८६।

आइल्ला छच्चित्थीओ, नागकुमारेसु हुंति उववण्णाः ।
एगा सिद्धिं पत्ता, मरुदेवी नाभिणं पत्ती । ८७ ।
(आद्याः षडपि स्त्रियः, नागकुमारेषु भवन्ति उपपन्ना ।
एका सिद्धिं प्राप्ता मरुदेवी नाभेः पत्नी ।)

सात कुलकर पत्नियों में से आदि की छः नागकुमारों में उत्पन्न हुईं और अन्तिम एक नाभि कुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुई । ८७ ।

हक्कारे मक्कारे, धिक्कारे चेव दंडनीईओ ।
वोच्छं तासिं विसेसं जहक्कमं आणुपुव्वीए । ८८ ।
(हक्काराः मक्काराः धिक्काराश्चैव दण्डनीतयः ।
वक्ष्ये तासां विशेषं यथाक्रमं आनुपूर्व्या ।)

इन कुलकरों की 'हक्कार', 'मक्कार' और 'धिक्कार'—ये तीन प्रकार की दण्डनीतियां थीं । मैं उनका विशेष रूप से अनुक्रमशः कथन करूंगा । ८८ ।

पढमबीयाण पढमा, तइयचउत्थाण अभिणवा बिया ।
पंचम छट्ठस्स य, सत्तमस्स विसेसं तइया अभिणवाउ । ८९ ।
(प्रथमद्वितीययोः प्रथमा, तृतीयचतुर्थयोः अभिनवा द्वितीया ।
पंचमषष्ठयोश्च, सप्तमस्य विशेषं तृतीया अभिनवा तु ।)

प्रथम और द्वितीय कुलकर ने अपने कुलकर-काल में पहली 'हक्कार' दण्डनीति का प्रयोग किया । तीसरे और चौथे कुलकरों ने (प्रथम दण्डनीति के साथ साथ) 'मक्कार' नामक दूसरी नवीन दण्डनीति का और दण्डनायक पांचवें, छट्ठे और सातवें कुलकरों ने पहली दो दण्डनीतियों के साथ ही विशेषतः अभिनव तीसरी दण्डनीति—'धिक्कार' का प्रयोग किया । ८९ ।

एवं चेव पमाणा (हया), कुलगराईण नायु सेसं तु ।
[illegible] य सेसा, [illegible] य कुलगरा पयमो । ९० ।

(एवं चैव वक्तव्याः, एरवतादिषु नवसु क्षेत्रेषु ।
एकैके च तदा, सप्तैव च कुलकराः क्रमशः ॥)

ऐरवत आदि ६ क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की वक्तव्यता समझनी चाहिए। उनमें से प्रत्येक क्षेत्र में उसी काल में क्रमशः सात-सात कुलकर उत्पन्न हुए ।६०।

सव्वे विमाणप्पवरे, अणुत्तरे भुंजिऊण से भोए ।
सव्वट्ठसिद्धिनामे, उदहिसमाणाइं तेत्तीसं ।९१।
(सर्वे विमानप्रवरे, अनुत्तरान् भुक्त्वा ते भोगान् ।
सर्वार्थसिद्धि समानानि, उदधि समानानि त्रयत्रिंशत् ॥)

पांच भरत तथा पांच ऐरवत—इन दशों क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्करों के च्यवन कल्याणक का विवरण प्रस्तुत करते हुए 'तित्थोगाली पइन्नयकार कहते हैं :—

वे सब (दशों प्रथम तीर्थङ्करों के जीव) विमानों में सर्वोत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में तेतीस सागरोपम तक सार्वोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग कर ।६१।

ओसप्पिणी इमीसे, तइयाए समाए पच्छिमे भाए ।
चइऊण विमाणाउ, उत्तरासाढाहि नक्खत्ते ।९२।
(अवसर्पिण्यामस्यां, तृतीयायाः समायाः पश्चिमे भागे ।
च्युत्वा विमानात्, उत्तराषाढायां नक्षत्रे ॥)

इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक के अन्तिम भाग में, उत्तराषाढा नक्षत्र में उस (सार्वार्थसिद्ध) विमान से च्यवन कर ।६२।

कुलगर वंसपसूओ, आसी इक्खागवंस-संभूओ ।
नाभीनाम कुलगरो, पवरो तेसिं नरगणाणं ।९३।
(कुलकरवंशप्रसूतः आसीत् इक्ष्वाकुवंशसंभूतः ।
नाभिर्नामकुलकरः, प्रवरः तेषां नरगणानाम् ॥)

कुलकर वंश में जन्म ग्रहण किये हुए इक्ष्वाकुवंशावतंस, उस समय के मनुष्यों में सर्वाधिक श्रेष्ठ जो नाभि नामक कुलकर थे ।६३।

तस्साणुरूववती सा, सव्वंगोवंगलक्खण-पसत्था ।
उत्तमरूव सरूवा, जाया मरुदेवि नामित्ति ।९४।
(तस्यानुरूपवती सा, सर्वाङ्गोपाङ्गलक्षणप्रशस्ता ।
उत्तमरूप-सुरूपा, जाया मरुदेविनामेति ॥)

उनकी, उनके समान परम रूपवती, सभी अंगोपांगों के समस्त सुलक्षणों से श्रेष्ठ, उत्तम रूप और स्वरूप सम्पन्ना मरुदेवी नामक पत्नी थी ।९४।

तीए उदरंमि तीसो, तिनाणसहिओमहायसो भयवं ।
गब्भत्ता उववन्नो, पढमीसो भरहवासस्स ।९५।
(तस्या उदरेत्रयीशः त्रिज्ञानसहितः महायशा भगवान् ।
गर्भतया उपपन्नः, प्रथमेशः भरतवर्षस्य ॥)

उन मरुदेवी की कुक्षि में तीन ज्ञानधारी महायशस्वी त्रैलोक्य-नाथ भगवान् भारतवर्ष के प्रथम अधिपति आविर्भूत हुए ।९५।

एवं नव तित्थयरा, चंदाणणमाइ नवसु खेत्तेसु ।
चइऊण विमाणधरा, उत्तरसाढाहिं नक्खत्ते ।९६।
(एवं नव तीर्थंकराः, चन्द्रानन आदि नवसु क्षेत्रेषु ।
च्युत्वा विमानधराः, उत्तराषाढायां नक्षत्रे ॥)

इसी प्रकार ऐरवत आदि ९ क्षेत्रों में चन्द्रानन आदि ९ तीर्थंकर उत्तराषाढा नक्षत्र में विमानों से च्यव गए ।९६।

कुलगरवंसपसूआ, आसी इक्खागवंस संभूया ।
नवकुलगर नाभिसमा, पवरा नेमिं नरगणाणं ।९७।
(कुलकरवंशप्रसूताः आसन् इक्ष्वाकुवंश-संभूताः ।
नव कुलकर-नाभिसमाः, प्रवराः नेमी नरगणानाम् ॥)

(शेष) ९ क्षेत्रों में इसी प्रकार) कुलकर वंश में प्रसूत, इक्ष्वाकुवंशज आदि कुलकर के ही समान उस समय के मानवों में श्रेष्ठतम ९ कुलकर हुए ।९७।

वे दशों तीर्थङ्करों की माताएं, गजराजों में श्रेष्ठ चार चार दांतों वाले श्वेत हस्तियों द्वारा लक्ष्मी का अभिषेक किया जा रहा है, इस प्रकार का चौथा स्वप्न देखती हैं ।१०४।

नाणारयण-विचित्तं, वियसियकमलुप्पल-सुरभिगंधिं ।
छप्पय गणोववेयं, दामं, पेच्छंति सुसिलिट्ठं । १०५ ।
(नानारत्न विचित्र, विकसित कमलोत्पल सुरभिगंधिम् ।
षट्पद गणोपपेतं, दाम, प्रेक्षन्ति सुश्लिष्टम् ।)

अनेक प्रकार के रत्नों के साथ गूंथी गई, उसमें पिरोये गये अनेक प्रकार के कमलोत्पलादि में विकसित पुष्पों से मनमोहक सुगन्ध वाली और भ्रमरों के झुण्डों द्वारा सेवित अति कमनीय अपूर्व माला को वे जिन-जननियां पांचवें स्वप्न में देखती हैं ।१०५।

उदयगिरिमत्थयत्थं, रस्सिसहस्सेहिं समणुगम्मंतं ।
पेच्छंति सुहपसुत्ता, कुमुदागरबोहगं चंद ।१०६।
(उदयगिरिमस्तकस्थं, रश्मिसहस्रैर्समनुगमन्तम् ।
प्रेक्षन्ति सुख प्रसुप्ता कुमुदाकर बोधकं चन्द्रम् ।)

तदनन्तर सुखभर निद्रा में सोई हुई वे दशों तीर्थङ्करों की माताएँ छठे स्वप्न में उदयाचल के उच्चतम शिखर पर स्थित, सहस्र किरणों के परिवार सहित बढ़ते हुए, तथा कुमुदवनों को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा को देखती हैं ।१०६।

एवं वियसियवयणा, रविमंडलमुज्जलं पगासंतं ।
पेच्छिंति अंबरगय, अब्भामत्थ ट्ठियं पुरओ ।१०७।
(एवं विकसितवदनाः, रविमण्डलमुज्जवलं प्रकाशन्तम् ।
प्रेक्षन्ति अंबरगतं, अभ्रमस्तके स्थितं पुरतः ।)

इसी प्रकार प्रसन्नमुखी वे जिन-माताएं सातवें स्वप्न में आकाश के शिरोभाग पर स्थित उज्ज्वल सूर्यमण्डल को आकाश में अपने सम्मुख देखती हैं, जो कि समस्त संसार को प्रकाशित कर रहा है ।१०७।

दिव्वं रयण विचित्तं; पेच्छंति महांसुयं परमरम्मं ।
निवज्जवज्जसारं, विज्जुज्जल चंचल-पडागं ।१०८।
(दिव्यं रत्नविचित्रं, प्रेक्षंति महांशुकं परमरम्यम् ।
निर्वज्रवज्रसारं, विद्युदुज्ज्वल —चंचलपताकम् ।)

आठवें स्वप्न में वे विविध दिव्य रत्नों से जटित, परम रम्य, महांशुक (अनुपम वस्त्र विशेष) से निर्मित, उत्तमवज्र की सारभूत, बिजली की चमक के समान उज्ज्वल प्रकाशमान चंचल पताका जिनमें लगी हुई है, ऐसे — ।१०८।

तुङ्गं गयण विलग्गं, धरणियल पइट्ठियं महाकायं ।
आगासमुवमिणंतं, ठियं महिंदज्झय पुरओ ।१०९।
(तुङ्ग गगनविलग्नं, धरणितलप्रतिष्ठित महाकायम् ।
आकाशमुपमेतुं, स्थित महीन्द्रध्वज पुरतः ।)

मानों आकाश को मापने के लिये उत्तुंग गगन के उपरितन छोर को स्पर्श करते हुए, पृथ्वीतल पर प्रतिष्ठित महान् विशालकाय महेन्द्र ध्वज को अपने सम्मुख स्थित देखा ।१०९।

हेमंत बाल दिणयर, समप्पभं सुरभिवारिपडिपुण्ण ।
दिव्व कंचण-कलसं, पउम-पिहाणं तु पेच्छंति ।११०।
(हेमन्त बाल-दिनकरसमप्रभं सुरभिवारिपरिपूर्णम् ।
दिव्यं कंचनकलशं, पद्म-पिधानं तु प्रेक्षन्ति ।।)

हेमन्त ऋतु के उदीयमान सूर्य के समान नयनाभिराम प्रभावाले, सुगन्धित जल से परिपूर्ण, पद्म के पिधान से ढंके हुए दिव्य कंचन कलश को उन जिन-जननियों ने नौवें स्वप्न में देखा ।११०।

फलिह-सलिलपडहत्थं सउणगण निसेवियं मणभिरामं ।
विगसिय पउमसरं, पेच्छंति उ हरिसिय-मणाउ ।१११।
(स्फटिकसलिलपूर्णं, शकुन गणनिषेवितं मनोऽभिरामम् ।
विकसित पद्मसरं तो: प्रेक्षन्ति तु हर्षित मनसः ।)

दसवें स्वप्न में हर्षितमना वे दसों तीर्थङ्करों की माताएं स्फटिक रत्न के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण, भांति-भांति के पक्षि-समूहों से सेवित और विकसित पद्मसरोवर को देखती हैं ।१११।

उम्मिसहस्सपउरं, नाणाविहमच्छकच्छ भाइण्णं ।
गम्भीरगज्जियरावं, खीरसमुद्दं तु पेच्छंति ।११२।
(उर्मि सहस्र प्रचुरं, नानाविध मत्स्य कच्छभाकीर्णम् ।
गम्भीरगर्जितरवं, क्षीरसमुद्रं तु प्रेक्षन्ति ।)

तदनन्तर ग्यारहवें स्वप्न में वे प्रचुर सहस्रों लहरों से शोभायमान, अनेक प्रकार के मत्स्यों एवं कच्छपों से संकुल (भरे) और गम्भीर गर्जन करते हुए क्षीर समुद्र को देखती हैं ।११२।

वज्जमिरीइकवयं, विणिमुयंतं समूसियमुदारं ।
पासायं पेच्छंती पडागमालाउलं रम्मं ।११३।
(वज्र-मिरीचिकवचं, विनिमुंचन्तं समुच्छ्रितमुदारम् ।
प्रासादं[1] प्रेक्षन्ति, पताकामालाकुलं रम्यम् ।)

बारहवें स्वप्न में वे जिनेश्वरों की माताएं वज्र की किरणों के कवच को छोड़ते हुए, पताकाओं की पंक्तियों से संकुल, गगनचुम्बी, विशाल सुरम्य प्रासाद को देखती हैं ।११३।

स्पष्टीकरण—प्रचलित मान्यता और सत्तरिसय ठाण प्रकरण के अनुसार जिन-तीर्थंकरों के जीव विमानों से च्यवन कर माता के गर्भ में आते हैं। उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में विमान देखती हैं। जिन तीर्थंकरों के जीव नरक से आते हैं उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में भवन देखती हैं। यथाः—नरय उट्ठाण इहं, भवणं सग्गचुयाण उ विमाणं।

किन्तु तित्थोगाली पइन्नयकार ने बारहवें स्वप्न में तीर्थंकरों की माताओं द्वारा प्रासाद अथवा नाग भवन के दर्शन का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन कर माता के गर्भ में आया उस समय माता मरुदेवी

१ पासाय—प्रासाद—पुं० । देवानां राज्ञां च भवने—[भगवती, श. ५, उ. ३]

ने बारहवें स्वप्न में प्रासाद देखा। प्रासाद का अर्थ देवभवन तो होता है पर विमान नहीं। तित्थोगाली पइन्नयकार ने बारहवें स्वप्न में नागभवन के देखने का भी उल्लेख किया है। भवनपति देवताओं के आवास भवन ही कहलाते हैं न कि प्रासाद। ऐसी दशा में प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लिखित 'प्रासाद' कहीं विमान के अर्थ में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है—यह विद्वानों के लिये विचार का विषय है।

मंदरगुहगंभीरं, पमुइय पक्कीलियं मणभिरामं।
नाग-भवणं महंतं, पेच्छंति पीवर सिरीयं ।।११४।
(मंदरगुहा गभीरं, प्रमुदित प्रक्रीडितं मनोऽभिरामम्।
नागभवनं महान्तं, प्रेक्षन्ति पीवर श्रीकम्।)

बारहवां दूसरा स्वप्न :—(माता)–मन्दराचल की गुफा के समान गहन गम्भीर, प्रमोद बढ़ाने वाला, क्रीड़ा योग्य, अत्यन्त मनोरम और प्रचुर श्रीसम्पन्न महान् नाग भवन को देखती है।।११४।

सिहिंदंधणपज्जलियं, बहुयावहं नियय भूइसंजुत्तं।
पेच्छंति रयणचयं, किरणावलि-रंजिय दिसो [दि] हं ।।११५।
(श्रेष्ठेन्धन प्रज्वलितं, बहुयावहं निजकभूति संयुक्तम्।
प्रेक्षन्ति रत्नचयं[1], किरणावलिरंजित दिशोदयम्।)

तीर्थंकरों की मरुदेवी आदि दशों माताएं १३ वें स्वप्न में घृत, मधुर, अगरु, धूप, चन्दन आदि श्रेष्ठ ईंधन से प्रज्वलित, अपने ज्वाला-मालाओं, जगमगाहट, ज्योति आदि सभी वास्तविक गुणों से सम्पन्न अग्नि के समान अपनी किरणावलि से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई रत्नराशि को देखती है।।११५।

परिणय कुसुंभ सरिसं, आहुइपवरं हुयासणज्जलियं।
बहु पयणेहिय जालं, निद्धूम पयाहिणावत्तं ।।११६।
(परिणत कुसुंभ सदृशं[2], आहुति-प्रवरं हुताशनज्वलितम्।
बहु-रसनेहितज्वालं, निर्धूम प्रदक्षिणावर्त्तम्।)

---

१ मूल [illegible] (रत्नोच्चय, मरीच)
२ [illegible] के लिये [illegible] के समान।

चौदहवें स्वप्न में मरुदेवी आदि जिन-माताएं पके हुए आकू (खस-तिजारा) के फूल के समान, श्रेष्ठ आहुतियों से प्रज्वलित, मन्द-मन्द पवन द्वारा प्रेरित ज्वालाओं वाली प्रदक्षिणावत निर्धूमाग्नि को देखती हैं।११६।

एयं चौद्दस सुमिणं, ताउ पेच्छंति वीरजणणीओ।
मरुदेवी पमुहाओ, कहिंसु नियकुलगराणं तु।११७।
(एतान् चतुर्दश स्वप्नान्, तास्तु प्रेक्षन्ति वीरजनन्यः।
मरुदेवी प्रमुखाः, कथयन्ति निजकुलकराणान्तु।)

मरुदेवी आदि दशों ही वीर महापुरुषों की माताएं इन उपर्युक्त चौदह स्वप्नों को देखती हैं और अपने अपने कुलकर को अपने स्वप्न सुनाती हैं।११७।

तो ते कुलगरनाहा, जायाओ भणंति सोहणं वयणं।
होहिंति तुम्ह पुत्ता, कित्तीज्जुत्तामहासत्ता।११८।
(ततः ते कुलकरनाथाः, जायान् भणन्ति शोभनं वचनम्।
भविष्यन्ति युष्माकं पुत्राः, कीर्तियुक्ताः महासत्त्वाः।)

स्वप्नों को सुनने के पश्चात् वे दशों कुलकर पति अपनी-अपनी पत्नियों को इस प्रकार के सुहावने शुभवचन कहते हैं--'तुम महान् यशस्वी और शक्तिशाली पुत्रों को जन्म दोगी।'११८।

ते विय अम्हाहिंतो, अहिया होहिंति नत्थि संदेहो।
अहवावि कुलगराणा वि विसिट्ठतरयंतु जं ठाणं।११९।
(ते खलु अस्माभ्योऽधिकाः भविष्यन्ति नास्ति सन्देहः।
अथवापि कुलकरेभ्योऽपि विशिष्टतरकं तु यत् स्थानम्।)

"वे हम से भी बढ़कर होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अथवा वे कुलकरों से भी किसी विशिष्ट विरुद के धारक होंगे, ऐसा इन स्वप्नों से प्रतीत होता है।११९।

ज (अ) त्थो य पहायंमि, गयंमिस्सूरे जुगंतर कमसो।
मिहुणाण ताण पासं, सक्कीसाणागया सहसा।१२०।

(अथ च प्रभाते, [illegible] [illegible]
पिडुनानां तेषां [illegible] [illegible] [illegible]

तदनन्तर प्रभात [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] से अपने [illegible]

तेहिं विणएण तो ते, [illegible]
पिते उपवहसि, [illegible] [illegible]
(तैः विनयेन ततः तौ, स्वप्न-[illegible] [illegible]
भू थाने उपविश्य, कृताञ्जली [illegible] [illegible]

तदनन्तर [illegible] [illegible]
[illegible] से उन चौदह स्वप्नों का [illegible]
उन [illegible] को हाथ जोड़कर बैठे और [illegible]

जह एते आइमया, दिट्ठा कल्लाण[illegible]
होहिति तुम्ह पुत्ता, उत्तम [illegible]
(यथा एते [illegible], दृष्टा कल्याण-[illegible]
भविष्यन्ति युष्माकं पुत्रा, उत्तम [illegible]

'जिस प्रकार के ये [illegible]
[illegible] हो गये हैं, इसका [illegible]
[illegible] ज्ञान से [illegible]

होहिंति [illegible], [illegible]
[illegible] च [illegible]
(भविष्यन्ति [illegible]
[illegible] च [illegible]

[illegible]

भोत्तूण वरेभोए, रज्जं काऊण दाऊ दाणं तु ।
काऊण य सामण्णं, जाहिंति अयरामरं ठाणं ।१२४।
(भुक्त्वा वरान् भोगान्, राज्यं कृत्वा दत्वा दानं तु ।
कृत्वा च श्रामण्यं, गमिष्यन्ति अजरामरं स्थानम् ।)

"वे उत्तमोत्तम भोगोपभोगों का उपभोग कर सुदीर्घ काल तक राज्य करने के पश्चात् वर्ष भर महादान देकर श्रमण धर्म की परिपालना एवं स्थापना करेंगे और अन्त में अजरामर स्थान-मोक्ष में जावेंगे ।१२४।"

एवं दोवि सुरिन्दा, सुमिण-फलं साहिऊण मिहुणाणं ।
अच्छह सुहंतिवुत्तुं, आमन्तेउं[1] गया सग्गं ।१२५।
(एवं द्वावपि सुरेन्द्रौ, स्वप्नफलं साधयित्वा मिथुनेभ्य ।
आस्तां सुखेन इति उक्त्वा, आमन्त्रयित्वा गतो स्वर्गम् ।)

इस प्रकार दोनों सुरेन्द्र उन दशों कुलकर मिथुनों को चौदह स्वप्नों का फल बता, 'सुखपूर्वक रहिये'--यह निवेदन करने के पश्चात् उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्वर्गलोक की ओर लौट गये ।१२५।

अह हरिसिया कुलगरा, आदेशं[2] तं सुणेत्तु सक्काणं ।
जणणीओ वि पमोयं, अउलं गच्छंति तं वेलं ।१२६।
(अथ हर्षिता कुलकराः, आदेशं तत् श्रुत्वा शक्रयोः ।
जनन्योऽपि प्रमोदमतुलं गच्छन्ति तस्यां वेलायाम् (तां वेलाम्) ।)

दोनों इन्द्रों द्वारा बताई गई ज्ञातव्य बातों अथवा निर्देश को सुनकर कुलकर बड़े हर्षित हुए । जिनेश्वरों की जननियां भी उस वेला में परम प्रमुदित हुईं ।१२६।

---

१ आमंतण-आमन्त्रण-न० । अभिनन्दने, सम्बोधने, कामचारानुज्ञारूपे ।
२ (क) आदेशो नाम ज्ञातव्य वस्तुप्रकार; (विशेषावश्यक भाष्य)
(ख) आदिश्यत इत्यादेश: निर्देशे (निशीथ चू., उ. १)

तप्पिभिइमागंतुं, माणुसरूवं समासिया तह य।
जिण जणणीओ सेवंति, देवया' उ च जत्तेणं।१२७।
(तत्प्रभृति आगत्य, मानुषरूपं समाश्रिताः तथा च।
जिन-जननीन् सेवन्ति, देवतास्तु च यत्नेन।)

उसी समय से (देवेन्द्रों के लौटते ही) देव-देवियां मनुष्य रूप धारण कर बड़े यत्न के साथ तीर्थङ्करों की माताओं की सेवा करने लगीं।१२७।

सक्का देसेण तया, नाणाविहपहरणा इहिं जिणवरिंदे।
रक्खंति हट्ठतुट्ठा, दससुवि खेत्तेसु देवीओ।१२८।
(शक्रादेशेन तदा, नानाविधप्रहरणादिभिः जिनवरेन्द्रान्।
रक्षन्ति हृष्ट तुष्टाः, दशस्वपि क्षेत्रेषु देव्यः।)

शक्र की आज्ञानुसार दसों ही क्षेत्रों में देवियां हृष्ट तुष्ट हो दसों गर्भस्थ तीर्थङ्करों की प्रहारादि प्रवृत्तियां एवं सब प्रकार के अनिष्टों से रक्षा करती हैं।१२८।

संपुण्ण दोहलाओ, विचित्त सयणासणीउ सव्वाउ।
अन्न हियं आहारं, सेवंति मणाणुकूलं तु।१२९।
(सम्पूर्ण दोहदाः, विचित्र शयनासन्यः सर्वास्तु।
अन्नं हितमहारं, सेवन्ति मनोऽनुकूलं तु।)

तीर्थङ्करों को उन दसों माताओं के हृदयंगम अद्भुत शय्यासनादि थे। उनके समस्त दोहदों की तत्काल पूर्ति हो गई। वे सब अपने मन के अनुकूल (मनोज्ञ) अन्न और हितकारी अशन-पानादि ग्रहण करती थीं।१२९

ववगय सोगभयाउ, वहमाणीउ सुहेहिं ते गब्भे।
पत्ते' वि पसवमासे, अवत्त गूढगब्भाओ।१३०।
(व्यपगतशोकभयाः वहमाना सुखैस्तान् गर्भान्।
प्राप्तेऽपि प्रसवमासे, अव्यक्तगूढगर्भास्तु।)

१ देवता-देवता-अ, २ देवयाओ-इत्यादि, इत्त., ३ अ', ४ देवता-इत्यादि देवेषु। रक्षा.

सब प्रकार के शोक तथा भय से रहित वे अपने अपने गर्भस्थ तीर्थङ्कर को सुखपूर्वक वहन कर रही थीं। प्रसव मास के समुपस्थित हो जाने पर भी वे अव्यक्त गूढगर्भा ही बनी रहीं। अर्थात् साधारण गर्भवतियों की तरह उनके उदर प्रसवकाल तक भी बढ़े हुए-पीवर-प्रतीत नहीं होते थे।१३०।

जह वड्ढंति सुगब्भा, सोहा तह तासि पीवरा होइ।
अहियं च जणे मिहुणाणं, तेहि सह संगयं कुणइ।१३१।
यथा वर्द्धन्ते सुगर्भाः, शोभा तथा तासां पीवरा भवति।
अधिकं च जनाः मिथुनानां, ताभ्यो सह संगतिं कुर्वन्ति)

ज्यों ज्यों उनके कल्याणकारी गर्भ बढ़ने लगे त्यों त्यों उनकी शोभा (ओज-तेज प्रशंसा) भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढने लगी और आबाल-वृद्ध यौगलिक जन अधिकाधिक उनके संसर्ग में रहने लगे।१३१।

अह नवमंमि अईए, मासे समुवट्ठिए उ दसमंमि।
चित्त बहुल ट्ठमीए, वोलीणे पढम रत्तम्मि।१३२।
(अथ नवमे अतीते मासे समुपस्थिते तु दशके।
चैत्र बहुलाष्टम्यां, विलीने प्रथम-रात्रौ।)

इस प्रकार नौवें मास के व्यतीत हो जाने और दशवें मास के समुपस्थित होने पर चैत्र कृष्णा अष्टमी की प्रथम अर्द्ध रात्रि के बीत जाने के पश्चात्।१३२।

उत्तरसाढाविसए, अहसम्पत्ते निसागरे कमसो।
पसवंति सुहेण य, सुए लक्खण-जुत्ते महासत्ते।१३३।
(उत्तराषाढाविषये, अथ सम्प्राप्ते निशाकरे क्रमशः।
प्रसवन्ति सुखेन च, सुतान् लक्षणयुक्तान् महासत्त्वान्।)

जब चन्द्रमा क्रमशः उत्तराषाढा नक्षत्र में आया उस समय मरुदेवी आदि दशों क्षेत्रों के कुलकरों की पत्नियां सभी सुलक्षणों से युक्त महासत्त्वशाली प्रतापी पुत्रों को सुखपूर्वक जन्म देती हैं।१३३।

नाणारयण विचित्ता, वसुधारा निवडिया पगासंती ।
गम्भीर महुरसद्दो, तो दुंदुहिनाडिओ गयणो ।१३४।
(नाना रत्न विचित्राः, वसुधारा निष्पतिता प्रकाशन्ती ।
गम्भीर मधुर शब्दः, ततो दुंदुभिनाडितो गगने ।)

अनेक प्रकार के रत्नों से प्रकाशमान् विचित्र वसुधारा की वृष्टि हुई और देवताओं द्वारा बजाई गई देव दुंदुभियों का मधुर एवं गम्भीर घोष गगन मण्डल में गूंजने लगा ।१३४।

देवोववयण-पहाए, रयणी आसी य सा दिवस भूया ।
पमय गण गीय-वाइय, कहक्कहु (हु) तुट्ठिसद्दाला ।१३५।
(देवोपपतन-प्रभयाः, रजनी आसीत् च सा दिवसभूता ।
प्रमदागण गीत वादित्र, कहक्कह तुष्टि शब्दाला ।)

देव-देवियों के उपपात अर्थात् आगमन के कारण उनके ओज, तेज, आभूषणों और विमानों की प्रभा से वह चैत्र कृष्णा अष्टमी की रात्रि दिन के समान प्रकाशमान बन गई। कोकिलकण्ठिनी सुन्दरियों के समूहों द्वारा गाये गये गीतों की सुमधुर स्वरलहरियों एवं उनके द्वारा बजाए गए वाद्य यन्त्रों की तालयुक्त सुमधुर ध्वनि तथा प्रमुदित-मोदनियों के कहकहों से वह रात्रि शब्दाला अर्थात् वाचाल प्रतीत होने लगी ।१३५।

उड्ढमहोतिरियलोए, वत्थव्वाओ दिसा-कुमारीओ ।
ओहिणाएण जिणं, जाए नाऊण नमि हुणे ।१३६।
(ऊर्ध्वाधः तिर्यक् लोके, वास्तव्याः दिक्कुमार्यः ।
अवधि ज्ञानेन जिनान् जातान्, ज्ञात्वा नमित हर्षे ।)

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक् लोक में निवास करने वाली दिक्कुमारियों ने अवधिज्ञान से तीर्थंकरों का हुआ जानकर सहसा
।१३६।

भोगंकराभोगवती. सुभोगा तह भोगमालिणि सुपत्था ।
तत्तो चेव सुमित्ता, अणिंदिया पुप्फमाला य ।१४४।
(भोगकरा भोगवती, सुभोगा तथा भोगमालिनी सुपथ्या ।
ततश्चैव सुमित्रा, अनिन्दिता पुष्पमाला च ।)

भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी. सुवच्छा, सुमित्रा, अनिन्दिता और पुष्पमाला ।१४४।

एया उ पवणेणं, सुभेण ते जम्मभूमिवणखंडे ।।
आलोयणं समंता, साहेंति पहट्ठमणाए ।१४५।
(इमास्तु पवनेन, शुभेन ताः जन्मभूमि वन खण्डे ।
आलोडनं समंतात्, शासयन्ति प्रहर्षितमनाः ।)

ये (अधोलोक निवासिनी) दिशाकुमारियां शुभ-सुखद पवन विकूर्वित कर तीर्थंकरों के जन्मभवन और उसके चारों ओर एक योजन भूमि को बड़े हर्ष के साथ पूरी तरह परिमार्जित कर स्वच्छ और सुन्दर बनाती हैं ।१४५।

अमणुण्ण दुरभिगंधिं, तण सक्क पर पत्त विरहियं काउं ।
महुरं गायंती उ, पासे चिट्ठंति जणणीणं ।१४६।
(अमनोज्ञ दुरभिगंधं, तृण सिक्त्र परपत्र विरहितं कृत्वा ।
मधुरं गायन्त्यस्तु. पार्श्वे तिष्ठन्ति जननीनाम् ।)

वे इस प्रमार्जन क्रिया द्वारा उस भूमि को अमनोज्ञ पदार्थो दुर्गन्ध, तृण, पत्रादि से रहित बनाकर मधुर संगीत गाती हुई तीर्थंकरों की माताओं के पास उपस्थित रहती हैं ।१४६।

मेहंकरा मेहवई: सुमेह तह मेहमालिणि विचित्ता ।
तत्तो य तोयधारा, वलाहका वारिसेणा य ।१४७।
(मेघंकरा मेघवती, सुमेघ तथा मेघमालिनी विचित्रा ।
ततश्च तोयधारा, वलाहका वारिषेणा च ।)

मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, विचित्रा, तोयधरा, बलाहका और वारिषेणा।१४७।

(जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति में पांचवीं और छठी देवियों का नाम सुवच्छा और वच्छमित्रा उल्लिखित हैं।)

नंदणवणकूडेसु, एयाओ उड्ढलोग वत्थव्वा।
तुरियं वि उव्विउणं, सगज्जिय सविज्जुले मेहे।१४८।
(नंदनवनकूटेभ्यो, एताः ऊर्ध्वलोक वास्तव्याः।
त्वरितं विउज्झित्वा, सगर्जितसविद्युतान् मेघान्।)

ऊर्ध्वलोक में नन्दनवन के कूटों पर निवास करने वाली ये देवियां बड़ी स्फूर्ति के साथ सुमधुर गर्जन और बिजली की चमक सहित बादलों की विकुर्वणा कर।१४८।

धोयाक्खिलल विरहियं, सुरहिजलबिंदु विद्दवियरेणु।
थाणयण[1] निव्वुइकरं करेंति वसुधातले तत्थ।१४९।
(धौताखिल विरहितं, सुरभिजलबिन्दु विद्रावितरेणु।
उत्थानमनं निर्वृतिकरं, कुर्वन्ति वसुधातले तत्र।)

स्खलनादिरहित सुगन्धित जलबिन्दुओं द्वारा धूलि को जमा कर वहां के भूमितल को हल्का गीला और आनन्दप्रद बना देती हैं।१४९।

पुणरवि जलयर फलियं, सव्वोउय संभवं सुरभिगंधि।
वासंति कुसुमवासं, सुरंगणाहिं वा मीसं।१५०।
(पुनरपि जलधरफलितं, सर्वर्तुज संभवं सुरभिगंधं।
वर्षयन्ति कुसुमवृष्टिं, स्वर्गांगनाभ्योमिश्रम्।)

तदनन्तर वे विविध ऋतुओं के बादलों की विकुर्वणा कर उन पर सब ऋतु-संभावि की गंध से मिश्रित अत्यन्त मनोहर-मधुर पुष्पों की सर्वत्र समान रूप से वर्षा करती हैं।१५०।

---

[1] थाणयं — देशी। उत्थानगत अर्थात् विकास किया हुआ।

तो तं दसद्धवण्णं, पिंडगयं छमायले विमले ।
सोहइ नवसरयमिवसुनिम्मलं जोइ संगमणे ।१५१।
(ततस्तद्दशार्द्धवर्णं, पिण्डगतं क्ष्मातले विमले ।
शोभते नवसरमिव सुनिर्मलं ज्योतिसंगमे ।)

एक दूसरे से संलग्न पांच वर्णों के फूलों का सर्वत्र छाया हुआ वह एकीभूत पुष्प समूह सूर्य की किरणों के संयोग से चकाचौंध फैलाते हुए नवसर हार के समान उस विमल धरातल पर सुशोभित होने लगा ।१५१।

तह कालागरु कुंदुरुक्क धूयमप्पमत्ते तद्दिसिकं ।
काउ सुरकण्णाउ चिट्ठंति पगासमाणीउ ।१५२।
(तथा कालागरुः कुंदरुक्क,-धूपमप्रमत्ताः तद्दिशिकम् ।
कृत्वा सुरकन्यकास्तु, तिष्ठन्ति प्रकाशमानाः ।)

वे दिशाकुमारियां कालागरु, कुन्दुरुक्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से निष्पन्न धूप को जलाकर जिनजन्म-भवन की ओर सुगन्धित धूम को प्रवाहित करती हुई तथा अपने शरीर की प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करती हुई अप्रमत्त हो उपस्थित रहती हैं ।१५२।

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा चेव ।
विजयाय वेजयन्ती, जयन्ती अवराइआऽट्ठमिया ।१५३।
(नन्दोत्तरा च नन्दा, आनन्दा नन्दिवर्धना चैव ।
विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता अष्टमिका ।)

नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और आठवीं अपराजिता—।१५३।

एयाउ रूयग नगे, पुव्वे कूडे वसंती अमरीओ ।
आयंसग हत्थाओ, जणणीण ट्ठंति पुव्वेण ।१५४।
(एतास्तु रूचकनगे, पूर्वे कूटे वसन्त्यः अमर्यः ।
आदर्शक हस्ताः, जननीनां तिष्ठन्ति पूर्वेण ।)

ये रुचक पर्वत के पूर्व-कूट पर निवास करने वाली दिक्कुमारियाँ तीर्थंकरों की माताओं के पूर्व की ओर हाथों में दर्पण लिये खड़ी रहती हैं ।।१५४।।

दक्खिण-दिसाए रुचके, अट्ठसमाहार सुप्पइण्णा य ।
तत्तो य सुप्पबुद्धा, जसोधरा चेव लच्छिमई ।।१५५।।
(रुचके दक्षिण कूटे, अष्टसमाहार सुप्रदत्ता च ।
तत्तश्च सुप्रबुद्धा, यशोधरा चैव लक्ष्मीमती ।।)

रुचक, मध्यप्रदेशस्थ पर्वत के दक्षिण कूट पर ... वाली आठ दिक्कुमारियाँ समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, ... लक्ष्मीवती ।।१५५।।

---

* १५४ और १५५ नम्बर वाली ... हस्तलिखित ... ताड़पत्रीय प्रति से ... गाथाएं भी विद्यमान हैं :—

भोगवती चित्तगुत्ता, वसुंधरा चेव ...
देवीण दाहिणेणं, चिट्ठंति पयायमाणीओ ...
(भोगवती चित्रगुप्ता, वसुंधरा चैव ...
देवीनां दक्षिणेन तिष्ठन्ति प्रगायन्त्यः ...
देवीउ देवजाए, रत्तदेवी सुराए पुरओ ...
पउमावई णवमियामहासीया य ...
देव्यः देवजातिः सुरा च पृथ्वी ...
पद्मावती च नवमी, भद्रा, सीता ...

भोगवती (देवकी) ...
हाथों में झारियां लिये ...
गाती हुई उपस्थित रहती हैं ...
... ...

रूयगावर कूड निवासिणीओ पच्चत्थिमेण जणणीणं ।
गायन्तीउ चिट्ठंति, तालिवेंटे गहेऊणं ।१५६।
(रुचकाऽपरकूट-निवासिन्यः, पश्चिमेन जननीनाम् ।
गायन्त्यः तिष्ठन्ति, तालवृन्तान् गृहित्वा ।)

ये रुचक पर्वत के अपर कूट पर निवास करने वाली दिक्कुमारिकाएं जिनेन्द्रों की माताओं के पश्चिम पार्श्व की ओर गाती हुई तथा व्यंजन हाथ में लिये उपस्थित रहती हैं ।१५६।

तत्तो अलंबुसा. मिस्सकेसी तह पुंडरिगिणी चेव ।
वारुणीहासा सव्वग, सिरी हिरी चेव उत्तरओ ।१५७।
(ततोऽलंबुपा, विश्वकीर्ति तथा पुंडरीकिणी चैव ।
वारुणीहासा, सर्वगा, श्रीश्चैव ह्री उत्तरतः)

रुचक पर्वत की उत्तर दिशा में रहने वाली दिशा कुमारियां—अलम्बुषा. मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी. वारुणी, हासा. सर्वगा (सर्वप्रभा), श्री और ह्री ।१५७।

चामर हत्थगयाओ, चउरामहुरभणियाओ ।
गायंतीउ महुरं, चिट्ठंति दससु वासेसु ।१५८।
(चामर हस्तगताः, चतुराः मधुरभाषिण्यः ।
गायन्त्यस्तु मधुरं, तिष्ठन्ति दशसु वर्षेषु ।)

जो बड़ी ही चतुर और प्रिय भाषिणियां होती हैं वे दशों क्षेत्रों की जिन-माताओं के चारों ओर चँवर ढुलातीं और मधुर गीत गाती हुई खड़ी रहती हैं ।१५८।

रुयगे विदिसाकूडेसु, चत्तारि दिसिकुमारीओ ।
चित्ता य चित्तकणगा, सतेर, सोयामणि सनामा ।१५९।
(रुचके विदिशाकूटेषु, चत्वारि दिशि कुमारिकाः ।
चित्रा च चित्रकनकां, सतेरा सौदामिनीस्वनामा ।)

रुचक पर्वत के विदिशा कूटों पर निवास करने वाली चित्रा, चित्रकनका, शतेरा और सौदामिनी ये चार दिक्कुमारियां ।१५९।

चउसु दिसासु ठियाउ, जिणवराण माणीणं ।
महुरं गायंतीओ, विज्जुज्जोयं करेंति हु ।१६०।
(चतसृषु दिशासु स्थिताः, जिनवराणां मातॄणाम् ।
मधुरं गायन्त्यः, विद्युदुद्योतं कुर्वन्ति खलु ।)

जिनेन्द्र भगवन्तों की माताओं के चारों ओर चारों दिशाओं में खड़ी हो मधुर गान के साथ-साथ विद्युत का प्रकाश करती है ।१६०।

रुयगस्स मज्झओ जे, दिसासु चत्तारि दिसिकुमारीओ ।
रुयगा रुयगजसावि य, सुरूप रुयगावई सनामा ।१६१।
(रुचकस्य मध्यतः याः दिशासु चत्वारि दिक्कुमारिकाः ।
रुचका रुचकयशापि च, सुरूप रुचकावती सनामा ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग की चारों दिशाओं में रहने वाली रुचका, रुचकयशा, सुरूपा और रुचकावती ।१६१।

एया उ जणणीणं चउद्दिसिं चउरमहुर भणिया उ ।
दीविय हत्थगया उ उवचिट्ठंति पगायमाणीओ ।१६२।
(एतास्तु जननीनां, चतुर्दिक्षु चतुर-मधुरभणिताः ।
दीपिका हस्तगताः, उपतिष्ठन्ति प्रगायमानाः ।)

ये चारों चतुर और मधुरभाषिणी दिक्कुमारियां जिनेन्द्रों की माताओं के चारों ओर चारों दिशाओं में गीत गाती हुई अपने हाथों में प्रकाश पूर्ण दीप लिये खड़ी रहती हैं ।१६२।

रुयगस्स मज्झ देसे, वसंति विदिसासु दिव्व देवीओ ।
विजया य वेजयन्ती, जयन्ति अपराजिया चेव ।१६३।
(रुचकस्य मध्यदेशे, वसंति विदिशासु दिव्य-देव्यः ।
विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता चैव ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग में विदिशाओं में रहने वाली— विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता--ये चार दिव्य देवियां ।१६३।

नालं छेत्तूण तया, मुणालसिरियं जिणिंद चंदाणं ।
रयण समुग्गे* काउं, पससत्थ भूमीसु निहणंति ।१६४।
(नालं छित्वा तदा, मृणालसदृशं जिनेन्द्र चन्द्राणाम् ।
रत्न समुद्गे कृत्वा, प्रशस्त भूमीषु निःखनन्ति ।)

जिनेन्द्र बालचन्द्रों के कमलनाल के समान कोमल नाल को काट कर, उन्हें रत्नपात्रों में रख प्रशस्त एवं पवित्र भूमि के गर्भ में विवर खोद कर गाड़ देती हैं ।१६४।

(जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के उल्लेखानुसार विवर खोद कर नाल को उसमें रख देती हैं और उस को रत्नों और वज्रों से ढक कर ऊपर मिट्टी डाल हरितालिका (दूब) से विवर के मुख को बांध देती हैं ताकि उस पर दूब उग जाने के पश्चात् कालान्तर में किसी प्रकार की आशातना न हो ।)

हरियालियाए पेढाइं, बन्धित्ता विवराण सव्वेसिं ।
कुव्वन्ति कदलि घरए, दाहिण्ण पुव्वुत्तरदिसासु ।१६५।
(हरितालिकाभिः पृष्ठानि बध्वा विवराणि सर्वेषाम् ।
कुर्वन्ति कदलि गृहाणि, दक्षिण-पूर्वोत्तरदिशासु ।)

फिर वे उन सब विवरों (खड्डों) को पृष्ठ को दूब से बांधती हैं और पश्चिम दिशा को छोड़कर दक्षिण; पूर्व तथा उत्तर इन तीनों दिशाओं में तीन कदलिगृह बनाती है ।१६५।

तेसिं वहुमज्झदेसे, चाउस्साले तओ विउव्वेंति ।
मज्झे तंसि तिन्नि य, रययंति सिंहासणवराइं ।१६६।
(तासां वहुमध्य देशे, चतुःशालकानि ततः विकुर्वन्ति ।
मध्ये तासां त्रीणि च, रचयन्ति सिंहासन वराणि ।)

* समुग्ग—समुद्ग । पात्र विशेष (जीवाभिगम सटीक)

उन कदलीगृहों के नितान्त मध्य भाग में वे अपनी वैक्रिय शक्ति द्वारा चतुःशालाएं और तीनों चतुःशालाओं के मध्य तीन श्रेष्ठ सिंहासनों की रचना करती हैं ।१६६।

ताहे जिणजणणीओ, जेण महिया दाहिणीय चउसाले ।
सिंहासणे ठविता, सयपाग सहस्स पागेहिं ।१६७।
(ततः जिनजननीः, येन महीयसी दक्षिणीयचतुःशाला ।
सिंहासने स्थापयित्वा, शतपाकसहस्रपाकैश्च: ।)

तत्पश्चात् वे तीर्थंकरों की माताओं को दक्षिण दिशा में स्थित चतुःशाला में ले जा कर सिंहासन पर बैठाती हैं और शतपाक, सहस्रपाक तैलों से ।१६७।

अब्भंगिऊण तउ गत्तियं, गंधोदएण सुरभीणं ।
उव्वट्टेऊण तओ पुरत्थिमं नेंति चउसालं ।१६८।
(अभ्यंगयित्वा ततस्तनैः, गंधोदकेन सुरभिणा ।
उद्वर्तयित्वा ततः पूर्वस्मिन् नयन्ति चतुःशालाम् ।)

धीरे धीरे उनके शरीर का अभ्यंगन-मर्दन करती हैं । अभ्यंगन के अनन्तर शतपाकादि तैलों की चिकनाहट को उनके शरीर से दूर करने हेतु सुरभिपूर्ण गन्धोदक से जिन-जननियों के शरीर का उद्वर्तन कर उन्हें पूर्व दिशा की चतुःशालाओं में ले जाती हैं ।१६८।

तत्थ ठवेउं सीहासणे सुमणि कणगरयणकलसेहिं ।
पउमुप्पल पिहाणेहिं, सुरभि (सि) सीतोय भरिएहिं ।१६९।
(तत्र स्थापयित्वा सिंहासनेषु, सुमणिकनकरत्नकलशैः ।
पद्मोत्पलपिधानैः, सुरभि शीतोदकभरितैः ।)

वहां चतुःशाला के बीच में रखे सिंहासनों पर सुखासीन कर, उत्तम मणियों, रत्नों और स्वर्ण से निर्मित पद्म एवं उत्पल के ढक्कनों से ढंके तथा सुगन्धित शीतोदक से भरे कलशों से ।१६९।

ण्हावेत्तं विहिणा, अब्भीओ दुन्नि मंडिया विहिणा ।
सुहएहिं सिंचएहिं, विभूसणेहिं करेंति ।१७०।

(स्नापयित्वा विधिना, जनन्यः दशापि मण्डिताः विधिना ।
लघुकैर्जिनवरेन्द्राः, दिव्याभरणैः मनंति [मंडन्ति] ।)

दशों जिन-जननियों को विधिपूर्वक नहला कर उन्हें शृंगार चातुरी के साथ दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत करती हैं। वे छोटे छोटे दिव्य आभरणों से उन नवजात तीर्थङ्करों को भी विभूषित करती हैं।१७०।

अह उत्तरिल्ल भवणं; नेउं सीहासणे निवेसित्ता ।
हरिचंदण[1] कट्ठाइं; आणेउं नन्दणवणाओ ।१७१।
(अथ उत्तरिल्लं भवनं; नीत्वा सिंहासने निवेशयित्वा ।
हरि चन्दनकाष्ठानि; आनेतुं नन्दनवनात् ।)

तदनन्तर वे उन्हें उत्तर दिशा में बनाये गये भवन की चतुःशाला में ले जाकर सिंहासन पर आसीन करती हैं और नन्दनवन से हरित चन्दन (सरस गोशीर्ष चन्दन) की लकड़ियाँ लाकर।१७१।

समिहाओ काऊणं ! अग्गिहोमं करेंति पययाउ ।
भूतीकम्मं काउं, जिणाणरक्खं अह करेंति ।१७२।
(समिधान् कृत्वा, अग्निहोत्रं कुर्वन्ति प्रयतास्तु ।
भूतिकर्म कृत्वा, जिनानां रक्षामथ कुर्वन्ति ।)

उनकी समिधा बनाती हैं। तदनन्तर वे यत्नपूर्वक हवन करने के पश्चात् भूतिकर्म कर तीर्थङ्करों की अनिष्टों से रक्षा करती हैं।
।१७२।

तित्थयर कन्नमूले, मणिमय पासाण वट्टए[2] मसिणे ।
आफोडेंति भणेत्तिय, महिहर आऊ भवंतु जिणा ।१७३।

---

१ हरि चंदण—देशी—कुङ्कुमे, देशी शब्द नाम माला, सर्ग ८, गाथा ६५। तद्धि नात्रोपयुक्तम्। अत्र तु सरस-गोशीर्षचन्दनार्थे शब्दमेतत् प्रयुक्तं प्रतिभाति।
२ वृत्तको—पाषाणवृत्तगोलकावित्यर्थः।

(तीर्थंकर कर्णमूले, मणिमयपाषाण वर्तकौ कृष्णौ ।
आस्फोटयन्ति भणन्ति च महिधर-आयु-भवन्तु जिनाः ।)

तत्पश्चात् वे मणिमय काले पाषाण के दो गोल वृत्ताकार बाटों को तीर्थंकरों के कर्णमूल के पास आस्फोटित (परस्पर टकराती) करती हुई कहती हैं—'हे जिनेन्द्र भगवान्! आपकी महीधर—पर्वत के समान आयु हो।१७३।

रययमएहिं छन्दं, अच्छर या तंदुलेहिं विमलेहिं ।
जिणवराणं पुरओ, करेंति अट्ठट्ठ मंगलयं ।१७४।
(रजतमयैः स्वच्छं, अप्सरसाः तंदुलैर्विमलैः ।
तीर्थंकराणां पुरतः कुर्वन्ति अष्टाष्टमंगलकम् ।)

इसके पश्चात् वे अप्सराएं चांदी के बने विमल चावलों से शीघ्रतापूर्वक उन तीर्थंकरों के सम्मुख आठ आठ अष्ट मंगलों का निर्माण करती है।१७४।

जलथलय पंचवण्णिय, सव्वोउ य सुरहि कुसुमकय पूयं ।
काउं कोउग सयले, चउदिसि घोसणं काही ।१७५।
(जल-स्थलज पंचवर्णैः, सर्वर्तुक सुरभि कुसुमकृता पूजा ।
कृत्वा कौतुक सकलानि, चतुर्दिशासु घोषणामकार्षीत् ।)

तत्पश्चात् उन्होंने जल एवं स्थल में उत्पन्न हुए, परम सुगन्धित पांच प्रकार के पुष्पों से गहरा भक्ति पूर्वक उनकी पूजा की। पूजा के पश्चात् अनेक प्रकार के कौतुक किये और फिर इस प्रकार की घोषणा की।१७५।

जिणवर माउयाणं, जिणवराण य मणेण जो पावं ।
चिंतेज्ज तस्स सीसं, फुट्टिहिइ निच्छियं सयहा ।१७६।
(तीर्थंकर-मातृणां, तीर्थंकराणां च मनसा यः पापं ।
चिन्तयेत् तस्य हि शिरः, स्फुटिष्यति निश्चयं शतधा ।)

"तीर्थङ्करों के माता पिता और तीर्थङ्करों के प्रति यदि कोई मन से भी पापपूर्ण कृत्य करने का विचार करेगा तो यह निस्संदिग्ध है कि उस का शिर सौ टुकड़े होकर फूट जायगा।१७६।"

एवं उग्घोसेवु ता, तो घत्तु जिणेम माईए।
ठावेंति जम्मभवणे, सयणिज्जे हरिसिय मणाओ।१७७।
(एवं उद्‌घोषयित्वा ताः, ततः गृहीत्वा जिनेशमातॄन्।
स्थापयन्ति जन्मभवने, शयनीये हर्षितमनाः।)

इस प्रकार की उद्‌घोषणा करके परम हर्ष मनाती हुई वे तीर्थंकरों की माताओं को जन्म भवनों में उनको शय्याओं पर लाकर लिटा देती हैं।१७७।

परिवारेउ सव्वा तो, ते सिंगार हावकलियाओ।
गायंति सवण सुहयं, सत्तस्सर सीभरं गेयं।१७८।
(परिवार्य सर्वास्ततस्ताः श्रृंगार हाव कलिताः;
गायन्ति श्रवण सुखदं, सप्त स्वर सीभरं गेयम्।)

तदनन्तर शृंगार और हाव भाव की प्रतीक वे ५६ दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ अपना सब दिशाकुमारियों के साथ एकत्र हो सप्तस्वर-लहरियों से सम्मोहक और श्रवण सुखद मंगलगान गाती हैं।१७८।

तत्तो जिण जणणीओ, महुरं गीयं दिसाकुमारीणां।
सुणमाणेउ सहसा, निययाए संगयाताओ।१७९।
(ततः जिन-जनन्यः, मधुरं गीतं दिक्कुमारीणाम्।
श्रूयमाणास्तु सहसा, निद्रया संगतास्ताः।)

इसके पश्चात् दिशाकुमारियों के मधुर संगीत को सुनाती हुई तीर्थंकरों की माताएं सहसा निद्रा में निमग्न हो गईं।१७९।

ताहे भवणाहिवई वीसं, सोलस य वणयराहिवई।
चन्दाइच्चाई गहा, सरिक्ख तारागण समग्गा।१८०।

(ततः भवनाधिपतयो विंश, षोडश च व्यन्तराधिपतयः ।
चन्द्रादित्यादिग्रहाः, नक्षत्रताराणगण समग्राः ।)

तदनन्तर बीस भवनेन्द्रों, सोलह व्यन्तरेन्द्रों, चन्द्र, सूर्य, ग्रहों, नक्षत्रों सहित समस्त तारागणों ।१८०।

कप्पाहिवई वि तओ, ओहिनाणेण जाणिऊण जिणे ।
जाहे जाया नरवइ, मयंक सोमाण मज्झा य ।१८१।
(कल्पाधिपतयोऽपि ततः, अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा जिनान् ।
यदा जाताः नराधिप मृगांकसौम्यतच्छाया ।)

और कल्पेन्द्रों ने यद्यपि ज्ञान से जब यह जाना कि चन्द्र और सूर्य से भी अधिक निर्मल एवं तेजस्वी जिनेन्द्रों का जन्म हो गया है ।१८१।

तो हरिस नमर (द्) गिरा, सहस्सपच्चुट्ठिया सपरिवारा ।
महियलनमिय वयंगा, संथुणियं आयरतरेण ।१८२।
(ततः हर्षगद्गदगिरः, सहसैवप्रत्युत्थिताः सपरिवाराः ।
महीतलनमित वदनाः, संस्तुवं आदरतरेण ।)

तो हर्ष पूर्ण गद्गद वचन बोलते हुए सहसा अपने परिवार सहित उठ खड़े हुए और पृथ्वीतल पर अपना मस्तक झुका कर बड़े आदर के साथ उन्होंने तीर्थंकरों की स्तुति की ।१८२।

सविड्ढीए सपरिवारा, हरिसवसुल्लसियरोमकूवा य ।
जिणचंदे वंदेउमणा, जम्मणभवणाइं जंति तओ ।१८३।
(सर्वद्धर्या सपरिवारा, हर्षवशोल्लसित रोमकूपाः ।
जिनचन्द्रान् वन्दितुमनसः, जन्मभवनानि यान्ति ततः ।)

उन्होंने हर्षातिरेक से रोमांचित हो अपनी समस्त ऋद्धि सहित और अपने समस्त परिवार के साथ [illegible]

[illegible]

[illegible]

हरिसियमणा सुरिंदा, जिणचंदे उयएतहिं दट्ठुं ।
जाया समहियसोहा, ससिव्वदट्ठूण कुमुयवणे ।१८४।
(हर्षितमनाः सुरेन्द्राः, जिनचन्द्रान् उदितान् तत्र दृष्ट्वा ।
जाताः समधिकशोभाः, शशिमिव दृष्ट्वा कुमुदवनाः ।)

हर्षितमना देवेन्द्रों ने जब वहां नवोदित जिनचन्द्रों के दर्शन किये तो तत्काल उनकी शोभा-कान्ति ठीक उसी प्रकार अत्यधिक बढ़ गई, जिस प्रकार कि चन्द्र दर्शन करते ही कुमुद बन की ।१८४।

जणणि सहिए जिणिंदे, नमिऊण पयाहिणं काऊणं ।
करयल कयंजलिपुडा, विणयेण य पज्जुवासेंति ।१८५।
(जननिसहितान् जिनचन्द्रान् नत्वा प्रदक्षिणां कृत्वा ।
करतलकृताञ्जलिपुटाः, विनयेन च पर्युपासन्ति ।)

माताओं सहित जिनेन्द्रों को नमस्कार कर और प्रदक्षिणा कर के वे सब हाथ जोड़ विनय पूर्वक उनकी पर्युपासना करने लगे ।१८५।

अह सोहम्मे कप्पे, विसयपसत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
सक्कस्स नवरि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलियं ।१८६।
(अथ सौधर्मे कल्पे, विषय प्रसक्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
शक्रस्य नवरं दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

तीर्थंकरों का जन्म होते ही सौधर्म कल्प में दिव्य देवभोगों में प्रसक्त सुरवरेन्द्र शक्र का दिव्य सिंहासन सहसा हिला ।१८६।

अह ईसाणे कप्पे, विसपसत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
ईसाणस्स वि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलियं ।१८७।
(अथेशाने कल्पे, विषयप्रसक्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
ईशानस्यापि दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

इसी प्रकार ईशान कल्प में विषयासक्त सुरश्रेष्ठों के अधिपति ईशानेन्द्र का सिंहासन भी सहसा चलायमान हुआ ।१८७।

ओहीए उवउत्ता, जाये दट्ठूण जिणवरे तो ते ।
पचलिय कुंडलमउडा, आसणरयणं पमोत्तूण ॥१८८॥
(अवधिज्ञाने उपयुक्ताः जातान् दृष्ट्वा जिनवरान् तु ते ।
प्रचलित-कुण्डलमौल्य, आसनरत्नं प्रमुच्य ।)

अवधिज्ञान के उपयोग द्वारा नवजात तीर्थंकरों को देखते ही चमचमाते चपल कुण्डल-मुकुटधर देवेन्द्र अपने आसन रत्न से उतर कर ॥१८८॥

अह सत्तट्ठ पयाइं, अणु (अभि) गच्छिऊण जिणवरे वरदे ।
अंचंति वामजाणुं, इयरं भूमीए निहट्टु ॥१८९॥
(अथ सप्ताष्ट पदानि, अभिगत्वा जिनवरान् वरदान ।
अञ्चन्ति वामं जानुं, इतरं भूमौ निहृत्य ।)

जिनेन्द्र जिस दिशा में विद्यमान है, उस ओर सात आठ पद जिनेन्द्रों के अभिमुख जाकर वाम जानु को मोड़कर तथा दक्षिण जानु को भूमि पर टिका ॥१८९॥

पणमंति सिरेण जिणे, पुणो पुणो पागसासणेपमुहा ।
उट्ठेऊण भणंति य, वयणमिणं नेगमेसिसुरे ॥१९०॥
(प्रणमन्ति शिरसा जिनान्, पुनर्पुनः पाकशासना प्रमुखाः ।
उत्थाय भणन्ति च, वचनमिदं नैगमेषि-सुरान् ।)

मस्तक झुकाकर वे इन्द्र बार बार बड़े मान के साथ जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और तदनन्तर उठकर नैगमेषी देवों को इस प्रकार के वचन बोलते हैं ॥१९०॥

पंचसु एरवए सु, पंचसु भरहेसु दस जिणा जाया ।
कुणहा अभिसेयं, करेह खिप्पं सुरगणाणं ॥१९१॥
(पंचसु एरवतेषु, पंचसु भरतेषु दस जिनाः जाताः ।
कारियतोऽभिषेकं, कुरुत क्षिप्रं सुरगणानाम् ।)

पांच ऐरवत क्षेत्रों में पांच भरत क्षेत्रों में इस प्रकार दस तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। सब देवगणों को विदित कर दो कि हम सब उन तीर्थंकर प्रभुओं का जन्माभिषेक करेंगे।१६१।

सक्कीसाणाणत्तो, तो ते घेत्तु सुरे विसय सुत्ते ।
वयण भणंति भणिया, सुघोस घंटाए बोहेउं ।१९२।
(शक्रेशाना-ज्ञातः ततस्ते गृहीतुं सुरान् विषयसुप्तान् ।
वचनं भणन्ति भणिताः, सुघोष घंटया बोधयितुं ।)

शक्र और ईशानेन्द्र के इस आदेश को सुनते ही विषयसुख में निमग्न देवताओं को इन्द्रों की आज्ञा से परिचित करने तथा उन्हें साथ लेने के लिये हरि-नैगमेषी देव सुघोष घण्टा का घोष करते हुए इस प्रकार के वचन बोलते हैं।१६२।

भो भो सुणंतु सव्वे, सुरवसहा सुरवतीण वयणमिणं ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा दससु वासेसु ।१९३।
(भो भो शृण्वन्तु सर्वे, सुरवृषभाः सुरपतीनां वचनमिदम् ।
एकसमयेन जाताः, दशोऽपि जिनाः दशषु वर्षेषु)

"हे सुरवृषभो ! देवेन्द्रों के इस निर्देश को आप सभी सुनिये" "भरत ऐरवत आदि दशों क्षेत्रों में एक ही समय में दशों ही तीर्थङ्करों का जन्म हुआ है।१६३।

ता तेसिं जम्म महो, जम्मजरामरणविप्प मुक्काणं ।
वच्चामो मणुयलोगं, जिणभिसेगस्स कज्जेण ।१९४।
(ततः तेषां जन्म महो, जन्मजरामरण विमुक्तानाम् ।
व्रजामो मनुष्यलोकं, जिनाभिषेकस्य कार्येण ।)

जन्म-जरा-मृत्यु से सदा-सर्वदा के लिये विप्रमुक्त होने वाले उन जिनेश्वरों का जन्म महोत्सव मनाने, जिनाभिषेक का कार्य निष्पन्न करने के लिये हम मनुष्य लोक में जा रहे हैं।१६४।

तं तुब्भेवि नपरियणा, आयरित्तएण गहिय नेवत्थ ।[1]
अण्णेहं[2] देवराए, सविमाण गया सह नियहिं ।१९५।
(नतू यूयमपि नपरिजनाः, आर्यत्वेन गृहीत नेपथ्याः ।
अन्वीहस्व देवराजान्, स्व विमानगताः सह नियता ।)

इसलिये परिजन सहित आप सब भी ऐसे अवसरों पर परम्परा से चले आ रहे अपने आचार-व्यवहार के अनुरूप वेष धारण कर अपने अपने विमान पर आरूढ़ हो आकाश में साथ साथ इन्द्रों का अनुगमन करें" ।१९५।

तो ते सुरवरवसभा, वयणं सोऊण नेगमेसीणं ।
जाणविमाणारूढा, सक्कविमाणा समोसरिया ।१९६।
(ततः ते सुरवरवृषभाः, वचन श्रुत्वा नैगमेषीनाम् ।
यान विमानारूढाः, शक्रविमानात् समवसृताः ।)

इति नैगमेषी देवों के वचन सुनते ही वे सब श्रेष्ठ देवगण अपने अपने यानों एवं विमानों पर आरूढ़ हो इन्द्र के विमानों से बाहर निकल एकत्रित हुए ।१९६।

अह वासवावि सव्वे, उत्तर वेउव्विए करिय रूवे ।
एरावयधवलसिरिं, कय उवमट्ठा समारूढा ।१९७
(अथ वासवा अपि सर्वे, उत्तरविकुर्विताः कृतरूपाः ।
ऐरावत धवल वृषं, कृतउपमाः समारूढाः ।)

तदनन्तर उत्तर वैक्रिय लब्धि द्वारा रूप बनाते हुए वे इन्द्र भी अमोघ करते हुए ऐरावत एवं श्वेत वृषभ पर आरूढ़ हुए ।१९७।

गेण्हंति दो वि सक्का, उत्तर वे उव्विगहिं रूवाणं ।
पउमाणं कुसुम वि, करिंसे नु संति दूरं ।१९८।

[illegible]

(आरोहतः द्वावपि शक्रौ, उत्तवैंक्रियाभिः पञ्चाशतम् ।
पञ्चाशतम् दशष्वपि, क्षेत्रेषु एन्ति द्रुतम् ।)

उत्तर वैक्रिय लब्धि द्वारा अपने अपने पचास पचास स्वरूप बनाये हुए दोनों इन्द्र दशों क्षेत्रों में तत्काल पहुंचते हैं ।१९८।

पहय पडुपंडपोसा, सलोगवालग्गमहिसि परिवारा ।
संपत्थियाय सुरवई, जिणाण पामूलमभिचंदा ।१९९।
(प्रहत पटु पंडपोपाः स्वलोकपालाग्रमहीपि परिवाराः ।
संप्रस्थितौ सुरपती, जिनानां पादमूलमभिचन्द्राः ।)

समस्त देवपरिवार और अग्रमहीपियों से परिवृत्त वे देवेन्द्र दिव्य वाद्यों के सुमधुर घोष के बीच नवजात तीर्थंकरों के चरणों की सेवा में उपस्थित होने की उत्कण्ठा लिये सुरालय से प्रस्थित हुए ।१९९।

संपत्ता य खणेणं, सुरच्छर संघ परिवुडा तहियं ।
जाया जत्थ जिणंदा, वोच्छिण्ण पुणब्भवा गुरुणो ।२००।
(संप्राप्तौ च क्षणेण, सुराप्सरासंघपरिवृताः तत्र ।
जाताः यत्र जिनेन्द्राः, व्युच्छिन्नपुनर्भवाः गुरुवः ।)

अप्सराओं एवं विशाल देव परिवार से परिवृत्त वे देवेन्द्र पल भर में ही उन स्थानों पर पहुँचे जहाँ बड़े लम्बे अन्तराल की व्युच्छित्ति के पश्चात् जगद्गुरु तीर्थंकरों ने पुनः धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ।२००।

पेच्छंति सव्व सक्का, जिणेवि भवसागरंतरेदीवे ।
इक्खागवंस जाए, सयल जगाणंद णे हत्थं ।२०१।
(प्रेक्षन्ति सर्वे शक्राः, जिनानपि भवसागरान्तरे दीपान् ।
इक्ष्वाकुवंश जातान् , सकल जगानन्दस्नेहार्थम् ।)

वहाँ वे देवेन्द्र और देवी-देवगण हर्षविभोर हो अथाह अपार ...त भव सागर के बीच अन्तरीपों के समान, समस्त संसार को

आनन्द प्रदान करने वाले और इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए उन नेमीश्वरनाथ तीर्थंकरों को देखते हैं ।२०१।

अह जिण दंसणवियसिय, मुहकमला वंदिऊण जिणचंदे ।
देवगण संपरिवुडा, इंदा जिणजम्मभवणाणं ।२०२।
(अथ जिनदर्शन विकसित, मुखकमलाः वंदित्वा जिनचन्द्रान् ।
देवगण संपरिवृताः, इन्द्राः जिन-जन्मभवनानाम् ।)

जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शनजन्य हर्षातिरेक से प्रफुल्ल वदनारविन्द एवं देववृन्द से परिवृत इन्द्रों ने उन तीर्थंकरों को वन्दन कर जिनेन्द्रजन्म प्रासादों के ।२०२।

अह पासे ठाऊणं, भणंति सेणावइं पयत्तेणं ।
जणणीण सगासाओ, आणेह जिणे विणएणं ।२०३।
(अथ पार्श्वे स्थित्वा, भणन्ति सेनापतिं प्रयत्नेन ।
जननीनां सकाशात्, आनय जिनान् विनयेन ।)

पास अवस्थित हुए और उन्होंने अपने सैन्य के सेनानी अर्थात् सेनापति इन्द्र को आदेश दिया कि वे पूर्ण विनय पूर्वक नवजात तीर्थंकरों को उनकी माताओं के पास से पूरी सावधानी के साथ ले आवें ।२०३।

तो ते हरिसियवयणा, गाहिऊण अहो मुद्दी जिणवरिंदे ।
विवि विमाण विणया, उवयंति मदरसनवणाण ।२०४।
(ततस्ते हर्षितवदनाः सादी गृहीत्वा अहो मुदितान् जिनवरेन्द्रान् ।
विमान विमानविनयेन, उपनयन्ति मन्दरवनानाम् ।)

हर्ष से पुलकित सेनापति हर्षित वदन जिनेन्द्र एवं देववृन्द के साथ आकाश मार्ग से मन्दर वन की ओर चल पड़ते हैं ।२०४।

तह ते देवाणइं, नवणमहम्मेहिं जिणवरे तत्था ।
ने वि विम्हियमणा, तिहुयणलोयमज्झयम्मि ।२०५।

(अथ ते देवानां पतयः, नयनसहस्रैः जिनवरान् तदा ।
नापि तृप्यन्ति ईक्षन्तः त्रिभुवनशोभाभ्यधिकशोभान्)

त्रैलोक्य की समस्त शोभाओं की अपेक्षा भी अत्यधिक उत्कृष्ट शोभाशाली उन तीर्थंकरों को अपने अपने हजार नेत्रों से निरन्तर देखते हुए भी वे सब इन्द्र अपने आपको पूर्ण तृप्त अनुभव नहीं कर रहे हैं ।२०५।

तो पणमीउ जिणिंदे, इंदा परमेण भत्तिराएण ।
पगया घेत्तूण जिणे, पंचप्पाणे विउव्वेंति ।२०६।
(ततः प्रणम्य जिनेन्द्रान्, इन्द्राः परमेण भक्तिरागेण ।
प्रगताः गृहित्वा जिनान्, पंच[धा]आत्मानं विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर वे इन्द्र परम भक्तिराग से जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और जिनेन्द्रों को लेकर प्रस्थित होते हैं। प्रत्येक इन्द्र वैक्रिय शक्ति द्वारा अपने पांच पांच स्वरूप बनाता है ।२०६।

गहिय जिणिंदो एक्को, दो दो पासेसु चामरे सच्छे ।
धवला य चत्त हत्थे, एक्केक्केत्थ वज्ज धरे ।२०७।
(गृहितजिनेन्द्र एकः, द्वौ द्वौ पार्श्वेषु चामराः स्वच्छाः ।
धवलाश्च चतुर्हस्तेषु एकैकेऽथ वज्रधराः ।)

एक एक इन्द्र ने जिनेन्द्रों को अपने करपल्लवों में ग्रहण किया। प्रत्येक तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में दो दो इन्द्र चँवर डुलाते हुए चलने लगे। पार्श्वस्थ चारों इन्द्र चार हाथों में स्वच्छ सफेद चँवर और चार हाथों में वज्र ग्रहण किये हुए थे ।२०७।

चउव्विह देवसमग्गा, ते सक्का तिव्व जाय परितोसा ।
उप्पइऊणागासां, सुमेरु संपट्ठिया तुरियं ।२०८।
(चतुर्विध देवसमग्राः, ते शक्रा तीव्रजातपरितोषाः ।
उत्पत्याकाशं सुमेरुं संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

वे वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति और वाणव्यन्तर—चारों प्रकार के समस्त देवसमूह एवं इन्द्र उत्कट आह्लाद का अनुभव करते

हुए आकाश में उड़े और मनोवेग से सुमेरु पर्वत की ओर अग्रसर हुए ।२०८।

तो बाल जिणवरिंदे, उवगायंता सुरा सपरिवारा ।
वच्चंति मुइय मणसा, पुरओ सव्वाहिगारेण ।२०९।
(ततः बालजिनवरेन्द्रान् उपगायन्तः सुराः परिवाराः ।
व्रजन्ति मुदितमनसा, पुरतः सर्वाधिकारेण ।)

उन नवजात दसों तीर्थंकरों के आगे आगे सपरिवार सुविशाल सुरसमूह अपनी समस्त दिव्य देवर्द्धि के ठाट के साथ तीर्थंकरों की महिमा के गीत गाता हुआ मुदित मन हो आकाश मार्ग से चलने लगा ।२०९।

पंचण्ह वि मेरूणं गिरिवरसिहरे खणेण संपत्ता ।
कंचण दुमोववेए, सव्वेउय पुप्फ फल भरिए ।२१०।
(पंचानामपि मेरूणां गिरिवरशिखरं क्षणेन संप्राप्ताः ।
कंचन द्रुमोपपेते, सर्वर्तुक पुष्पफलभरिते ।)

जिनेन्द्रों को लिये हुए वे देव-देवेन्द्र सब ऋतुओं के पुष्प-फलों से लदे स्वर्णवृक्षों से सुशोभित पांचों ही सुमेरु पर्वतों के शिखरों पर क्षण भर में ही पहुंच गये ।२१०।

पंचण्ह वि मेरूणं एक्केक्कं होइ पंडगवणं तु ।
जत्थ तेलोक्कस्स वि, लच्छी संपिंडिया तेसु ।२११।
(पंचानामपि मेरूणां, एकैकं भवति पाण्डुकवनं तु ।
यत्र त्रैलोक्यस्यापि, लक्ष्मी संपिंडिता तेषु ।)

पांचों ही मेरु पर्वतों में से प्रत्येक पर एक एक पाण्डुकवन है, जिनकी शोभा श्री के समक्ष तीनों लोक की एकत्र पिण्डीभूत लक्ष्मी भी लज्जित हो जाती है ।२११।

तत्थ बहुमज्झ देसे पूला जिणभवणतोडिया रम्मा ।
वेरुलिय विमलरूवा, पंडुग वणेसु णिविट्ठा ।२१२।

(अथ ते देवानां पतयः, नयनसहस्रैः जिनवरान् तदा ।
नापि तृप्यन्ति ईक्षन्तः त्रिभुवनशोभाभ्यधिकशोभान्)

त्रैलोक्य की समस्त शोभाओं की अपेक्षा भी अत्यधिक उत्कृष्ट शोभाशाली उन तीर्थंकरों को अपने अपने हजार नेत्रों से निरन्तर देखते हुए भी वे सब इन्द्र अपने आपको पूर्ण तृप्त अनुभव नहीं कर रहे हैं ।२०५।

तो पणमीउ जिणिंदे, इंदा परमेण भत्तिराएण ।
पगया घेत्तूण जिणे, पंचप्पाणे विउव्वेंति ।२०६।
(ततः प्रणम्य जिनेन्द्रान्, इन्द्राः परमेण भक्तिरागेण ।
प्रगताः गृहित्वा जिनान्, पंच[धा]आत्मानं विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर वे इन्द्र परम भक्तिराग से जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और जिनेन्द्रों को लेकर प्रस्थित होते हैं। प्रत्येक इन्द्र वैक्रिय शक्ति द्वारा अपने पांच पांच स्वरूप बनाता है ।२०६।

गहिय जिणिंदो एक्को, दो दो पासेसु चामरे सच्छे ।
धवला य चत्त हत्थे, एक्केक्केत्थ वज्ज धरे ।२०७।
(गृहितजिनेन्द्र एकः, द्वौ द्वौ पार्श्वेषु चामराः स्वच्छाः ।
धवलाश्च चतुर्हस्तेषु एकैकेऽथ वज्रधराः ।)

एक एक इन्द्र ने जिनेन्द्रों को अपने करपल्लवों में ग्रहण किया। प्रत्येक तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में दो दो इन्द्र चँवर ढुलाते हुए चलने लगे। पार्श्वस्थ चारों इन्द्र चार हाथों में स्वच्छ सफेद चँवर और चार हाथों में वज्र ग्रहण किये हुए थे ।२०७।

चउव्विह देवसमग्गा, ते सक्का तिव्व जाय परितोसा ।
उप्पइऊणागासं, सुमेरु संपट्ठिया तुरियं ।२०८।
(चतुर्विध देवसमग्राः, ते शक्रा तीव्रजातपरितोषाः ।
उत्पत्याकाशं सुमेरुं संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

वे वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति और वाणव्यन्तर—चारों प्रकार के समस्त देवसमूह एवं इन्द्र उत्कट आह्लाद का अनुभव करते

हुए आकाश में उड़े और मनोवेग से सुमेरु पर्वत की ओर अग्रसर हुए ।२०८।

तो बाल जिणवरिंदे, उवगायंता सुरा सपरिवारा ।
वच्चंति मुइय मणसा, पुरओ सव्वाहिगारेण ।२०९।
(ततः बालजिनवरेन्द्रान्, उपगायन्तः सुराः परिवाराः ।
व्रजन्ति मुदितमनसा, पुरतः सर्वाधिकारेण ।)

उन नवजात दशों तीर्थेश्वरों के आगे आगे सपरिवार सुविशाल सुरसमूह अपनी समस्त दिव्य देवर्द्धि के ठाट के साथ तीर्थंकरों की महिमा के गीत गाता हुआ मुदित मन हो आकाश मार्ग से चलने लगा ।२०९।

पंचण्हं वि मेरूणं गिरिवरसिहरे खणेण संपत्ता ।
कंचण दुमोववेए, सव्वोउय पुप्फ फल भरिए ।२१०।
(पंचानामपि मेरूणां गिरिवरशिखरे क्षणेन संप्राप्ताः ।
कंचन द्रुमोपपेते, सर्वर्तुक पुष्पफलभरिते ।)

जिनेन्द्रों को लिये हुए वे देव-देवेन्द्र सब ऋतुओं के पुष्प-फलों से भरे स्वर्णवृक्षों से सुशोभित पांचों ही सुमेरु पर्वतों के शिखरों पर क्षण भर में ही पहुंच गये ।२१०।

पंचण्हं वि मेरूणं एक्केक्कं होइ पंडुगवणं तु ।
तइलोक्कस्स वि, लच्छी संपिंडिया तेसु ।२११।
(पंचानामपि मेरूणां, एकैकं भवति पाण्डुकवनं तु ।
त्रैलोक्यस्यापि, लक्ष्मीः संपिंडिता तेषु ।)

पांचों ही सुमेरु पर्वतों में से प्रत्येक पर एक-एक पाण्डुकवन है, जिनकी शोभा ऐसी है मानो तीनों लोक की समस्त पिण्डीभूत लक्ष्मी ही एकत्रित हो गयी है ।२११।

तत्थ कुसुमसमा सेसे सुरा जिणमज्जणोचिया रम्मा ।
फलिह सिलपट्टगा, पंडुग जोयणु च्छिदा ।२१२।

(तेषां बहुमध्यदेशे, चूलाः जिनभवनशोभिताः रम्याः ।
वैडूर्य विमलरूपाः, पंचाष्टक योजनोद्विद्धाः)

उन पाण्डुकवनों के बिल्कुल मध्य भाग में जिन-भवनों (जिन मन्दिरों) से सुशोभित, वैडूर्य मणि की स्वच्छ श्वेत अति रमणीय पांच योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी, चूलाएं हैं ।२१२।

पंचण्हव मेरूणं, चूला एक्केक्किया मुणेयव्वा ।
सासय जिणभवणाओ, हवंति पंचेव चूलाओ ।२१३।
(पंचानामपि मेरूणां, चूला एकैकाः मुनेतव्या ।
शाश्वतजिनभवनात्, भवन्ति पंचैव चूलाः ।)

पांचों ही मेरु पर्वतों की एक एक चूला जाननी चाहिये । वे पांचों चूलाएं शाश्वत जिन-भवन स्वरूपा होती हैं ।२१३।

बारस जोयण पिहुलाओ, ताओ ठवणं तु जोयणे चउरो ।
तासिं चउद्दिसिं पि य, सिलाउ चत्तारि रंमाउ ।२१४।
द्वादशयोजनपृथुलाः, ताः स्थापनं तु योजनानि चत्वारि ।
तासां चतुर्दिग्स्वपि च, शिला, चतस्रः रम्याः ।)

प्रत्येक चूला १२ योजन पृथुल अर्थात् मोटी तथा चार योजन स्थापना (आधार शिला) वाली होती हैं । उन पांचों चूलाओं के चारों ओर चारों दिशाओं में बड़ी ही सुन्दर चार शिलाएं होती हैं ।२१४।

पंचसयायामाओ, मज्झे दीघतणद्धरुंदाओ ।
चंदद्धसंठियाओ, कुमुयवरहार गोराओ ।२१५।
(पंचशतायामाः, मध्ये दीर्घतायार्द्ध रुंदाः ।
चन्द्रार्द्धसंस्थिताः, कुमुदवरहारगौराः)

उनमें से प्रत्येक शिला ५०० योजन विस्तार वाली, मध्यभाग में स्थूल तथा उत्तरोत्तर मुटाई में घटते घटते अन्त में तृण के अर्धभाग तुल्य मोटी, चन्द्राकार तथा श्रेष्ठ कुमुद पुष्प के हार सदृश गौरवर्ण की होती है ।२१५।

तथा भरत एवं ऐरवत क्षेत्रों में, बाल्यकाल में पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले तीर्थङ्करों का जन्म होने पर देवताओं द्वारा उत्तर की ओर स्थित शिलाओं पर जन्माभिषेक किया जाता है ।२१६।

अह सो सोहम्मवती, सहिओ बत्तीस सुरवरिंदेहिं ।
दक्खिण-सिलाउ पंचवि, सहस्स पत्ताणणा पत्तो ।२२०।
(अथ सः सौधर्मपतिः, सहितः द्वात्रिंशैः सुरवरेन्द्रैः ।
दक्षिण शिलापु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

तत्पश्चात् ३२ इन्द्रों सहित सहस्राक्ष सौधर्मेन्द्र पांचों दक्षिण दिशिस्थ शिलाओं पर पहुँचा ।२२०।

अह सो ईसाणवती, सहिओ बत्तीस सुरवरेन्द्रैः ।
उत्तरसिलाउ पंच वि, सहस्स पत्ताणणो पत्तो ।२२१।
(अथ स ईशानपतिः, सहितो द्वात्रिंश-सुरवरेन्द्रैः ।
उत्तरशिलापु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

इसके पश्चात् ईशान देवलोक का अधिपति ईशानेन्द्र भी बत्तीस इन्द्रों सहित उत्तर दिशा में स्थित पांच शिलाओं पर पहुँचा ।२२१।

तो तत्थ पवर कंचण,-मयंमि सिंहासणे निवेसित्ता ।
इंदो जिणिंदचंदे, उच्छंगेहि वहेसी य ।२२२।
(ततः तत्र प्रवर कंचनमये सिंहासने निवेशयित्वा ।
इन्द्रो जिनेन्द्र चन्द्रान्, उत्संगैः वहन्ति च ।)

तदनन्तर वहां उत्कृष्ट कोटि के स्वर्ण से निर्मित सिंहासनों पर निवेशित (स्थापित) कर इन्द्र ने उन जिनेन्द्रचन्द्रों को अपनी गोद में धारण किया ।२२२।

छज्जंति सुरवरिंदो, उच्छंगगए जिणे धरेमाणो ।
अभिनव जाए कंचण, दुमेव्व हिमपवर-धरिमाणो ।२२३।
(छाजन्ति सुरवरेन्द्राः, उत्संगगतान् जिनान् धार्यमाणः ।
अभिनवजातान् कंचन द्रुमानिव हिमप्रवरः धार्यमाणः ।)

गोद में विराजमान जिनेन्द्रों को धारण किये हुए इन्द्र मनो-रम्य कानन वृक्षों को धारण किये गिरिराज हिमाद्रि के समान सुशोभित हो रहे थे ॥२२३॥

अह अच्चुयकप्पवई, धुयकलि कलुसाणं जिणवरिंदाणं ।
अभिसेयं काउमणो, अभिओगे सुरवरे भणइ ॥२२४॥
(अथ अच्युतकल्पपतिः, धुतकलिकलुषाणां जिनवरेन्द्राणाम् ।
अभिषेकं कर्तुमना, आभियोगिकान् सुरवरान् भणति)

तदनन्तर दुष्कर्मों की कालिमा को धो डालने वाले जिनवरों का जन्माभिषेक करने की अभिलाषा से अच्युत कल्प नामक स्वर्ग के इन्द्र ने अपने सेवक सुरश्रेष्ठों को आदेश दिया ॥२२४॥

तित्थसरियामहादह, चउ उदहिजलं च दिव्व कुसुमं च ।
आणेह इहं सिग्घं, जं पि य इट्ठमभिसेए ॥२२५॥
(तीर्थसरिन्महाह्रद-चतुरुदधिजलं च दिव्य-कुसुमं च ।
आनयत इह शीघ्रं, यदपि चेष्टमभिषेके ।)

तीर्थ-नदियों, महाह्रदों तथा चारों समुद्रों का जल, दिव्य पुष्प एवं जन्माभिषेक के लिये अभीष्ट सभी प्रकार की सामग्री शीघ्रातिशीघ्र यहां लाओ ॥२२५॥

गंधं पडिच्छिऊणं, सुरवरवसभाणं तो तुरिय चवलं ।
आणेंति विमल सलिलं, गन्धेसु अट्ठसु ठाणेसु ॥२२६॥
(सन्देशं प्रतीच्छ्य, सुरवरवृषभाणां त्वरितं चपलम् ।
आनयन्ति विमल सलिलं, गन्धेभ्यः अष्टभ्यः स्थानेभ्यः ।)

सुरेन्द्रों के आदेश को शिरोधार्य कर सुरश्रेष्ठ ... आठों स्थानों से पवित्र जल ले आते हैं ॥२२६॥

गन्धोदहिसलिलाणं, सत्तेसु ... कुसुमं च पुप्फं,
आणेंति ते पवित्तं, ... महिंद पुप्फं ।

(सर्वौषधिसिद्धार्थं, गहनमलीकं कुसुमकं च चूर्णान् च ।
आनयन्ति ते पवित्रं, द्रहनदीतटतः महेन्द्र-सुराः ।)

महेन्द्र स्वर्ग के वे सुरगण द्रहों और महानदियों के तटों से सर्वौषधि सिद्ध पवित्र एवं शुद्ध पुष्प और चूर्ण लाते हैं ।२२७।

ता अच्चुय कप्पवई, सुवन्नमणिरयणभोम कलसेहिं ।
पउमुप्पलपिहाणेहि, कुसुम गंधुदग भरिएहि ।२२८।
(ततः अच्युतकल्पपतिः, स्वर्णमणिरत्नभौमकलशैः ।
पद्मोत्पलपिधानै, कुसुमगंधोदकभरितैः ।)

अभिषेक हेतु आवश्यक सभी सामग्री को जुटाने के पश्चात् अच्युतेन्द्र पुष्पों की सम्मोहक सुगन्धियों से सुवासित जल से पूर्ण एवं पद्मपत्रों से ढके स्वर्ण, मणि, रत्न और (अलभ्य) मिट्टी के कलशों द्वारा—।२२८।

अभिसिंचइ दसवि जिणे, सपरिवारो पहट्ठ मुहकमलो ।
पहय पडुपडह, दुंदुहि जयसद्दुघोसणरवेणं ।२२९।
(अभिसिंचति दशानपि जिनान्, सपरिवारः प्रहृष्टमुखकमलः ।
प्रहत पटु पटह, दुंदुभिजयशब्दोद्घोषणरवेण ।)

परिवार सहित हर्षोत्फुल्लवदन मुद्रा में प्रताडित दिव्य पटहों, दुंदुभियों आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और "जय-जय" के गगनभेदी घोषों के बीच दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं ।२२९।

गोसीसचंदणरसं, सुमणं सोहावियं य दिव्वं च ।
सलिलं च तेयजणणं, जिणाणं उवरिं वुहंति सुरा ।२३०।
(गोशीर्षचन्दनरसं, सुमनज्ञं शोभावितं च दिव्यं च ।
सलिलं च तेजजननं, जिनानामुपरि वाहयन्ति सुराः ।)

सुरवृन्द उन जिनेश्वरों पर आह्लाद शोभा और तेजवर्द्धक दिव्य गोशीर्ष चन्दन का रस तथा जल वर्षाते हैं ।२३०।

सुरगहियकलसमुह,-निग्गएण गंधोदएण विमलेण ।
पउमनहद्दहनिग्गय, गंगासलिलोह सरिसेणं ।२३१।
(सुरगृहीतकलशमुखनिर्गतेन गंधोदकेन विमलेन ।
पद्ममहाद्रहनिर्गतगंगासलिलौघसदृशेन ।)

पद्म महाद्रह से उद्गत गंगा महान् जलप्रवाह के समान देवताओं के हाथों में ग्रहण किये गये प्रतिबिंबित कलशों के मुंह से निकले पवित्र सुगन्धित जल की धाराओं से— ।२३१।

उवरिं निवडंतेणं, बालजिणे तेयरासिं संपण्णे ।
अहियं दिप्पंति तहिं, पयपरिसित्ते हुयवहेव्व ।२३२।
(उपरि निपतता तेन, बालजिनाः तेजराशिसंपन्नाः ।
अधिकं दिप्यन्ति तत्र, पय:परिषिक्तः हुतवह इव ।)

उसके और सभी अंगों पर गिरने के फलस्वरूप वे सभी नवजात तीर्थंकर तेजपुंज से सम्पन्न हो घृतसिंचित अग्नि की ज्वाला के समान वहां अधिकाधिक देदीप्यमान होने लगे ।२३२।

तो जिणवराभिसेए, नच्चंति विविह रूववेसधरा ।
सुरासुर गंधव्वा, ससिद्धविज्जाहरा मुइया ।२३३।
(ततः जिनवराभिषेके नृत्यन्ति विविधरूपवेशधराः ।
सुरासुरगन्धर्वाः, ससिद्धविद्याधराः मुदिताः।)

तदनन्तर जिनवरों के जन्माभिषेक में सुर, असुर, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर प्रमुदित हो अनेक प्रकार के रूप एवं वेश धारण कर नृत्य करते हैं ।२३३।

नवविविहं पयपूरिं, वज्जेंताईंति केइ सुरवसहा ।
गायंति सविसाई, गयवल्लीयाई केई ।२३४।
(तत्र विततं घनशोषिरं वाद्यं वादयन्ति केचित् सुरवृषभाः ।
गायन्ति सद्‌गानं, गन्धर्वगीयानि केचन ।)

१ मूल पद में यहां कुछ पाठ छूटा हुआ लगता है ।

अनेक सुरश्रेष्ठ गगन को गुंजरित कर देने वाली ताल के साथ, सघन वारिद घटा के गर्जन तुल्य गम्भीर घोष करने वाले वाद्य यन्त्र बजाते हैं तथा कतिपय देव शृंगार रस से ओत-प्रोत सातों स्वरों में अति मधुर सम्मोहक गीत गाते हैं ।२३४।

चउ अभिणय संजुत्तं, उणयालीसं-गहार पडिपुण्णं ।
सुललिय पय विच्छेदं, नट्टं दाइंति तत्थ सुरा ।२३५।
(चतुरभिनयसंयुक्तं, एकोनचत्वारिंशदंगहार प्रतिपूर्णम् ।
सुललितपदविच्छेदं, नाट्यं दापयन्ति तत्र सुराः ।)

जिनजन्म महोत्सव के उस पवित्र एवं सुखद स्वर्णिम सुअवसर पर कतिपय देवगण चारों प्रकार के अभिनय से संयुक्त, उनचालीस प्रकार की भावपूर्ण अंगभंगिमाओं से परिपूर्ण और परम लालित्य से ओतप्रोत अति सुन्दर नाट्य प्रस्तुत करते हैं ।२३५।

वग्गंति फोडयंति य, तिवइं छिंदंति विविहवेसधरा ।
वासंति जलधराइं य सविज्जुयं सथणियं तहिं अण्णे ।२३६।
(वल्गन्ति स्फोटयन्ति च त्रिपदीं छिन्दन्ति विविधवेषधराः ।
वर्षन्ति जलधराः च, सविद्युतं सस्तनितं तत्र अन्ये ।)

अनेक प्रकार के वेष धारण किये कतिपय देव मदोन्मत्त हाथियों की तरह चिंघाड़ते, कई देव वायु को प्रकम्पित कर देने वाली ध्वनि के साथ खम्भ ठोकते, कतिपय देव त्रिपदी का विच्छेद करते एवं कतिपय देवगण बादलों की गड़गड़ाहट एवं बिजली की चकाचौंध के साथ जलधाराओं की वर्षा करते हैं ।२३६।

हयहिंसिय गयगज्जिय, रह घणघण सीहनाय जय सद्दे ।
कुणमाणेहिं सुरेहिं, रसईव य गगणं दलइ भूमी[1] ।२३७।
(हयहिंसित, गजगर्जित (वल्गित) रथ-घणघण सिंहनाद जयशब्दानि
क्रियमाणैः सुरैः हसस्सतीव च गगनं दलति भूमिः ।)

---

१ "रसइ गगणंगणं दलइ भूमी" इति पाठे सति चमत्कृति सविशेषा शोभते । (रसति गगनांगनं दोलयति भूमिः)

घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, रथों की घर-घराहट और देव समाज द्वारा किये गये सिंहनादों तथा जयघोषों से धरती डगमग-डगमग डोलने लगी और आकाश फटने सा लगा।२३७।

नच्चंति अच्छराओ, अभिणय अंगोवहार पडिपुण्णं ।
चउरंगहार मणहर, सहावभावं ससिंगारं ।२३८।
नृत्यन्ति अप्सरसः, अभिनय अंगोपहार प्रतिपूर्णम् ।
चतुरंगहार मनहर-सहावभावं सशृंगारम् ।

अप्सराएं हावभावों से भरपूर, शृंगाररस से ओतप्रोत, अभिनय और भावपूर्ण अंगभंगिमाओं से परिपूर्ण चार प्रकार का मनोहर नृत्य करती हैं।२३८।

तो पहय भेरि झल्लरि, दुंदुहि गंभीर महुर निग्घोसो ।
अंबरतले विजंभइ, हरिसकरिसं जणेमाणो ।२३९।
(ततः प्रहत-भेरि-झल्लरी, दुंदुभिगंभीरमधुरनिर्घोषः ।
अम्बरतले विजृम्भति, हर्षोत्कर्षं जनयन् ।)

प्रताड़ित भेरियों, झल्लरियों एवं दुंदुभियों का घनगर्जन तुल्य गम्भीर और मधुर घोष प्रत्येक के मानस में उत्कृष्ट हर्ष उत्पन्न करता हुआ गगनमण्डल में प्रतिध्वनित सदा व्याप्त हो जाता है।२३८।

महुरमुरनिग्घोसो, फडफडफुडियगगणाहो ।
सुव्वइ दससु दिसासु, पवणुब्भिय महोदहिव्व सद्दो ।२४०।
(स मधुरमुरनिर्घोषः, फडफडस्फोटितगगनाभ्रः ।
श्रूयते दशसु दिशासु, प्रवृद्धमिव महोदधि-शब्दः ।)

तो उग्गासिद्धथग,-सव्वोसहि कुसुम न्हाणवासेहिं ।
अच्चुय इंदो दससुवि. जिणाभिसेयं करेसिण्हं ।२४१।
ततः उदक-सिद्धार्थक-सर्वोपधि-कुसुम-स्नान-वस्त्रेभ्यः ।
अच्युतेन्द्रः दशष्वपि[1] जिनाभिषेकं करोति स्म ।)

तत्पश्चात् दसों ही स्थानों पर अच्युतेन्द्र सिद्धार्थक, सभी प्रकार की औषधियों, कुसुमों, स्नान एवं वस्त्रादि से दसों ही तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक करते है ।२४१।

अवसेसावि सुरवति, तेणेव कमेण पाणयाईया ।
सव्विड्ढीए सपरिसा, जिणभिसेयं करेसिण्हं ।२४२।
अवशेषा अपि सुरपतयः, तेनैवमया[2] प्राणतादिकाः ।)
सर्वर्द्ध्या सपरिषद्या, जिनाभिषेकं कुर्वन्ति स्म ।)

अच्युतेन्द्र द्वारा किये जिनजन्माभिषेक के अनुसार उसी विधि से शेष इन्द्र भी अपने अपने सुरसमाज और उत्कृष्ट ऋद्धियों के साथ उन दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं ।२४२।

जाहे कया सव्वेहिं, अभिसेया देव दाणवेहिं वा ।
सक्कीसाणा दोन्नि वि, धवलवसहसिंगधारा हिं ।२४३।
(यदा कृता सर्वैः अभिषेकाः देव-दानवैर्वा
शक्रेशानौ द्वावपि, धवल वृषभशृंगधारिभः[3] ।)

सभी देव-दानवेन्द्रों द्वारा उक्तविधि से जन्माभिषेक सम्पन्न हो जाने के अनन्तर शक्र तथा ईशानेन्द्र ने श्वेत वृषभों के के शृंगों से निकली जलधाराओं से जिनेश्वरों का अभिषेक किया ।२४३।

चउ उदहि सलिल सरिया, जलं च वसभेसु पक्खिवंति सुराः ।
असुरसुरच्छरसहिया, जिणाभिसेयं करेऊणं ।२४४।

---

१ अध्याहारेण 'स्थानेषु'—इति वाच्यम् ।
२ अध्याहारेण 'विधिना'—इति वाच्यम् ।
३ "जिनाभिषेकं कुरुतः ।' इत्यध्याहारेणात्र ग्राह्यम् ।

(चतुरुदधिसलिलसरिता-जलं च वृषभेषु प्रक्षिपन्ति सुराः ।
असुर-सुर-अप्सरा सहिताः, जिनाभिषेकं कृत्वा ।)

देवगण चारों महासागरों और महानदियों का जल वृषभों पर डालते हैं। असुरों, सुरों और अप्सराओं सहित जिनाभिषेक सम्पन्न करने के पश्चात् ।२४४।

परिमल सुयंध सुमन य, वत्थेण जिणाण अंगुवंग गयं ।
अवणेऊण जलरयं, सहस्सनयणा पयत्तेणं ।२४५।
(परिमल-सुगंध-सुमनस्, वस्त्रेण जिनानामंगोपांगगतम् ।
अपनीत्वा जलरजं, सहस्रनयनाः प्रयत्नेन ।)

पद्मपराग, सुगन्धित पुष्पों से निर्मित अंगराग एवं वस्त्रादि से इन्द्रों ने प्रसन्नतापूर्वक जिनेश्वरों के अंगोपांगों पर लगे जल और विविध औषधियों के रजकणों को परिमार्जित कर—।२४५।

हरिचंदणाणुलित्ते, दिव्वाभरणहु भूसणे काउं ।
सक्का कुणंति तेसिं, सीतपज्जावहारा दी ।२४६।
(हरित् चन्दनानुलिप्तानि, दिव्याभरणानि हि भूषणानि कृत्वा ।
शक्राः कुर्वन्ति तेषां, शीर्षस्थविहारादीनि ।)

दिव्य वस्त्राभूषणों को तत्काल तिलक से किया और उनसे जिनेश्वरों का नख-शिख शृंगार किया। २४६।

कोउगमणाइं विहिणा, काऊणं जिणवराण मुहकमलं ।
न वि तिप्पंतीकरांता, अच्छि सहस्सेहिं देविंदा ।२४७।
(कौतुक मनानि विधिना, कृत्वा जिनवराणां मुखकमलम् ।
नापि तृप्यन्तीक्षन्ताः, अक्षि सहस्रैः देवेन्द्राः ।)

तो देव दाणविंदा, स अच्छरा सपरिसा पहट्ठमणा ।
अभिसंथुणंति पयया, थुइ सय परिसंथुए वीरे ।२४८।
(ततः देवदानवेन्द्राः सारसयः सपरिषदाः प्रहृष्टमनाः ।
अभिसंस्तुवन्ति प्रयताः, स्तुतिशत परिसंस्तुतान् वीरान् ।)

तत्पश्चात् अप्सराओं एव अपनी परिषद् सहित देवेन्द्र और दानवेन्द्र हर्ष विभोर हो सैकड़ों स्तुतियों से अभिसंस्तुत उन वीर शिरोमणि दशों तीर्थंकरों की यत्नपूर्वक स्तुति करते हैं ।२४८।

तुम्ह नमो पायाणं, चक्कंकुसलक्खणंकियतलाणं ।
जम्मखएइट्ठियाण, अणेय तणु तप्पणक्खाणं ।२४९।
(युष्मभ्यं नमो पद्भ्यः, चक्रांकुशलक्षणांकिततलेभ्यः ।
जन्मक्षये स्थितेभ्यः, अनेकतनुतर्पणाक्षेभ्यः ।)

चक्र एवं अंकुश के लांछनों से सुशोभित तलवों वाले, जन्म-मृत्यु के समूलनाश हेतु आगे बढ़े हुए तथा अनेक प्राणियों के शरीर और नेत्रों को तृप्त करने वाले आपके चरण कमलों को बारम्बार नमस्कार है ।२४९।

कम्मरयं अट्ठविहं नसिंति फुडं भव्वाण जीवाणं ।
तेण सरणं पवन्ना, जिणाण पाए सिवुप्पाए ।२५०।
(कर्मरजं अष्टविधं, नाशयन्ति स्फुटं भव्यजीवानाम् ।
तेन शरणं प्रपन्नाः, जिनानां पादान् शिवोत्पादकान् ।)

भव्य जीवों की आठ प्रकार की कर्मरज को आपके पद पंकज विनष्ट करते हैं । इसीलिये हम शिवसुखप्रदायक जिनेश्वरों के चरण-कमलों की शरण में आये हैं ।२५०।

धण्णा जिण जणणीओ, सिद्धगइ पहदेसगा जिणा जाहिं ।
उदरेणं जिणवसभा, धम्मधुराधारगा ढविया ।२५१।
(धन्याः जिनजनन्यः, सिद्धगतिपथदर्शकाः जिना याभिः ।
उदरेण जिनवृषभाः, धर्मधुराधारकाः स्थापिताः ।)

धन्य हैं जिनेश्वरों की माताएं, जिन्होंने सिद्ध गति के पथ को दिखाने वाले तथा धर्म की धुरी को धारण करने वाले महान् तीर्थंकरों को अपनी कुक्षियों में वहन किया ।२५१।

एवं सरूवएहिं, गुणेहिं अभिवंदिऊण जिणवरिंदे ।
जयइ जिनसासणंचि, तियपहवसियमाणाहि घुट्ठं ।२५२।
(एवंस्वरूपं गुणैः, अभिवन्दित्वा जिनवरेन्द्रान् ।
जयति जिनं शासनमिति, त्रिपथि समानैर्घुष्टम् ।)

इस प्रकार की स्तुतियों से गुणगानपूर्वक जिनेश्वरों को वन्दन करने के पश्चात् सुरलोक और भवनों में निवास करने वाले सुरासुर प्रभुओं ने "जिनशासन की जय हो"—इस प्रकार का दिव्य तुमुल घोष किया ।२५२।

मोत्तूण य ते पवरे, कंचण सीहासणे सुरवरिंदा ।
घेत्तूण जिणे सहिया, सुरेहिं संपत्थिया तुरियं ।२५३।
(मुक्त्वा च ते प्रवरान्, कंचन सिंहासनान् सुरवरेन्द्राः ।
गृहित्वा जिनान् सहिताः सुरैः संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

तदनन्तर उन अतिसुन्दर स्वर्ण के सिंहासनों से उठ कर सुरेश्वरों ने तीर्थंकरों को अपने हाथों में अच्छी तरह धारण किया और वे सुरसमूह के साथ सुमेरु पर्वत से शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए ।२५३।

संपत्ता य खणेण, जिण जम्मवणे पुरंदरा सुइया ।
नमिऊण जिणे, अप्पंति, विम्हिया नेगमेसीणं ।२५४।
(संप्राप्ताश्च क्षणेन, जिनजन्मवने पुरन्दराः शुचिकाः ।
नत्वा जिनान् अर्पयन्ति, विस्मिता नैगमेषीभ्यः ।)

जिन-जन्ममहोत्सव को सम्पन्न कर पवित्र बने हुए वे सुरेन्द्र क्षण भर में ही सुमेरु पर्वत से जिनेन्द्रों के जन्मवन में आये। उन्होंने जिनेन्द्रों को नमस्कार कर उन्हें हरिणैगमेषी देवों को समर्पित किया ।२५४।

अहवा सग्गाओ च्चिय, पडणं निस्संसयं वियाणिज्जा ।
इंदस्स विय न केवलमेयं तु सुरस्स इयरस्स ।२६३।
(अथवा स्वर्गतः किल, पतनं निःशंसयं विजानीथः ।
इन्द्रस्यापि च न केवलं, एतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

अथवा इस प्रकार का पाप पूर्ण विचार करने वाले का निश्चित रूपेण स्वर्ग से पतन हो जायगा। चाहे वह सामान्य सुर-असुर हो चाहे देवेन्द्र ही क्यों न हो। इस बात को आप सब भली भांति समझ लीजिये।२६३।

एवं ईसाणेणवि उत्तरलोगाधिवेण भणिए ।
इंदस्स वि य न केवलमेत्तं त्तु सुरस्स इयरस्स ।२६४।
(एवं ईशानेनापि, उत्तरलोकाधिपेन भणिते ।
इन्द्रस्यापि च न केवलमेतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

इसी प्रकार उत्तर लोकाधिपति ईशानेन्द्र ने भी कहा कि इस प्रकार का अपराध करने पर न केवल किसी सुर अथवा असुर का ही अपितु इन्द्र का भी स्वर्ग से पतन अवश्यंभावी है।२६४।

'एवं' त्ति परिगहिए, तंमिहिए भासिए सुरिंदेहि ।
मुक्क रयणुम्मीसं, दसद्धवण्णं कुसुमवासं ।२६५।
('एवं' इति परिगृहीते, तस्मिन् हिते भाषिते सुरेन्द्रैः ।
मुक्ता रत्नोन्मिश्रं, दशार्द्ध वर्णा कुसुम वर्षाः ।)

सुरेन्द्रों के इस हितकर वचन को सभी सुरासुरों द्वारा "एवमस्तु" कहकर शिरोधार्य किये जाने पर रत्नवर्षा से मिश्रित पांच रंग के पुष्पों की वृष्टि की गई।२६५।

चुण्णं नानाविहवण्णं, वत्थाणि च बहुविहप्पगाराइं ।
मुक्काइं सहरिसेहिं, रयणाणि य पहूयाणि ।२६६।
(चूर्णं नानविधवर्णं, वस्त्राणि च बहुविधप्रकाराणि ।
मुक्तानि सहर्षैः, रत्नानि च प्रभूतानि ।)

हर्ष विभोर हो देवों ने विचित्र वर्णों वाले अनेक प्रकार के
गों, वस्त्रों और प्रचुर मात्रा में रत्नों की वर्षा की ।२६६।

अह देइ वज्जपाणि, पराए भत्तीए जिणवरिंदाण ।
खोमे कुंडल जुयले, सिरिदामे चेव य सुरूवे ।२६७।
(अथ ददाति वज्रपाणिः, परया भक्त्या जिनवरेन्द्रेभ्यः ।
क्षौमानि कुण्डल युगलानि, श्रीदामानि चैव च सुरूपाणि ।)

तदनन्तर वज्रपाणि शक्र ने परा (उत्कृष्ट) भक्ति के साथ
दों ही जिनेश्वरों (प्रत्येक) को एक एक दिव्य कुण्डलों की जोड़ी
र एक एक कभी न कुम्हलाने वाली अति सुन्दर श्रीदाम भेंट
।२६७।

ालंकार विहिं, सव्वं जणणीण जिणवरिंदाणं ।
स्स देवरण्णो, अह देंति वरग्गमहिसीओ ।२६८।
वस्त्रालंकारविधिं सर्वाः जननीभ्यः जिनवरेन्द्राणाम् ।
स्य देवराज्ञः, अथ ददाति वराग्रमहिष्यः ।)

देवराज शक्र की पटरानी देवियों ने सभी जिनेन्द्रों की माताओं
नुक्रमतः (शिर से चोटी तक धारण करने योग्य) सभी प्रकार
के वस्त्र तथा अलंकार भेंट किये ।२६८।

सु पहुविहेसु य, जिणाण कण्णेसु बहुएसु ।
गंदिऊण सुरिंदा, दिव्वाहमाणि सव्वेसिं ।२६९।
(कर्णेषु बहुविधेषु च, जिनानां कर्णेषु बहुकेषु ।
ंधयित्वा सुरेन्द्राः, दिव्यानि सर्वेषाम् ।)

जिनेन्द्रों के लिये सुरेन्द्रों ने इन्हें सोन अनेक प्रकार के कानों
के मध्य में सभी दिव्य मालियों को लिटा देकर सुरेन्द्र...।२६९।

गंतूण जिणवरिंदे, मणिरयणमया सुरविहिं गहिया ।
गंगंतरमाहिंनी, काउं देवा गया सव्वे ।२७०।

(नमित्वा जिनवरेन्द्रान्, अक्षिप्रमाणात् सुरवृन्दैः सहिताः ।
नन्दीश्वरवरमहिमां, कृत्वा इन्द्राः गताः स्वर्गम् ।)

जिनेन्द्रों को नमस्कार कर सुरवृन्दों सहित नन्दीश्वर द्वीप में जिनवरों की महिमा कर क्षण भर में ही इन्द्र अपने २ स्वर्गलोक को चले गये ।२७०।

इह पंडुरे पभायंमि, दसवि ते कुलगरा निए पुत्ते ।
पिच्छंति सहपियाहिं, हरिसवल्लसिय मुहकमला ।२७१।
(इह पाण्डुरे प्रभाते, दशापि ते कुलकरा निजान् पुत्रान् ।
प्रेक्षन्ति सहप्रियाभिः, हर्षवशोल्लसित मुखकमलाः ।)

इधर उषाकाल में हर्षातिरेक से प्रफुल्लित वदन दशों कुलकर अपने पुत्रों सहित अपनी प्रियाओं को देखते हैं ।२७१।

अह वट्टंति जिणिंदा, दियलोगवुया अणोवमसरिया ।
देवी देव परिवुडा, दो दो नारीहिं ते सहिया ।२७२।
अथ वर्तन्ते जिनेन्द्राः, दिव्यलोकवृता अनुपमश्रीकाः ।
देवी-देव परिवृताः, द्वि द्वि नारीभ्यां ते सहिताः ।)

तदनन्तर वे अनुपम शोभाशाली जिनेन्द्र दो दो परिरक्षिका महिलाओं के साथ दिव्य लोकों, देवियों एवं देवों से घिरे रहते हैं ।२७२।

असियसिरया सुनयणा, विबोद्धा धवलदंत पंत्तिया ।
वरपउमगब्भगोरा, फुल्लुप्पलगंधनीसासा ।२७३।
(असित शिरजाः सुनयनाः, विबुधाः धवलदन्तपंक्तिकाः ।
वरपद्मगर्भगोराः, फुल्लोत्पलगंधनिःश्वासाः ।)

काले भंवर वालों, सुन्दर नेत्रों, विशिष्ट बुद्धि और श्वेत दंत पंक्ति वाले वे सभी जिनेन्द्र श्रेष्ठ पद्म पुष्प के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित उत्पल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वासोच्छ्वास वाले हैं ।२७३।

जाईसरा जिणिंदा, अपरिवडिएहिं तिहिं नाणेहिं ।
कित्तीयय बुद्धीयय, अब्भहिया तेहिं मणुएहिं ।२७४।
(जातिस्मराः जिनेन्द्राः, अप्रतिपतितैस्त्रिभिस्तु ज्ञानैः ।
कीर्त्या च बुद्ध्या च, अभ्यधिकास्तैः मनुष्यैः ।।)

ये सभी तीर्थंकर जातिस्मर ज्ञान तथा पुनः कभी विच्छिन्न नाश को प्राप्त न होने वाले—मति, श्रुति और अवधि—इन तीन ज्ञान से युक्त तथा कीर्ति एवं बुद्धि की अपेक्षा अपने समय के सभी मनुष्यों से बहुत ही बढ़े-चढ़े (विशिष्ट) हैं ।२७४।

देसूणगं च वरिसं, इंदागमणं च वंसठवणाए ।
आहारमंगुलीए, विहिंति देवा मणुण्णं ति ।२७५।
(देशोनके च वर्षे, इन्द्रागमनं च (हि) वंशस्थापनाय ।
आहारमंगुल्यां, विदधति देवाः मनोज्ञमिति ।।)

अब ये दसों जिनेन्द्र एक वर्ष से कुछ न्यून अवस्था के हुए तब पुनः इन्द्र का आगमन हुआ। उसने दसों जिनेन्द्रों के वंश की स्थापना की। देवता इन सभी प्रथम तीर्थंकरों की अंगुली में मनोभिलषित आहार रख देते हैं ।२७५।

सक्को वंसठवणे, इक्खागू तेण होंति इक्खागा ।
गोत्तकलाइयभगिणी, होहि पत्तीति महयणा ।२७६।
(शक्रः वंशस्थापने, इक्ष्वाकुः तेन भवन्ति इक्ष्वाकाः ।
गोत्रकलाद्यग्रज भगिनी, भिवन्ति पत्नीति ...

पढमो अकालमच्चू, तहिं तालफलेणं दारगा पहाओ ।
कण्णाउ कुलगरेहिं, सिट्ठे गहिया पीणिव्वाउ ।२७७।
(प्रथमो अकालमृत्युः, तत्र तालफलैः दारकाः प्रहताः ।
कन्यास्तु कुलकरैः श्रेष्ठाः गृहीताः परिणायतुम् ।)

वहां (दशों क्षेत्रों में) सद्यःजात यौगलिक शिशुओं में से नर शिशु की तालफल के गिरने से प्रथम अकाल मृत्यु हुई। कुलकरों ने यह कह कर कि यह श्रेष्ठ कन्या है, अपने पुत्रों के साथ उनका विवाह करने की इच्छा से उन कन्याओं को अपने यहां रख लिया ।२७७।

भोगसमत्थे नाउं, वरकम्मे कासि तेसि देविंदा ।
दोण्हं वरमहिलाणं, वहुकम्मं कासि देवीउ ।२७८।
(भोगसमर्थान् ज्ञात्वा, वरकर्माणि अकार्षन् तेषां देवेन्द्राः ।
द्वयोरपि वरमहिलयोः वधुकर्माणि अकार्षन् देव्यः ।)

(समय पर) उन जिनेश्वरों को भोगसमर्थ जान कर वर पक्ष की ओर से किये जाने वाले सब कार्य देवेन्द्रों ने तथा उन दो दो कन्याओं के कन्यापक्ष की ओर से किये जाने वाले सभी वधु-कर्म (देवेन्द्रों की) देवियों ने किये ।२७८।

एवं दसवारेज्जा, दससु वि वासेसु होंति नायव्वा ।
दस वि जिणाणं एते, देवासुर परिवुडा वुत्तं ।२७९।
(एवं दश वरेच्छा, दशस्वपि वर्षेषु भवन्ति ज्ञातव्याः ।
दशानामपि जिनानामेते, देवासुर परिवृता उक्ताः ।)

इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दश वरिच्छाएं होती हैं। दशों ही जिनों के देवासुरों से परिवेष्टित वृत्तान्त कहे गये हैं ।२७९।

छ पुव्वसय सहस्सा, पुव्विं जायस्स जिणवरिंदस्स ।
तो भरह बंभि सुंदरि, बाहुबलि चेव जायाइं ।२८०।

(षट् पूर्वगत सहस्राणि, पूर्वं जातस्य जिनवरेन्द्रस्य ।
ततो भरत ब्राह्मी सुन्दरी, बाहुबली चैव जाताः ।)

जब जिनवरेन्द्र ऋषभदेव को जन्म ग्रहण किये ६ लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब भरत, ब्राह्मी, सुन्दरी और बाहुबली का जन्म हुआ ।२८०।

देवी सुमंगलाए, भरहो बंभी य मिहुणगं जायं ।
देवीए सुनन्दाए, बाहुबली सुन्दरी चेव ।२८१।
(देव्याः सुमंगलायाः, भरतः ब्राह्मी च मिथुनकं जातम् ।
देव्याः सुनन्दायाः बाहुबली सुन्दरी चैव ।)

देवी सुमंगला की कुक्षि से भरत और ब्राह्मी का मिथुन तथा देवी सुनन्दा की कुक्षि से बाहुबली और सुन्दरी का युगल उत्पन्न हुआ ।२८१।

अउणापन्नं जुयले, पुत्ताण सुमंगला पुणो पसवे ।
नीईण अइक्कमणे, निवेयणं उसभ सामिस्स ।२८२।
(एकोनपंचाशत् युगलान् पुत्राणां सुमंगला पुनः प्रसुतवती ।
नीतीनामतिक्रमणे, निवेदनं ऋषभ स्वामिने ।)

(अट्ठानवे) पुत्रों के उनपचास युगलों को देवी सुमंगला ने पुनः जन्म दिया, जब अनेक यौगलिक लोग नीति का उल्लंघन करने लगे तो प्रमुख लोगों ने ऋषभदेव के समक्ष निवेदन किया ।२८२।

राया करेइ दंडं, सिट्ठे तेणं ति अम्ह वि स होउ ।
मग्गह कुलगरं सो बेइ उसभो तुब्भे राया ।२८३।
(राजा करोति दण्डं, शिष्टे तेन अस्माकमपि सः भवतु ।
मार्गयत कुलकरं सः ब्रवीति ऋषभः युष्माकं राजा ।)

ऋषभदेव ने कहा कि [illegible] को दण्डित करने वाले [illegible] राजा [illegible] ऋषभदेव ने कहा—[illegible] कुलकर से [illegible]

दसवि जिणिंदा समये, दाणं दाऊण वच्छरं एगं ।
चित्त बहुलट्ठमीए, निक्खंता तेउ छट्ठेणं ।२९०।
(दशाऽपि जिनेन्द्राः समये दानं दत्वा वत्सरमेकम् ।
चैत्र बहुलाष्टम्यां, निष्क्रान्ता ते तु षष्ठेन ।)

दशों ही जिनेन्द्र समय पर एक वर्ष तक दान देकर चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन षष्ठ भक्त (वेले) की तपस्या से महाभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए ।२६०।

फग्गुण बहुलेक्कारसी, अह अट्ठमेण भत्तेण ।
उप्पणंमि अणंते, महव्वया पंच पण्णवए ।२९१।
(फाल्गुन बहुलैकादश्यां, अथाष्टमेन भक्तेन ।
उत्पन्नेऽनन्ते, महाव्रतान् पंच प्रज्ञपयति ।)

तत्पश्चात् फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन अष्टम भक्त (तेले) की तपस्या पूर्वक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन-और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने पर पंच महाव्रतों की प्ररूपणा करते हैं ।२६१।

तस्सासि पढम तणयो, चोद्दसरयणाहिवो मणुयसिंहो ।
भरहो णाम महप्पा, अमरवरिंदोवमसिरीऊ ।२९२।
(तस्यासीत् प्रथमतनयः, चतुर्दशरत्नाधिपः मनुजसिंहः ।
भरतः नाम महात्मा, अमरवरेन्द्रोपम श्रीकः ।)

उनके ज्येष्ठ पुत्र चौदह रत्नों के स्वामी मनुष्यों में सिंह के समान और देवेन्द्रों के समान श्री, ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न एवं ऐश्वर्य शाली भरत नामक महात्मा थे ।२६२।

उप्पन्न चक्करयणं, भरहं वण्णेमि रयणविभवेणं ।
सुरवइविमाणविभवं, बत्तीससहस्स निवनाहं ।२९३।
(उत्पन्नचक्ररत्नं, भरत वर्णयामि रत्नविभवेन ।
सुरपति-विमानविभवं; द्वात्रिंशत्सहस्रनृपनाथम् ।)

उनका चक्र मध्याह्न के तरुण सूर्यमण्डल के समान परम तेजस्वी और भास्वर छत्र सब रोगों को दूर करने वाला, खड्ग शत्रुओं के दर्प का दलन करने वाला और दण्ड विषमातिविषम को भी शम अथवा सम करने वाला था ।२६६।

चंम रयणमभेज्जं, मणिरयणं चेव संसि रोगहरं ।
रविससि-किरण परट्ठं, कागिणि रयणं च तं पवरं ।२९७।
(चर्मरत्नमभेद्यं, मणिरत्नं चैव संशयरोगहरम् ।
रविशशिकिरणपरस्थं, काकिनीरत्नं च तत् प्रवरम् ।)

चक्रवर्ती भरत का चर्मरत्न अभेद्य मणिरत्न सब प्रकार के संशयों और रोगों का हरण करने वाला तथा अति श्रेष्ठ काकिनी रत्न सूर्य और चन्द्र की किरणों से भी अधिक ज्योतिष्मान था ।२९७।

सेणावइ अईवसूरं, सेट्ठिवेसमणदेव पडितुल्लं ।
वड्ढइरयण मणोहर, पुरोहियं चेव संतिकरं ।२९८।
(सेनापति अतीवशूरं श्रेष्ठि वैश्रवण देवपरितुल्यम् ।
वर्धकि (वर्द्धति) रत्नं मनोहरं, पुरोहितं चैव शान्तिकरम् ।)

उनका सेनापतिरत्न अति शूरवीर, श्रेष्ठिरत्न वैश्रवण तुल्य, वर्धकि (बढइ) रत्न मनोहर और पुरोहित रत्न परम शान्तिकारक था ।२९८।

रिवु जीविय विक्काल, हत्थि आसि च वाउवेग सम ।
इत्थीरयण महप्पं, चोद्दसरयणाइं भरहस्स ।२९९।
रिपुजीवितविकरालं हस्त्यश्वे च वायुवेग समे ।
स्त्रीरत्नं महात्मं[1] , चतुर्दश रत्नानि भरतस्य ।)

शत्रुओं के प्राणों के लिये विकराल काल के समान तथा वायुतुल्य वेग वाले हस्तिरत्न तथा अश्वरत्न और महाप्राण स्त्रीरत्न इस प्रकार भरत चक्रवर्ती के ये चौदह रत्न थे ।२९९।

१ महात्मं-महाप्राणमित्यर्थः। गाथायां 'महार्घं', इति पाठस्यापि संभावनानुमीयते'।

नव जोयण वित्थिण्णा, नवनिहीउ अट्ठ जोयणुस्सेहा ।
बारस जोयण दीहा, हिय इच्छियरयण संपुण्णा ।२००।
(नव योजन विस्तीर्णाः, नवनिधयोऽष्टयोजनोत्सेधाः ।
द्वादश योजन दीर्घाः, हृदयेप्सितरत्न संपूर्णाः ।)

चक्रवर्ती भरत नौ निधियों के स्वामी थे। वे नौ निधियां नौ योजन विस्तार अर्थात् चौड़ाई वाली, आठ योजन ऊंचाई वाली तथा बारह योजन दीर्घ अर्थात् लम्बी और मनोवांछित नव प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थीं ।२००।

(मूल प्रति में उपर्युक्त गाथा की संख्या १९९ है और गाथा संख्या ।२००। नहीं है)

नेसप्प पंडु पिंगल, रयण महापउम काल नामा य ।
तत्तो य महाकाले, माणवग संखनामे य ।२०२।
(नैसर्प पाण्डुक पिंगल रत्न महापद्म काल नामा च ।
ततश्च महाकालः, माणवकः शंख नामा च ।)

नैसर्प, पाण्डुक, पिंगल, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शंख महानिधि—ये ९ प्रकार की निधियां होती हैं ।२०२।

एवं भरह सरिच्छा, नवसुवि खित्तेसु चक्किणो होंति ।
एत्तो परं तु वोच्छं, जो जम्मो जस्स विमाणाओ ।२०३।
(एवं भरत सदृशा, नवस्वपि क्षेत्रेषु चक्रिणः भवन्ति ।
अतः परं तु वक्ष्ये, यः यस्मात् च्युतः विमानात् ।)

इस प्रकार भरत के समान ही ९ क्षेत्रों में भी चक्रवर्ती होते हैं। अब आगे मैं यह बताऊंगा कि कौनसा चक्रवर्ती किस विमान से च्यवन कर उत्पन्न हुआ ।२०३।

[illegible] ।
[illegible] ।२०४।

(चत्वारि एकतः त्रीणि च ततः सप्त एकैकास्तु ।
पंचभिः ततः द्वौ च्युतान्, वन्दामि जिनान चतुर्विंशतीन् ।)

चार एक ही स्थान से, तीन एक स्थान से, सात एक एक पृथक् स्थान से तथा पांच स्थानों से दो दो की संख्या में च्युत हुए इस प्रकार इन चौवीस तीर्थंकरों को मैं वन्दन करता हूं।३०४।

उसभं च जिणवरिंदं, धम्मं संतिं तहेव कुंथुं च ।
सव्वट्ठ विमाणाओ, चत्तारि चुए णमंसामि ।३०५।
(ऋषभं च जिनवरेन्द्रम्, धर्मं शान्तिं तथैव कुंथुं च ।
सर्वार्थ विमानात्, चत्वारि च्युतान् नमामि ।)

सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवित ऋषभदेव, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुंथुनाथ इन चार तीर्थङ्करों को मैं नमस्कार करता हूं।३०५।

सेज्जंसं च जिणिंदं, अणंतमपच्छिमं च तित्थयरं ।
पुप्फुत्तर विमाणाओ, तिन्निय चुया नमंसामि ।३०६।
(श्रेयांसं च जिनेन्द्रं अनन्तमपश्चिमं च तीर्थङ्करम् ।
पुष्पोत्तर विमानात्, त्रयश्च च्युतान् नमस्यामि ।)

पुष्पोत्तर विमान से च्युत हुए श्रेयांसनाथ, अनन्त नाथ और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर इन तीनों को मैं नमस्कार करता हूं।३०७।

हेट्ठिम गेवेज्जाओ संभवं, पउमप्पहं उवरिमाओ ।
मज्झिम गेवेज्ज चुयं, वंदामि जिणं सुपासरिसिं ।३०।७
(अधस्थ ग्रैवेयकात् संभवं, पद्मप्रभं उपरिमात् ।
मध्यम ग्रैवेयकच्युतं, वंदामि जिनं सुपार्श्वर्षिम् ।)

अधो ग्रैवेयक से च्युत हुए संभवनाथ, उपरिम ग्रैवेयक से च्युत हुए पद्मप्रभु और मध्यम ग्रैवेयक से च्युत हुए सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर मैं नमस्कार करता हूं।३०७।

आणयकप्पा सुविहिं, सियलजिणमच्चुयाओ कप्पाओ।
सुक्काउ वासुपुज्जं, सहस्साराओ चुयं विमलम् ।२०८।
(आनतकल्पात् सुविधिं, शीतलजिनमच्युतात् कल्पात्।
शुक्रात् वासुपूज्यं, सहस्रारात् च्युतं विमलम्।)

आनत कल्प से च्युत हुए सुविधिनाथ, अच्युत कल्प से च्युत हुए शीतलनाथ, शुक्र कल्प से च्युत हुये वासुपूज्य और सहस्रार से च्युत हुए विमलनाथ तीर्थङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ।२०८।

अभिनंदणं च अजियं, विजयविमाणच्चुयं नमंसामि।
चंदप्पहं च सुमइं, दोवि च्चुया वेजयंताओ ।२०९।
(अभिनंदनं च अजितं, विजयविमानच्युतं नमस्यामि।
चन्द्रप्रभं च सुमतिं, द्वावपि च्युतौ वैजयंतात्।)

विजय विमान से च्युत हुए तीर्थङ्कर अभिनन्दन और अजितनाथ को तथा वैजयन्त विमान से च्युत हुए भगवान् चन्द्रप्रभ और सुमतिनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ।२०९।

अरमल्लिं जयंताओ, नमिं नेमिं पराइया विमाणाउ।
मुणिं सुव्वयं च पासं, पाणयकप्पाच्चुयं वंदे ।२१०।
(अरं मल्लिं जयन्तात्, नमिं नेमिं अपराजितात् विमानात्।
मुनिं सुव्रतं च पार्श्वं, प्राणतकल्पात् च्युतं वन्दे।)

जयन्त विमान से च्युत हुए भगवान् अरनाथ एवं मल्लिनाथ को, अपराजित विमान से च्युत हुए नमिनाथ एवं अरिष्टनेमि को और प्राणतकल्प से च्यवित हुए भगवान् मुनिसुव्रत तथा पार्श्वनाथ को मैं वन्दन करता हूँ।२१०।

इच्चाएण एवं, भणामि जिणवर चउव्वीसं।
जंमि भवे चयंति, एत्तो जम्मं निसामेह ।२११।
(इत्यादिकेन, भणामि जिनवरान् चतुर्विंशतिम्।
यस्मिन् भवे च्यवन्ति, इतः जन्म निशामयत।)

पद्यरचना द्वारा मैं चौवीस जिनेश्वरों के सम्बन्ध में कथन कर रहा हूं। उनके अन्तिम देव भव का कथन समाप्त हुआ अब उनके सम्बन्ध में सुनिये ।३११।

पंचसु एरवएसु, पंच भरहेसु जिणवरिंदाणं ।
ओसप्पिणी इमीसे, दससु वि खेत्तेसु समकालं ।३१२।
(पंचसु ऐरवतेषु, पंचभरतेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
अवसर्पिण्यामस्यां, दशस्वपि क्षेत्रेषु समकालम् ।)

पांचों ऐरवत क्षेत्रों में और पांचों ही भरत क्षेत्रों अर्थात् ढाई द्वीप के इन दशों क्षेत्रों में, जहां कि अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी रूपी काल चक्र अनुक्रमशः अनवरत गति से अनादिकाल से चलता आया है, चल रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा, वहां इस अवसर्पिणी काल में तीर्थङ्करों की चौवीसी का पूर्णतः सम सामयिक अथवा समान काल रहा है ।३१२।

उसभो य भरहवासे, बालचंदाणणो एरवए उ ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा विस्स देवो[1] हि ।३१३।
(ऋषभश्च भारतवर्षे, बाल चन्द्रानन[2] ऐरवते तु ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः वैश्व देवो हि ।

भरत क्षेत्र में ऋषभ देव और ऐरवत क्षेत्र में बाल चन्द्रानन, इस प्रकार दशों क्षेत्रों में दशों प्रथम तीर्थङ्कर एक ही समय में उत्पन्न हुए। इनके समय में अग्नि भी दशों क्षेत्रों में एक साथ प्रकट हुई। ।३१३। (इस गाथा में जन्म नक्षत्र का उल्लेख नहीं है।)

---

१ पंचसु भरतक्षेत्रेषु तथैव पंचस्वैरवतक्षेत्रेषु प्रथम तीर्थंकराणां समये वैश्वानरस्योत्पत्तिः संजाता। गाथायामत्र प्रयुक्तस्य 'विस्सद्दवो'-पदस्य संस्कृत स्वरूपं वैश्वदेवः भवति। अग्नेरुत्पत्तिमुद्दिश्यैवैतद् पदं ग्रन्थकर्त्रा प्रयुक्त स्यादिति प्रतीयते। इतरार्थोऽस्य पदस्य नास्माभिरनुमीयते।

२ ऐरवतक्षेत्रोत्पन्न प्रथम जिनस्य नाम चन्द्राननः। बाल शब्दोऽत्र चन्द्रस्य विशेषणार्थं छन्दोऽनुरोधादेव प्रयुक्त इतिसिद्धम्।

अजिय भरहवासे, सुचंदु सुचंदो य एरवय वासे ।
एक्क समएण जाया, दस वि जिणा रोहिणी जोए ।३१४।
(अजितः भारतवर्षे, सुचन्द्रः सुचन्द्रस्च ऐरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः रोहिणी योगे ।)

भरत क्षेत्र में अजितनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुचन्द्र—इस प्रकार से द्वितीय दसों तीर्थङ्कर भी चन्द्रमा का रोहिणी नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१४।

भरहे य संभव जिणो, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
एगसमएण जाया दसवि जिणिंदा पुणव्वसुणा ।३१५।
(भरते च संभव जिनः, ऐरवते अग्निसेनजिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः पुनर्वसुना ।)

भरत क्षेत्र में संभव जिन और ऐरवत क्षेत्र में अग्निसेन—इस प्रकार दसों क्षेत्रों में दसों ही तीर्थंकर चन्द्र का पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए ।३१५।

(भरत क्षेत्र में अभिनन्दन और ऐरवत क्षेत्र में नंदिसेण एक समय में उत्पन्न हुए—इस अभिप्राय की गाथा लिपिकार के दोष से मूल प्रति में नहीं लिखी गई है ।)

सुमती य भरहवासे, इसिदिण्ण जिणो य एरवय वासे ।
एग समएण जाया, दसवि जिणिंदा मघा जोगे ।३१६।
(सुमतिजिनः भारतवर्षे, ऋषिदत्तजिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि जिनेन्द्राः मघा योगे ।)

भरत क्षेत्र में सुमतिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में ऋषिदत्त, इसी प्रकार दसों क्षेत्रों में दस तीर्थंकर चन्द्र का मघा नक्षत्र के योग में एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१६।

पउमप्पहो य भरहे, सोमचंदो जिणो य एरवयवासे ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा चित्त जोगम्मि ।३१

(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारिः (व्रतधारी) जिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाश्चित्रायोगे ।)

भरत क्षेत्र में तीर्थंकर पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी जिनेश्वर, इस प्रकार चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर दशों क्षेत्रों में छठे दशों तीर्थंकर एक काल अथवा एक ही समय में जन्मे ।३१७।

भरहे य सुपासजिणो, एरवए सामचंद जिणचन्दो ।
एग समएणजाया, दसवि जिणिंदा भू (?) विसाहाये योगे ।३१८।
(भरते च सुपार्श्वजिनः, ऐरवते सा(सो)मचन्द्र जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः विशाखायोगे ।)

भरत क्षेत्र में सुपार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर सामचन्द्र ये दशों ही सातवें तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चन्द्र का विशाखा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए ।३१८।

चन्दप्पभो य भरहे, एरवए दीहासण जिणचंदो ।
एग समयेण जाया, दसविय अणुराह जोगम्मि ।३१९।
(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घासनः जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि चानुराधायोगे ।)

भरत क्षेत्र में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घसेन---इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दशों ही आठवें तीर्थंकर चन्द्र का अनुराधा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१९। (इस गाथा का क्रमांक मूल प्रति में ३१८ है। ३१९ वीं गाथा मूल में नहीं है।)

सुविही य भरहवासे, एरवए चेव जिणवर सयाऊ ।
एगसमयम्मि जाया, दसवि जिणा मूल जोगम्मि ।३२१।
(सुविधिश्च भारतवर्षे, ऐरवते चेव जिनवर शतायुः ।
एकसमये जाताः, दशाऽपि जिनाः मूलयोगे ।)

नौवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का मूल नक्षत्र के साथ योग होने

पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२१।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए सुव्वई जिणवरिंदो ।
पुव्वासाढारिक्खे, जाया जिणपुंगवा एते ।३२२।
(भरते च शीतलजिनः, ऐरवते सुव्रती जिनवरेन्द्रः ।
पूर्वाषाढा ऋक्षे, जाताः जिनपुंगवा एते)

दसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में शीतलनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुव्रती ये दसों तीर्थंकर चन्द्र का पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए ।३२२।

भरहे सेज्जंस जिणो, एरवए जुत्तिसेण जिणचन्दो ।
एग समएण जाया, दसवि जिणिंदा सवण जोगे ।३२३।
(भरते श्रेयांस जिनः, ऐरवते युक्तिसेन जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि जिनेन्द्राः श्रवणयोगे ।)

ग्यारहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में श्रेयांस नाथ और ऐरवत क्षेत्र में युक्तिसेन ये पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्र के दस तीर्थंकर चन्द्र का श्रवण नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२३।

भरहे य वासुपुज्जो, सेज्जंसजिणो य एरवए वासे ।
सयभिसया नक्खत्ते, दसवि जिणिंदा समं जाया ।३२४
(भरते च वासुपूज्यः, श्रेयांस जिनश्चैरवतवर्षे ।
शतभिषा नक्षत्रे, दशाऽपि जिनेन्द्राः समं जाताः ।)

(नमिः जिनचन्द्रः भरते ऐरवते श्यामकोष्ठः जिनचन्द्रः ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिना अश्विनीयोगे ।]

इक्कीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में एक ही समय में चन्द्र का अश्विनी नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए ।३३२।

भरहे अरिट्ठनेमि, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणा चित्त जोगम्मि ३३३।
(भरते अरिष्टनेमिः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः चित्रायोगे)

बावीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि और ऐरवत क्षेत्र में अग्निषेण –ये दशों तीर्थंकर चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही वेला में उत्पन्न हुए ।३३३।

पासो य भरहवासे, एरवए अग्गिदत्त [उत्त] जिणचंदो ।
एग समएण जाया, दसवि विसाहाहिं जोगंमि ।३३४।
(पार्श्वश्च भारतवर्षे, ऐरवते अग्निदत्त [गुप्त] जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि विशाखायोगे ।)

तेबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में पार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अग्निदत्त, ये दश तीर्थंकर चन्द्र का विशाखा के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुये ।३३४।

भरहे वीर जिणिंदे, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।
हत्थुत्तराहि जोगे, जाया तित्थंकरा दसवि ३३५।
(भरते वीर जिनेन्द्रः, ऐरवते वारिषेण जिनचन्द्रः ।
हस्तोत्तरायाः योगे, जाताः तीर्थंकराः दशाऽपि ।)

चौबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में वीर (महावीर) और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण–ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३३५।

एवं भणिया जम्मा, दससु वि खेत्तेसु जिणवरिंदाणं ।
एत्तो परं तु वोच्छं, वण्णविभागं समासेणं ।२३६।
(एवं भणिताः जन्मानि, दशस्वपि क्षेत्रेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
इतः परं तु वक्ष्ये, वर्णविभागं समासेन ।)

इस प्रकार ढाई द्वीपों के पांच भरत क्षेत्रों एवं पांच ऐरवत क्षेत्रों—इस प्रकार दस क्षेत्रों के तीर्थंकरों के जन्म समय का कथन किया। अब इससे आगे मैं उन तीर्थंकरों के वर्णविभाग का संक्षेपतः वर्णन करूंगा ।२३६।

चत्तारि कालगा जिणवराउ, चउरो पियंगु वण्णाभा ।
चत्तारि पउमगोरा, ससिप्पभा होंति चत्तारि ।२३७।
(चत्वारः कालका जिनवरास्तु, चत्वारो प्रियंगुवर्णाभाः ।
चत्वारो पद्मगौराः, शशिप्रभा भवन्ति चत्वारि ।)

चार तीर्थंकर श्यामवर्ण के, चार प्रियंगु अर्थात् जामुन के रंग जैसी प्रभा वाले, चार तीर्थंकर पद्मगर्भ के समान गौरवर्ण के, चार तीर्थंकर चन्द्रप्रभा की धवल चांदनी के समान श्वेत वर्ण के थे ।२३७।

(स्पष्टीकरण :—इस गाथा में वर्ण विभाग की दृष्टि से विभिन्न वर्णों के तीर्थंकरों की जो संख्या १६ दी गई है वह केवल जम्बू द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्र के तीर्थंकरों की ही है। इन तीर्थंकरों के साथ धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में उत्पन्न हुये ६४ तीर्थंकरों की संख्या को जोड़ने पर अवसर्पिणी काल की दस चौबीसियों (पांच चौबीसियां ढाई द्वीप के ५ भरत क्षेत्रों की और पांच ही चौबीसियां ढाई द्वीप के पांच ऐरवत क्षेत्रों की) के २४० तीर्थंकरों में से ८० तीर्थंकरों के वर्णों का उल्लेख इस गाथा में बताया गया है।)

जम्बू द्वीप के भरत खण्ड की चौबीसी के आठ तथा ऐरवत द्वीप की चौबीसी के आठ इस प्रकार १६ तीर्थंकरों के वर्णों के विवरण के पश्चात् जम्बूद्वीप के भरत खण्ड की चौबीसी के शेष १६

इस भरत क्षेत्र के छटे तीर्थंकर पद्मप्रभ और उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र के छठे तीर्थंकर वयधारी, इस भरत क्षेत्र के बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य और उनके जन्म की वेला में ही उत्पन्न हुये, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के बारहवें तीर्थंकर श्रेयांस।३४३।

चउसु वि एरवएसु, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।
एते वीस जिणंदा, बंधु कुसुमुप्पभा नेया।३४४।
(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एते विंशत् जिनेन्द्राः बंधूक कुसुमप्रभाः ज्ञेयाः ।)

तथा धात की खण्ड द्वीप एवं पुष्कराद्ध द्वीप के चार भरत और चार ऐरवत क्षेत्रों में पद्मप्रभ के जन्म समय में उत्पन्न हुये आठ छठे तीर्थङ्कर तथा वासु पूज्य की जन्म वेला में उत्पन्न हुये उक्त आठों क्षेत्रों के बारहवें आठ तीर्थंकर. इस प्रकार अवसर्पिणी की दश क्षेत्रों की दश चौवीसियों के २४० तीर्थंकरों में से वीस (ढाई द्वीप के १० छठे और १० बारहवें) तीर्थंकर बंधूक कुसुम को प्रभा के समान वर्ण वाले जानने चाहिए।३४४।

चंदप्पो य भरहे, एरवए दीहासणो जिणचंदो ।
सुविही य भरहवा से, एरवयंमि य सयाउ जिणो।३४५।
(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते द्रीर्घपेण जिनचन्द्रः ।
सुविधिश्च भरतवर्षे, ऐरवते च शतायुः जिनः ।)

इस भरत क्षेत्र के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और उन्हीं की जन्म वेला में उत्पन्न हुए जम्बूद्वोप के ऐरवत क्षेत्र के आठवें तीर्थङ्कर दीर्घासन. इसी भरत क्षेत्र के नौवें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ तथा उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के नौवें तीर्थंकर शतायु-।३४५।

चउसु वि एरवएसु, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।
एते वीसं धवला, जिणचंदा होंति नायव्वा ३४६।
(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एते विंशतिः धवलाः, जिनचन्द्राः भवन्ति ज्ञातव्या ।)

और धातकी खण्ड तथा पुष्करार्द्ध द्वीप के चार भरत और चार ही ऐरवत इन आठ क्षेत्रों में चन्द्रप्रभ की जन्म-वेला में ही उत्पन्न हुए आठवें आठ तीर्थंकर तथा सुविधिनाथ के जन्म समय में एक ही वेला में उत्पन्न हुए नौवें आठ तीर्थंकर इस प्रकार कुल बीस (२०) तीर्थंकर श्वेत वर्ण के होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।३४६।

उसभो य भरहवासे, बालचंदाणणो य एरवए ।
अजिय उ भरहे वासे, एरवयंमि य सुचंद जिणो ।३४७।
(ऋषभश्च भरतवर्षे, बाल-चन्द्राननश्चैरवते ।
अजितस्तु भारते वर्षे, ऐरवते च सुचन्द्रः जिनः ।)

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर बालचन्द्रानन, इसी भरत क्षेत्र के दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ तथा जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के द्वितीय तीर्थंकर सुचन्द्र ।३४७।

भरहे य संभवजिणो, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
अभिणंदणो य भरहे, एरवए नंदिसेण जिणो ।३४८।
(भारते च संभव जिनः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
अभिनन्दनश्च भरते, ऐरवते नन्दिषेण जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ, जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के तीसरे तीर्थंकर अग्निषेण, इसी भरत क्षेत्र के चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन, जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के चौथे तीर्थंकर नन्दिषेण ।३४८।

सुमई य भरहवासे, इसिदिन्न जिणो य एरवयवासे ।
भरहे य पउम जिणो, एरवए सोमचंद जिणो ।३४९।
(सुमतिश्च भरतवर्षे, ऋषिदत्त जिनश्चैरवते ।
भरते च पद्मप्रभजिनः, ऐरवते सोमचन्द्रः जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ, जम्बू-द्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के पाँचवें तीर्थंकर [illegible]

के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, जम्बू द्वीप के ऐरवत क्षेत्र के सातवें तीर्थंकर श्यामचन्द--।३४९।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए सुव्वई जिणवरिंदो ।
भरहे सेज्जंस जिणो, एरवए जुत्तिसेणो वि ।३५०।
(भरते च शीतलजिनः, एरवते सुव्रती जिनवरेन्द्रः ।
भरते श्रेयांसजिनः, ऐरवते युक्तिषेणोऽपि ।)

इसी भरत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर सुव्रती, इसी भरत के ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के उनके समवयस्क ग्यारहवें तीर्थंकर युक्तिसेन ।३५०।

विमलो य भरहवासे, एरवए सीहसेण जिणचंदो ।
भरहे अणंतई जिणो, असंजल जिणो य एरवए ।३५१।
(विमलश्च भारतवर्षे, ऐरवते सिंहषेण-जिनचन्द्रः ।
भरते अनन्त हि जिनः, असंजल (आश्वञ्जल) जिनश्च ऐरवते ।)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ और ऐरवत क्षेत्र के तेरहवें तीर्थंकर सिंहसेन, इसी भरत क्षेत्र के १४ वें तीर्थंकर अनन्तनाथ, ऐरवत क्षेत्र के चौदहवें तीर्थंकर असंजल ।३५१।

धम्मो य भरहवासे, उवसंत जिणोय एरवयवासे ।
संती य भरहवासे, एरवए दीहसेण-जिणो ।३५२।
(धर्मश्च भरतवर्षे, उपशान्त जिनश्चैरवतवर्षे ।
शान्तिश्च भारतवर्षे, ऐरवते दीर्घषेण-जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ, जम्बू द्वीप के ही ऐरवत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर उपशान्त, इसी भरत क्षेत्र के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ, जम्बू द्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के सोलहवें तीर्थंकर दीर्घसेन ।३५२।

कुंथू य भरहवासे एरवयम्मि य महाहि लोगबलो ।
अर जिणवरो य भरहे, अइपास जिणो य एरवए ॥३५३॥
(कुन्थुश्च भरतवर्षे ऐरवते च महाहि लोकबलः ।
अर जिनवरश्च भरते, अतिपार्श्वजिनश्चैरवते ।)

इस भरत क्षेत्र के १७वें तीर्थंकर कुंथुनाथ, ऐरवत क्षेत्र के १७वें तीर्थंकर लोकबल, इस भरत क्षेत्र के अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ, ऐरवत क्षेत्र के भी १८वें तीर्थंकर अतिपार्श्व—॥३५३॥

नमि जिणवरो य भरहे, एरवए सामकोट्ठ जिणचंदो ।
भरहम्मि य वीर जिणो, एरवए वारिसेणो वि ॥३५४॥
(नमिः जिनवरश्च भरते, ऐरवते श्यामकोष्ठ-जिनचन्द्रः ।
भरते च वीर जिनः, ऐरवते वारिषेणोऽपि ।)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ, ऐरवत क्षेत्र के २१वें तीर्थंकर श्यामकोष्ठ, इसी भरत के चौबीसवें तीर्थंकर वीर (महावीर-वर्द्धमान) और महावीर की समकालीनता-पूर्ण अवधि में जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न हुए [illegible] के चौबीसवें तीर्थंकर वारिषेण—॥३५४॥

केवल नाणुज्जोया, तिलोय पयड-[illegible] ।
एते इणमो जिणा, गुणरयणरयणा सुकयपुण्णा ॥३५५॥
(केवलज्ञानोद्योताः, त्रिलोक प्रकाश-यशो-[illegible] ।
एते आदिजिनादयः, गुणरत्नवर्णाः सुकृतपुण्याः ।)

[illegible] द्वारा [illegible] त्रिलोक में [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] हुए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥३५५॥

चउवीसं भरहम्मि, एवं चउवीसं [illegible] ।
[illegible] य [illegible], गुणरयणरयणो [illegible] ॥३५६॥

(चतसृष्वप्येरवतेषु एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
अष्टाविंशतिः च शतं, स्वर्णवर्णा जिनेन्द्राणाम् ।)

एवं---इस प्रकार (जिस प्रकार कि जम्बूद्वीप के एक भरत और एक ऐरवत क्षेत्र में दो दो एक ही समय में उत्पन्न हुए उपरिवर्णित ऋषभ चन्द्रानन आदि ३२ तीर्थंकर तपाये हुए शुद्ध श्रेष्ठ स्वर्ण के रंग के समान वर्ण वाले थे उसी प्रकार उपरिचर्चित दो दो तीर्थंकरों के जन्म के साथ साथ विना एक क्षण के अन्तर के---शतशः ठीक एक ही समय में आठ आठ की संख्या में जन्मे हुए, घातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप के) चारों ही भरत क्षेत्रों और चारों ही ऐरवत क्षेत्रों में १२८ तीर्थंकरों का वर्ण प्रतप्त स्वर्ण के समान था ।३५५।

[स्पष्टीकरण:---ढाई द्वीप में पाँच भरत क्षेत्र हैं---एक जम्बूद्वीप का, दो घातकी खण्ड के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । इसी प्रकार ढाई द्वीप में पांच ऐरवत क्षेत्र हैं:--एक जम्बूद्वीप का दो घातकी खण्ड द्वीप के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में इन दशों क्षेत्रों में प्रत्येक में चौवीस-चौवीस तीर्थंकरों के हिसाब से दश चौवीसियां, तदनुसार २४० तीर्थंकर हुए । ३३६ से ३५५ तक की २० गाथाओं का सारांश यह है कि इन २४० तीर्थंकरों में से वीस तीर्थङ्करों का देह-वर्ण श्यामल, बीस का प्रियंगुवर्णाभ, वीस का पद्मगर्भगौर, वीस का चन्द्र की दुग्ध-धवल चांदनी के समान श्वेत और शेष १६० तीर्थंकरों का वर्ण तपाये हुए श्रेष्ठ स्वर्ण के समान था ।]

दससुवि वासेसेत्तो, जिणिंद चंदाण सुणसु संठाणं ।
वज्जरिसभ संघयणा, समचउरंसाय संठाणे ।३५७।
(दशस्वपि वर्षेषु-इतः, जिनेन्द्रचन्द्राणां शृणु संस्थानम् ।
वज्रऋषभ संहननाः, समचतुरस्राश्च संस्थाने)

ढाई द्वीप के पांच भरत और पांच ऐरवत --इन दशों ही क्षेत्रों में हुए (२४०) तीर्थेश्वरों के संस्थान के सम्बन्ध में अब सुनिये । वे सबके सब (सभी) वज्रऋषभ संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धनी थे ।३५७)

बत्तीसं घरयाइं, काउं तिरियायदाहिं रेहाहिं ।
उड्ढायाहिं काउं, पंच घरयाइं तो पढमे ।२४८।
(द्वात्रिंशत् गृहाणि, कृत्वा तिर्यगायताभिः रेखाभिः ।
ऊर्ध्वायताभिः कृत्वा, पंच गृहाणि ततः प्रथमे ।)

तिरछी ३२ और खड़ी ५ रेखाएं खींचकर ऊपर से नीचे पांच पंक्तियों में बत्तीस-बत्तीस समचौकोण घर बनाये जावें। तदनन्तर प्रथम पंक्ति में—।२४८।

पन्नरस जिण निरंतर, सुन्न दुगं त्ति जिण सुन्न तियगं च ।
दो जिण सुन्न जिणिंदो, सुन्न जिणो सुन्न दोन्नि जिणा ।२४९।
(पंचदश जिना निरन्तर, शून्यद्विकं त्रयो जिना शून्य त्रिकं च ।
द्वौ जिनौ शून्यं जिनेन्द्रः, शून्यं जिनः, शून्यं द्वौ जिनौ ।)

प्रथम पंक्ति:—

[इति प्रथमा पंक्तिः]

निरन्तर पन्द्रह घरों में क्रमशः पन्द्रह तीर्थंकरों के नाम, फिर आगे के दो घरों में शून्य, फिर ३ घरों में [illegible] तीर्थंकरों के नाम, फिर आगे के तीन घरों में शून्य, उसके आगे के दो घरों में [illegible] और [illegible] तीर्थंकरों के नाम, उसके आगे के एक घर में शून्य, फिर आगे के एक घर में [illegible] तीर्थंकर का नाम, आगे के एक घर में शून्य, उसके आगे के एक घर में [illegible] तीर्थंकर का नाम, उसके आगे के एक घर में शून्य और उसके आगे के शेष दो घरों में [illegible] और [illegible] तीर्थंकरों के नाम लिखें।

[द्वितीया पंक्तिः]

दो पन्नरसी सुन्न तेरस, दुग पन्नरसी सुन्न पन्नरसी दो सुन्ना ।
पन्नरसी सुन्न दु पन्नरसी, सुन्नं पन्नरसी सुसुन्नं च ।२५०।
[illegible]
[illegible]

दूसरी पंक्ति:—

दूसरी पंक्ति पर पहले दो घरों में प्रथम और दूसरे चक्रवर्तियों के नाम, फिर आगे के १३ घरों में शून्य, फिर आगे के पांच घरों में तीसरे से सातवें चक्रवर्तियों के नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य फिर आग के एक घर में आठवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के दो घरों में शून्य, फिर आगे के एक घर में नौवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य, उससे आगे के दो घरों में दशवें और ग्यारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य उससे आगे के एक घर में बारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के अन्तिम दो घरों में शून्य ।३६०।

[अथ तृतीया पंक्तिः]

दस सुन्न पंच केसव, पण सुन्नं, केसी सुन्न केसी य ।
दो सुन्न केसवोऽवि य, सुन्न दुगं केसव ति-सुन्नं ।३६१।
(दश शून्यानि पंच केशवा, पंचशून्यानि केसीः शून्य केसी च ।
द्वे शून्ये केशवोऽपि च, शून्यद्विकं केशवः त्रीणि शून्यानि ।)

तीसरी पंक्तिः—

तीसरी पंक्ति के पहले दश घरों में शून्य, आगे के पांच घरों में क्रमशः ५ केशवों (वासुदेवों) के नाम, आग के पांच घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर एक घर में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, फिर एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में नौवें केशव का नाम, इससे आगे के अन्तिम तीन घरों में शून्य ।३६१।

पंचसय अद्ध पंचम, चउरो चउद्ध तिन्नि य सयाइं ।
अड्ढाइज्जा दोन्नि य, दिवड्ढमेगं धणुसयं च ।३६२।
नउइ असीइ सत्तरि, सट्ठी पणास तह य पणयाला ।
बायालाइं धणुइं य, चालीस [चत्तालं] अद्ध धणुगं च ।३६३।
चत्ताला पणतीसा, तीसा उणतीस अट्ठवीसा य ।
छव्वीसा पणवीसा वीसा तह सोल पणरसं ।३६४।

बारस दस सगधणू, रयणी पव सग होइ उच्चत्तं ।
तिण चयकंखिदिसेसु, चउत्थ घर वमि निद्दिट्ठं ।३६५।

[चतुर्थ पंक्तिः]

(पंचशत अर्द्ध पंचम, चत्वारि चत्वार्यर्द्धं त्रीणि च शतानि ।
सार्द्ध द्वि द्वौ च. इयर्द्ध एकं धनुश्शतं च ।३६२।
नवति अशीतिः सप्ततिः, षष्टिः पञ्चाशत् तथा च पंचचत्वारिंशत् ।
द्वि चत्वारिंशत् धनूंषि च, चत्वारिंशदर्द्धं धनुष्कं च ।३६३।
चत्वारिंशत्: पञ्चत्रिंशत्:, त्रिंशत् एकोनत्रिंशत् अष्टाविंशतिश्च ।
षड्विंशतिः पञ्चविंशतिः तथा षोडश पञ्चदश ।३६४।
द्वादश दश सप्त धनूंषि. रत्नयः नव सप्त भवति उच्चता ।
त्रिनवदशलिंकेषु, चतुर्थ गृहे निर्दिष्टम् ३६५।)

चौथी पंक्ति ---

चौथी पंक्ति के गड्ढे के [illegible] ५०० [illegible] ४५० [illegible] ४०० [illegible] ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १०० धनुष [illegible]

[illegible] ९०, ८०, ७० ६०, ५० ४५, ४२, ४०½ धनुष [illegible] ३५, ३०, २९, २८, २६, २५, १६, १५ धनुष [illegible]

[illegible]

[illegible]

पंचनवतिः चतुरशीतिः, पञ्चषष्टिः षष्टिः तथा च षट्पञ्चाशत् ।
पञ्च पञ्चाशत् त्रिंशत् द्वादश, दश त्रीणि एकं सहस्राणि ।३७३।
सप्तशतानि शतमेकं, वर्षाणां द्वासप्ततिश्च ।
पञ्चार्द्धशत (४५०) जिनचक्रिकेशवानां आयुप्रमाणं मुनेतव्यम् ।
३७४।)

[चतुर्भिःकुलकम्]

पांचवीं पंक्ति :---

पांचवीं पंक्ति के पहले घर से लेकर सेंतीसवें घर तक क्रमशः निम्नलिखित रूप में लिखा जाय :---

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, ५० लाख पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व---।३७१।

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ५ लाख वर्ष, ३ लाख वर्ष, १ लाख वर्ष--।३७२।

९५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ६० हजार वर्ष, ५६ हजार वर्ष, ५५ हजार वर्ष, ३० हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, ३ हजार वर्ष, १ हजार वर्ष---।३७३।

७०० वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष। यह पांच भरत और पांच ऐरवत--इन दशों क्षेत्रों के कुल मिलाकर ४५० तीर्थंकर-चक्री-और वासुदेवों की आयु का प्रमाण समझना चाहिए।३७४।

चुलसीति बावत्तरि, सट्ठी पण्णास चत्त तीसा य ।
वीसा दस दो एगं च, होंति पुव्वाण लक्खाइं ।३७५।

चउरासी य बावत्तरि य, सट्ठी य होइ नायव्वा ।
तीसा दसेव एगं च, वासलक्खा मुणेयव्वा ।३७६।

पञ्चाणउइ सहस्सा, चउरासीति य पंचपण्णा य ।
तीसा दस एग सहस्सं, सयमेगं य बावत्तरिं वीरे ।३७७।

(तदेव श्रीचंद्रप्रभस्वामिपर्यन्त पुष्पदन्त [illegible])

(चतुरशीतिः द्वासप्ततिः, षष्टिः पञ्चाशत् चत्वारिंशत् त्रिंशत् ।
विंशतिः दश द्वौ एकं च, भवन्ति पूर्वाणां लक्षाणि ।३७५
चतुरशीतिश्च द्वासप्ततिश्च, षष्टिश्च भवति आनुपूर्व्या ।
त्रिंशत् दशैव एकं च, वर्षलक्षाः गुणितव्याः ।३७६।
पञ्चनवतिसहस्राः, चतुरशीतिश्च पञ्चपञ्चाशच्च
त्रिंशत् दश एक सहस्राणि, शतमेकं च द्वासप्ततिः वर्षे ।३७७।

पृथक् क्रम से तीर्थंकरों की आयु का विवरण :—

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, ६० लाख पूर्व, ५० लाख पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व —३७५

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, १ लाख वर्ष—३७६

९५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ५५ हजार वर्ष, ३० हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, १ हजार वर्ष, १०० वर्ष और भगवान् महावीर की आयु ७२ वर्ष। [illegible] आयु परिमाण ।३७७।

चउरासीदि य बाहत्तरी य पुव्वाण होंति लक्खाइं ।
[illegible] [illegible] वासाणं सय बाहत्तरि ।३७८।

([illegible])
(चतुरशीतिश्च द्वासप्ततिश्च, पूर्वाणां भवन्ति लक्षाणि ।
[illegible] वर्षाणां [illegible] ।।

पृथक् क्रम से [illegible] की आयु का विवरण —

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, [illegible] वर्ष [illegible] —३७८

१ [illegible]

से और शेष बावीस तीर्थंकर अपनी अपनी जन्म-नगरियों से महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३९०।

मल्ली पासो अरहा, सेज्जंसो चेव वासुपुज्जो य ।
पुव्वण्हे पव्वइया, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ३९१।
(मल्लिपार्श्वाऽर्हतौ, श्रेयांशश्चैव वासुपूज्यश्च ।
पूर्वाह्णे प्रव्रजिताः, शेषाः पुनः पश्चिमाह्ने ।)

तीर्थङ्करों के प्रव्रजित होने का समय—

तीर्थंकर मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य--- ये चार तीर्थङ्कर पूर्वाह्न में तथा शेष बीस तीर्थंकर मध्याह्नोत्तर काल में प्रव्रजित हुए ।३९१।

[स्पष्टीकरण--आवश्यक मलय में निम्नलिखित गाथा द्वारा पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ और मल्लिनाथ इन पांच तीर्थंकरों के पूर्वाह्न में दीक्षित होने का उल्लेख किया गया है :---]

पासो अरिट्ठनेमो, सेज्जंसो सुमति मल्लिनाथो य ।
पुव्वण्हे निक्खंता, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ।२१०।]

एगो भगवं वीरो, पासो मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं ।
भगवं पि वासुपुज्जो, छहिं पुरुस सएहिं निक्खन्तो ।३९२।
(एकः भगवान् वीरः, पार्श्वः मल्ली च त्रिभिस्त्रिभिश्शतैः ।
भगवानपि वासुपूज्यः, षड्भिपुरुषशतैः निष्क्रान्तः ।)

तीर्थंकरों के दीक्षा साथी :—

भगवान् महावीर एकाकी ही, भगवान् पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ दोनों तीन तीन सौ व्यक्तियों के साथ, भगवान् वासुपूज्य छः सौ पुरुषों के साथ महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३९२

उग्गाणं भोगाणं, राइण्णाणं च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो, सेसा उ सहस्स परिवारा ।३९३।

(उग्राणां भोगानां, राजन्यानाञ्च क्षत्रियाणाञ्च ।
चतुर्भिस्सहस्रैः ऋषभः, शेषास्तु सहस्र परिवाराः ।)

भगवान् ऋषभदेव उग्र (आरक्षक स्थानीय), भोग (गुरु स्थानीय अर्थात् संसार पक्ष में बाबू आदि की दृष्टि से बड़े होने के कारण समादर के पात्र), राजन्य (वयस्य मित्रजन), और क्षत्रिय (सामन्त आदि) इन चार वर्गों के चार हजार पुरुषों के साथ और शेष तीर्थंकर एक-एक सहस्र पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुए ।११३।

उदिय उदिय कुलवंसा, सव्वेवि य जिणवरा चउव्वीसं ।
धणकणगरयण निचए, अवउज्झिय तेउ पव्वइया ।२९४
(उदितोदित कुलवंशाः सर्वेऽपि च जिनवराश्चतुर्विंशतिः ।
धनकनकरत्ननिचयान्, अपोह्य ते तु प्रव्रजिताः ।)

उत्कृष्ट कुल और उत्कृष्ट वंश में उत्पन्न हुए सभी चौबीसों तीर्थंकर धन-धान्य-स्वर्ण और रत्नों की अति विशाल राशियों का परित्याग कर प्रव्रजित हुए ।११४।

समणगण पवर गुरुणो, भवियजण विबोहगा जिणवरिंदा ।
पंचमहव्वय जुत्ता, तवचरणुपण्णगा धीरा ।२९५
(श्रमणगणप्रवरगुरवः, भविकजन विबोधकाः जिनवरेन्द्राः ।
पंच महाव्रत युक्तास्तपश्चरणोपदेशकाः धीराः ।)

सभी तीर्थंकर श्रमणगणों के सर्वोत्कृष्ट महान् अधिनायक, भव्य जनों को प्रबुद्ध करने वाले, पांच महाव्रतों के धारक, तपश्चरण के उपदेशक और महाधीर हैं ।११५।

सीहव्व निक्खंता, सीहव्व चेव विहरिया धीरा ।
सीहेहि सीहसरिसेहिं, सीह सरिस निक्खम दणा ।२९६
(सिंहवत् निष्क्रान्ता, सिंहवत् चैव विहारिणो धीराः ।
सिंहैः सिंहसदृशैः, सिंहनिष्क्रमणं प्राप्ताः ।)

इन सब तीर्थंकरों ने सिंह के समान पराक्रमपूर्वक निष्क्रमण किया । इन धीरों ने सिंह की भाँति निर्भय हो विचरण किया और सिंहों

समान शिष्यों के साथ पुरुषसिंहों के योग्य शोभास्पद अनन्त पराक्रम को प्राप्त किया।३९६।

दंसणनाण चरित्तस्स, देसचरण निच्छयविहण्णू।
नवसुवि वासेसेवं, निक्खंताक्खायकित्ति जिणा।३९७।
(दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्य, देशचरण¹ - निश्चयविधिज्ञा।
नवस्वपि वर्षेष्वेवं, निष्क्रान्ताऽऽख्यातकीर्त्तिजिनाः।)

दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा व्यवहार और निश्चय की विधि के पूर्ण ज्ञाता विश्वविश्रुत कीर्तिशाली ९ क्षेत्रों के तीर्थंकर भी इसी प्रकार महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए।३९७।

सुमइत्थ निच्चभत्तेण, निग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेण।
पासो मल्लिच्चिय, अट्ठमेण सेसाउ छट्ठेण।३९८।
(सुमतित्थ नित्यभक्तेन, निर्गतः वासुपूज्य जिनश्चतुर्थेन।
पार्श्वः मल्ली किल, अष्टमेन शेषास्तु षष्ठेन)

तीर्थंकर का अभिनिष्क्रमण तपः—

भगवान सुमतिनाथ नित्य भक्त अर्थात् अनवरत भक्त से, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त (एक उपवास) से, पार्श्वनाथ तथा मल्लिनाथ अष्टम भक्त अर्थात् तेळे की तपस्या से और शेष बीस तीर्थङ्कर षष्ठ भक्त अर्थात् बेळे (दो उपवास) की तपस्या से अभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए।३९८।

नास्ति प्रतावपि।३९९।

[३९९ संख्या की गाथा हमारे पास की हस्तलिखितप्रति में नहीं है। पूर्वापर सम्बन्ध को देखते हुए, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता कि कोई गाथा लिपिक दोष के कारण छूट गई हो। संख्या लगाने में ही सम्भवतः कोई त्रुटि रह गई है।]

संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण-लोगनाहेण।
सेसेहिं बीय दिवसे, लद्धाउ पढमभिक्खाउ ४००।

---

१ व्यवहार

(संवत्सरेण भिक्षा, लब्धा ऋषभेण लोकनाथेन ।
शेषैर्द्वितीय दिवसे, लब्धाः प्रथमभिक्षास्तु ।)

सर्वलोकपनाथ भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष पश्चात् प्रथम भिक्षा प्राप्त की । शेष सब तीर्थंकरों ने दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन ही प्रथम भिक्षा प्राप्त की ।४००।

उसभस्स पढम भिक्खा खोयरसो आसि लोगनाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं, अमियरस रसोवमं आसि ।४०१।
(ऋषभस्य प्रथमभिक्षायामिक्षुरसमासील्लोकनाथस्य ।
शेषानां परमान्नं, अमृतरस-रसोपममासीत् ।)

लोकनाथ ऋषभदेव की प्रथम भिक्षा में इक्षुरस और शेष तेईस तीर्थंकरों की प्रथम भिक्षा में अमृतरस के समान स्वादिष्ट श्रेष्ठ पक्वान्न था ।४०१।

मल्लीपासुसभस्स, णाणं सेज्जंसवासुपुज्जस्स ।
पुव्वण्हे उप्पण्णं, सेसाणं पच्छिमण्हम्मि ।४०२।
(मल्लीपार्श्वर्षभस्य, ज्ञानं श्रेयांस वासुपूज्यस्य ।
पूर्वाह्णे तु उत्पन्नं, शेषानां पश्चिमाह्णे ।)

मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ ऋषभदेव, श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य इन पांच तीर्थंकरों को पूर्वाह्न में तथा शेष १९ तीर्थंकरों को पश्चिमाह्न में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४०२।

[समवायांग—सन्निविष्ट गाथा में निम्नलिखित गाथा द्वारा केवल भगवान् महावीर को पश्चिमाह्न में और शेष २३ तीर्थंकरों को पूर्वाह्न में केवलज्ञान की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है—

[illegible], पुव्वण्हे पच्छिमण्हम्मि वीरस्स ।१९।

ऐसी स्थिति में यह गाथा सं० ४०२ विद्वानों के लिए विचारणीय है ।]

चंदाणणे मरुदेवे य, अग्गिदत्ते य जुत्तिसेणजिणे ।
सेज्जंसे पुव्वण्हे, सेसाणं पच्छिमण्हम्मि ।४०३।[1]
(चन्द्राननमरुदेवौ च अग्निदत्तश्च द्युत्तिसेन जिनस्य ।
श्रेयांसस्य पूर्वान्हे, शेषानां पश्चिमाह्नि ।)

चन्द्रानन, मरुदेव, अग्निदत्त, युक्तिसेन और श्रेयांस (नामक पांचों ऐरवत क्षेत्रों के तीर्थंकरों) को पूर्वाह्न में और ऐरवत क्षेत्रों के शेष (६५) तीर्थंकरों को पश्चिमाह्न (अपराह्न) में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४०३।

स्पष्टीकरण—तित्थोगाळी पइन्नयकार ने कहीं स्पष्ट शब्दों में धातकी खण्ड एवं पुष्करार्द्ध द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों की चौवीसियों के तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इस गाथा में पांचों तीर्थंकरों के नामों में प्रयुक्त बहुवचन को देखकर अनुमान किया जाता है कि यदि इसमें लिपिकारों की ओर से कहीं त्रुटि नहीं की गई है तो तित्थोगाळी पइन्नयकार की मान्यतानुसार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की चौवीसी के तीर्थंकरों के समान शेष चार भरतक्षेत्रों की चार चौवीसियों के तीर्थङ्करों के नाम भी ऋषभ आदि तथा ऐरवत क्षेत्रों की पांचों चौवीसियों के तीर्थंकरों के नाम भी समान रूप से चन्द्रानन आदि थे ।]

दससुवि वासेसेवं, दस समेगं[2] तु केवली होंति ।
दस चेव धम्म तित्था, निदिट्ठा वीयरागेहिं ।४०४।
(दशष्वपि वर्षेष्वेवं, दश समेकं तु केवलिनः भवन्ति ।
दश चैव धर्मतीर्थाः, निर्दिष्टाः वीतरागैः ।)

दशों क्षेत्रों में इस प्रकार के एक साथ-एक समय में दश तीर्थंकर और दश ही धर्मतीर्थ होते हैं, यह वीतरागों ने बताया है ।४०४।

---

१ ऐरवत क्षेत्रेषूत्पन्नान् जिनानुद्दिश्यैषा गाथा प्रोक्ता ।
२ समेगं—समेकं, सार्द्धम् वा एकसमये—इत्यर्थः ।

उसभस्स पुरिमताले, बारवईये अरिट्ठनेमिस्स ।
आसमपय उज्जाणे, मल्लिस्स मणोरमे चेव ।४०५।
(ऋषभस्य पुरिमताले, द्वारवत्यामरिष्टनेमिनः ।
आश्रमपदोद्याने, मल्ल्याः मनोरमे चैव ।)

तीर्थंकरों के कैवल्योपलब्धि के स्थान :—

भगवान् ऋषभदेव को पुरिमताल उद्यान में, अरिष्टनेमि को द्वारिका के आश्रमपद उद्यान में, मल्लिनाथ को मनोरम उद्यान में ।४०५।

नाणं च वद्धमाणस्स, उज्जुवाली नदीए तीरंमि ।
सेसाणं सव्वेसिं, जेसुज्जाणेसु निक्खंता ।४०६।
(ज्ञानं च वर्द्धमानस्य, ऋजुपालीनदीतीरे ।
शेषानां सर्वेषां, येषु उद्यानेषु निष्क्रान्ताः ।)

भगवान् वर्द्धमान को ऋजुबालुका नदी के तट पर और शेष तीर्थंकरों को उन्हीं उद्यानों में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ जिनमें कि वे दीक्षित हुए थे ।४०६।

चउवीसइ धणुइं, चेइयरुक्खो उ वद्धमाणस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा, सरीरओ बारस गुणाउ ।४०७।
(चतुर्विंशतिः धनूंषि चैत्य वृक्षस्तु वर्द्धमानस्य ।
शेषानां पुनर्वृक्षाः शरीरतः द्वादशगुणास्तु ।)

चैत्य वृक्षों की ऊंचाई :—

भगवान् महावीर के चैत्य वृक्ष की ऊंचाई २४ धनुष और शेष तीर्थंकरों के चैत्य वृक्षों की ऊंचाई उनके शरीर की ऊंचाई से बारह गुणित थी ।४०७।

नग्गोह सत्तवन्ने साले पियए पियंगु छत्ताहे य ।
सिरिसे य नागे, मालू पियक्खू य ।४०८।
(न्यग्रोधः सप्तपर्णः शालः प्रियकः प्रियंगुश्छत्राभः ।
शिरीषः नागः मालुः प्रियक्षुश्च ।)

तीर्थंकरों के कैवल्यवृक्ष :—

ऋषभादि महावीरान्त चौवीस तीर्थंकरो को क्रमशः निम्न-लिखित वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ :—

न्यग्रोध (१), सप्तपर्ण (२), शाल (३), प्रियक अथवा प्रियाल (४), प्रियंगु (जामुन) (५), छत्राभवृक्ष (६), शिरीष (७), नाग (८), मालू (मल्लीवृक्ष) (९), पिलङ्खु (१०)---।४०८।

तिंदू य पाडलि जंबू य, आसत्थे तह य होइ दहिवण्णे ।
तत्तो नंदी रुक्खे, तिल पव्वए असोगे य ।४०९।
(तिन्दुकः पाटलः जंबुश्च, अश्वत्थस्तथा च भवति दधिपर्णः ।
ततः नान्दिवृक्षः, तिल (पिलङ्खु) पर्वतकोऽशोकश्च ।)

तिन्दुक (११), पाटली (१२), जम्बू (१३), अश्वत्थ (१४), दधिपर्ण (१५), नन्दी (१६), तिल---(पिलङ्खु) (१७), आम्र (१८), अशोक (१९)---।४०९।

चम्पग वउले वेडस, धावोडग सालतेयए चेव ।
णाणुप्पया य रुक्खे, जिणेहिं एते अणुग्गहिया ।४१०।
(चम्पकवकुले वेतस,-धावोडक[1] सालतेजकश्चैव ।
ज्ञानोत्पादाच्च वृक्षाः, जिनै एते अनुगृहीताः[2] ।)

चम्पक (२०), वकुल (वकुश) (२१), वेतस (२२), धावडक (धातकी) (२३) और शाल तेजक (२४)। इन वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकरों ने इन्हें (विश्वविख्यात वना) अनुगृहीत किया ।४१०।

णाणुप्पयाय मासा, फग्गुण पोसे य कत्तिये पोसे ।
चेत्ते२ चेत्ते२ फग्गुण२, चेत्ते य वइसाहे य ।४११।

---

१ धातकी ।

२ एतेषां वृक्षाणामधस्तात् ऋषभादिमहावीरान्तैश्चतुर्भिस्तीर्थङ्करैः केवल-ज्ञानमुत्पादितमत एवैतेऽनुगृहीता इत्यर्थः ।

सुद्धो बहुलो सुद्धो य, तिन्नि बहुले य सुद्ध बहुलदुगं ।
सुद्धो य पक्खा एते, एत्तो दिवसा पवक्खामि ।४१४।
(शुद्धः बहुलः शुद्धश्च, त्रयो बहुलाश्च शुद्धः बहुलद्विकम् ।
शुद्धश्च पक्षा एते, इतः दिवसान् प्रवक्ष्यामि ।)

शुक्ल (१५), कृष्ण (१६), शुक्ल (१७), कृष्ण (१८), कृष्ण (१९), कृष्ण (२०), शुक्ल (२१), कृष्ण (२२), कृष्ण (२३), और शुक्ल (२४) – ये पक्ष हैं । अब तीर्थङ्करों के केवलज्ञान लाभ की तिथियों का कथन करूंगा ।४१४।

एक्कारसि एक्कारसि, पंचमी चाउद्दसी य एक्कारसी ।
पूनिम छट्ठी पंचमि, तह सत्तमि नवमी ।४१५।
(एकादशी एकादशी, पंचमी चतुर्दशी च एकादशी ।
पूर्णिमा षष्ठी पंचमी, तथा सप्तमी नवमी ।)

एकादशी (१), एकादशी (२) पंचमी (३), चतुर्दशी (४), एकादशी (५), पूर्णिमा (६), छठ (७), पंचमी (८), सप्तमी (९), नवमी (१०)--।४१५।

बारसि सत्तमि अट्ठमी, एक्कारसी सत्तमी त (च) तियवारा ।
एक्कारसि य अट्ठमि, एक्कारसी तह य वामासा ।४१६।
(द्वादशी सप्तमी अष्टमी, एकादशी सप्तमी त्रि (चतुः) वारान् ।
एकादशी च अष्टमी, एकादशी तथा चामावस्या ।)

द्वादशी (११), सप्तमी (१२), अष्टमी (१३), एकादशी (१४), सप्तमी (१५), सप्तमी (१६), सप्तमी (१७), [इस गाथा के द्वितीय चरण के अंतिम शब्द 'ततियवारा' को यदि पूरी २४ तिथियों की पूर्ति हेतु 'चतियवारा' पढा जाय तो--सप्तमी (१८),] एकादशी (१९), अष्टमी (२०), एकादशी (२१), अमावस्या (२२)---४१६।

तत्तो चउत्थि दसमी, कमेण नाणुप्पया एते ।
वेलाए काए नाणं, कस्सुपन्नं इमं सुणसु ।४१७।

पार्श्वनाथ को पूर्वाह्न में तथा शेष तीर्थंकरों को अपराह्न में केवल-ज्ञान प्रकट हुआ।४१८।

[स्पष्टीकरण---यह गाथा परिवर्तित स्वरूप में पुनः दे दी गई है। देखिये गाथा संख्या ४०२ और उसका स्पष्टीकरण]

जे चेव जम्मरिक्खा, नाणुपत्तीए होंति ते चेव ।
भणिया रिक्खा एत्तो, वोच्छामि तवं समासेण ।४१९।
(ये चैव जन्मऋक्षाः ज्ञानोत्पत्तेः भवन्ति ते चैव ।
भणिताः ऋक्षा इतः वक्ष्यामि तपो समासेन)

तीर्थंकरों के जन्मनक्षत्रों और ज्ञानोत्पत्ति के नक्षत्रों का कथन कर दिया गया अब उनके केवलज्ञानोत्पत्ति के तप का संक्षेपतः कथन करूंगा।४१९।

उसभस्स अट्ठमेणं, चउभत्तेण वासुपूज्जस्य ।
केवलनाणुप्पत्तीः, सेसाणं छट्ठभत्तेण ।४२०।
(ऋषभस्याष्टमेन, चतुर्भक्तेन वासुपूज्यस्य ।
केवलज्ञानोत्पत्तीः, शेषानां षष्ठभक्तेन ।)

तीर्थंकरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय के तप :---

भगवान् ऋषभदेव को अष्टमभक्त (तेळे) के तप में, भगवान् वासुपूज्य को चतुर्थभक्त (१ उपवास) के तप में और शेष इकवीस तीर्थंकरों को षष्ठभक्त अर्थात् वेळे के तप में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई।४२०।

[स्पष्टीकरण :---आवश्यक मलय और सत्तारिसय गण की एतद्विषयक यह गाथा द्रष्टव्य है :---

"अट्ठमभत्तंमि कए, नाणमुसहमल्लि नेमि पासाणं ।
वसुपुज्जस्स चउत्थे, सेसाणं छट्ठभत्ततवे ॥"

श्वेताम्बर परम्परा में तीर्थंकरों के केवलज्ञानतप के सम्बन्ध में यही मान्यता आज प्रचलित है। पूर्व में रहे यत्किंचित् मान्यताभेद

की जो आशंका हमने गाथा संख्या ४१७ के स्पष्टीकरण में व्यक्त की है, उस आशंका की इस गाथा से पुष्टि होती है।)

उप्पण्णंमि अणंते, नट्ठंमि य छाउमत्थिए नाणे।
तो देव दाणविंदा, करेंति पूयं जिणिंदाणं ॥४२१॥
(उत्पन्ने अनन्ते, नष्टे च छाद्मस्थिके ज्ञाने।
ततः देवदानवेन्द्राः, कुर्वन्ति पूजां जिनेन्द्राणाम् ॥)

अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) के उत्पन्न होने और छाद्मस्थिक ज्ञान के नष्ट हो जाने पर तीर्थंकरों की देवेन्द्र तथा दानवेन्द्र पूजा करते हैं ॥४२१॥

भवणवई वाणमन्तर, जोइसवासी विमाणवासी य।
सव्विड्ढीए सपरिसा, कासी नाणुप्पायमहिमं ॥४२२॥
(भवनपतिः वानमन्तर, ज्योतिषवासी विमानवासी च।
सर्वर्द्ध्या सपरिषदः, अकार्षुः ज्ञानोत्पादे महिमाम् ॥)

भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिष-मण्डल एवं विमानों में निवास करने वाले देव-देवेन्द्र ने अपनी समस्त ऋद्धि और परिषदों सहित केवलज्ञान की उत्पत्ति की महिमा की ॥४२२॥

मणि कणग-रयण चित्तं, भूमिभाग समंतओ सुरभिं।
आजोयणंतरेणं, करेंति देवा विचित्तं तु ॥४२३॥
(मणि-कनक-रत्नचित्रं, भूमिभागं समन्ततः सुरभिं।
आयोजनान्तरेण, कुर्वन्ति देवाः विचित्रं तु ॥)

केवलज्ञानोत्पत्ति के स्थान के चारों ओर एक योजन भूमि को देवों ने स्वर्ण, मणियों तथा रत्नों से चित्रित, सुगन्धियों से सुगन्धित और अद्भुत बना दिया ॥४२३॥

मणिकणगरयण चित्तं, समंतओ तोरणा वि दीसंति।
कुसुम सलिलवरिसं, वत्थवरिसं वंदए ॥४२४॥

(मणि-कनक-रत्न चित्राणि, समन्ततः तोरणानि विकुर्वन्ति ।
सछत्र-शालिभंजिक, मकरध्वजचिह्नसंस्थानानि ।)

वे देवगण उस भूमि के चारों ओर स्थान स्थान पर छत्रों पुत्तलिकाओं तथा कामदेव की आकृतियों से युक्त, तथा स्वर्ण-मणि-रत्नों से निर्मित एवं चित्रित तोरणद्वारों की रचना करते हैं ।४२४।

विंट ठाइं सुरभिं, जलथलयं दिव्व कुसुमनीहारिं ।
पयरेंति समंतेणं, दसद्धवन्नं कुसुमवासं ।४२५।
(वृन्तस्थां सुरभिं, जलस्थलजं दिव्यकुसुमनिर्हारिम् ।
प्रकुर्वन्ति समन्ततः, दशार्द्ध वर्णां कुसुमवर्षाम् ।)

वे आभियोगिक देव पाँच वर्णों के पुष्पों की वर्षा करते हुए एक योजन पर्यन्त उस समवसरण-भूमि को, जल और स्थल दोनों ही प्रकार के प्रदेशों में उत्पन्न हुए वृन्तों (डंठलों)पर पत्तों के ऊपरी भाग में स्थित (तरोताजा) परम सुगन्धित दिव्य कुसुमों की निर्हारी बना देते हैं अर्थात् दिव्य कुसुमों की अनुपम सुगन्ध से समस्त वायु-मण्डल सम्पूर्ण वातावरण को गमका (महका) देते हैं ।४२५।

तत्तोय समंतेणं, कालागुरुकुंदुरुक्कमीसेणं ।
गंधेण मणहरेणं, धूवघडीओ विउव्वंति ।४२६।
(ततश्च समन्ततः, कालागुरु-कुंदुरुकमिश्रेण ।
गन्धेन मनोहरेण, धूपघटिकाः विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर आभियोगिक देवगण चारों ओर कृष्णागरु एवं कुन्दुरुक्क मिश्रित मनोहर सुगन्धित गन्धचूर्णों की (प्रत्येक द्वार पर तीन तीन) धूप घटिकाओं (धूपपात्रों) को सजा उन्हें प्रदीप्त करते हैं ।४२६।

उक्किट्ठ सीहनाए, कलयलसद्दयं सव्वओ सव्वं ।
तित्थगर-पायमूले, करेंति देवा निवयमाणा ।४२७।
(उत्कृष्ट सिंहनादान्, कलकल शब्दं च सर्वतः सर्वे ।
तीर्थंकर-पादमूले, कुर्वन्ति देवाः निपतमानाः ।)

रत्नमय आभ्यन्तर प्राकार के मध्य भाग में (बीचों-बीच) चैत्यवृक्ष अर्थात् अशोकवृक्ष, उसके नीचे सर्वरत्नमय पीठ अर्थात् विशाल मंच, पीठ के ऊपर और अशोकवृक्ष के नीचे देवच्छंदक, देवच्छंदक में स्फटिक पादपीठ सहित सिंहासन, सिंहासन के ठीक ऊपर छत्रत्रयी, उसके दोनों पार्श्व में दो यक्षों के हाथों में दो चामर और धर्मचक्र आदि के अन्य जो जो करणीय कार्य हैं, उन्हें वानमन्तर (व्यन्तर) सम्पन्न करते हैं।४३१।

सूरुदय पच्छिमाए, ओगाहंतीए पुव्वओ एइ।
दोहि पउमेहिं पाया, मग्गेण य होंति सत्तन्ने।४३२।
(सूर्योदये [प्रथमायां या] पश्चिमायां [पौरुष्यां] अवगाहमानायां पूर्वत एति।
द्वयोः पद्मयोः पादौ, मार्गतश्च भवन्ति सप्तान्ये।)

देवों द्वारा समवसरण की रचना सम्पन्न होने पर सूर्योदय के पश्चात् सामान्यतः प्रथम पौरुषी और कभी विशेष स्थिति में पश्चिम पौरुषी की वेला में तीर्थंकर भगवान् देवताओं द्वारा निर्मित दो पद्मों पर अपने चरण कमल रखत हुए पूर्व द्वार से प्रवेश करते हैं। उनके पीछे सात अन्य पद्म और रहते है। भगवान् के पदन्यास के पूर्व ही अन्तिम दो पद्म देवताओं द्वारा भगवान् के चरणों के नीचे रख दिये जाते हैं।४३२।

आयाहिणपुव्वमुहो, तिदिसिं पडिरूवगाउ देवकया।
जिट्ठ गणीअण्णो वा, दाहिण पासे अदूरम्मि।४३३।
(आदक्षिणं पूर्वमुखः त्रिदिशं प्रतिरूपकास्तु देवकृताः।
ज्येष्ठगणी अन्यो वा, दक्षिण पार्श्वे अदूरे।)

तदनन्तर प्रभु अशोकवृक्ष की प्रदक्षिणा कर पूर्व की ओर मुख किये सिंहासन पर विराजमान होते हैं। शेष तीनों दिशाओं में देवों द्वारा निर्मित सिंहासनादि सहित प्रभु के प्रतिरूप प्रादुर्भूत होते हैं। भगवान् के पादपीठ के पास ही उनके ज्येष्ठ अथवा अन्य गणधर प्रभु को प्रणाम कर दक्षिण पूर्व दिग्भाग में बैठते हैं।४३३।

जे ते देवेहिं कया, तिदिसिं पडिरूवगा जिणिंदाणं ।
तेसिं पि तप्पभावा, तयाणुरूवं हवइ रूवं ।४३४।
(यानि तानि देवैः कृतानि, त्रिदिशं प्रतिरूपकाणि जिनेन्द्राणाम् ।
तेषामपि तत् प्रभावात् तदनुरूपं च भवति रूपम् ।)

तीर्थंकरों के अलौकिक प्रभाव के कारण देवों द्वारा निर्मित तीर्थंकरों के उन [illegible] तीन [illegible] पर भी [illegible] अनुरूप ही रूप होता है ।४३४।

सीहासणे निसन्ना, रत्तासोगस्स हिट्ठ धीरा ।
सक्का महेसजाले, गेण्हंति सयं तु [illegible] ।४३५।
[सिंहासने निषण्णाः रक्ताशोकस्याधस्तात् धीराः ।
शक्राः महेशजालानि, गृह्णन्ति स्वयं तु [illegible] ।]

रक्ताशोक के नीचे सिंहासन पर धीर-वीर तीर्थंकर विराजमान होते हैं । स्वयं इन्द्र [illegible] [illegible] हाथों में [illegible] [illegible] है ।४३५।

दोण्णि य चामराइं, वेरुलियमणिमयाइं दंडेहिं ।
ईसाणो सक्क सह [य] धरेंति ते जिणवरिंदाणं ।४३६।
(द्वे स्तः चामरे, वैडूर्यमणिमयदण्डैः ।
ईशानः शक्र [इन्द्र] सहितः, धारयन्ति तानि जिनवरेन्द्राणाम् ।)

ईशानेन्द्र और [illegible] [illegible] हाथों में [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] है ।४३६।

[illegible], [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।४३७।
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।

(पूर्वद्वारमागच्छन्ति, अतिसुन्दरेण द्वारेण दक्षिणिल्लेन।
भवनपतिवानमन्तर, ज्योतिष्कानां च देव्यः।)

भवन पति, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की देवियां अतिसुन्दर दक्षिणी द्वार से पूर्व द्वार की ओर आती हैं।४४२।

जे भवणवई देवा, अवरद्दारेण तेउ पविसंती।
तेणं चिय जोइसिया, देवा दइया जणसमग्गा।४४३।
(ये भवनपति-देवाः, अपरद्वारेण ते तु प्रविशन्ति।
तेनैव हि ज्योतिष्काः, देवाः दयिताः जनसमग्राः।)

जो भवनपति देव हैं, वे पश्चिमी द्वार से समवसरण में प्रवेश करते हैं। उसी पश्चिमी द्वार से ज्योतिष्क देव और सभी नर-नारीगण प्रवेश करते हैं।४४३।

एक्केकिय दिसाए, तिगं तिगं होइ संनिविट्ठं तु।
आइचरिमे विमिस्सा, थी पुरिसासेसपत्तेयं।४४४।
(एकैकस्यां दिशायां, त्रिकं त्रिकं भवति सन्निविष्टं तु।
आद्ये चरमे विमिश्राः, स्त्री पुरुषा शेष प्रत्येकम्।)

उपर्युक्त पूर्व-दक्षिण आदि चारों दिशाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन वर्ग एकत्र होते हैं। जिस प्रकार पूर्व-दक्षिण दिशा में (१) संयतों का वर्ग, (२) वैमानिक देवियों का वर्ग तथा (३) श्रमणी वर्ग। दक्षिण-पश्चिम दिशा में—(१) भवनवासी देवों की देवियों का वर्ग, (२) ज्योतिष्क देवों की देवियों का वर्ग एवं (३) व्यन्तर देवों की देवियों का वर्ग। पश्चिमोत्तर दिशा में (१) भवनपति, (२) ज्योतिष्क तथा (३) व्यन्तर—ये तीन देवो के वर्ग और उत्तर-पूर्व दिशा में (१) वैमानिक देवों का वर्ग, (२) मनुष्यों का वर्ग तथा मनुष्यों की स्त्रियों का वर्ग। इनमें से पहले और चौथे इन दो त्रिकों में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही होते हैं। जब कि दूसरे त्रिक में केवल स्त्रियां और तीसरे वर्ग में केवल पुरुष ही होते हैं।४४४।

एंतं महिड्ढियं, पणिवयंति ठियमवि वयंति पणमंता।
ण वि जंतणा, न विकहा न परोप्पर मच्छरो न भयं।४४५।

(एतेँ महर्द्धिकं प्रणिपतन्ति, स्थितमपि प्रहन्ति प्रणमन्तः ।
नापि यंत्रणा, न विकथा न परस्पर मात्सर्यं न भयम् ।)

समवसरण में पहले आकर बैठे हुए अल्प ऋद्धि वाले देव मनुष्यादि पीछे से आने वाले महर्द्धिक देवों को जाते हुए देख कर नमस्कार करते और जो अल्पर्द्धिक बाद में आते हैं वे समवसरण में पहले से बैठे हुए महर्द्धिकों को प्रणाम करते हुए अपने स्थान की ओर बढ़ते हैं। समवसरण में उपस्थित हुए प्राणियों को परस्पर न किसी प्रकार की यंत्रणा ही होती है न किसी प्रकार का मात्सर्य और भय ही। समवसरण में उपस्थित हुए देव, तिर्यञ्च, मनुष्य एक दूसरे की किसी प्रकार की विकथा नहीं करते ॥८०॥

बीअंमि होंति तिरिया, तइए पागारमंतरेण जाणा ।
पागार अट्टे तिरिया वि हुंति पत्तेय मिस्सा वा ॥४९६॥
(द्वितीये भवन्ति तिर्यञ्चः, तृतीये प्रकारान्तरेण यानाः ।
[illegible]

अपरिग्रह रूपी चातुर्याम धर्म में ही पांचों महाव्रतों का पूर्णतः पालन करते हैं। यही कारण है कि तीर्थंकरों ने अपने-अपने शासनकाल के साधुओं की प्रकृति एवं प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए पंचमहाव्रत और चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा का। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पृथकतः उपदेश नहीं करते तो प्रथम तीर्थंकर के ऋजु-जड़ प्रकृति के साधु "प्रभु ने चार महाव्रतों के पालन का ही उपदेश दिया है"—यह कह कर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन नहीं करते। अन्तिम तीर्थंकर के साधु भी अपनी अऋजु और कदाग्रही प्रकृति के कारण—"यदि प्रभु को पांचों महाव्रत अभिप्रेत होते तो स्पष्टतः पृथकतः उन पाँचों का उल्लेख करते"—इस प्रकार के अनेक तर्क प्रस्तुत कर ब्रह्मचर्य महाव्रत को छोड़ केवल शेष चार महाव्रतों का ही पालन करते।

इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर अपने साधुओं को छेदोपस्थापन (पूर्व-पर्याय को छेद कर अपनी आत्मा को पंचम महाव्रत रूपी चारित्र में उपस्थापन करने) का उपदेश करते हैं। छेदोपस्थापन का स्वरूप निम्नलिखित गाथा में नपे तुले शब्दों में स्पष्टतः बताया गया है—

छेत्तूण तु परियायं, पोराणं तो उवित्ति अप्पाणं।
धम्मम्मि पंच जामे, छेओवट्ठावणे स खलु ॥]

एवं नवसुवि खेत्तेसु, पुरिमपच्छिममज्झिम जिणाणं।
वोच्छं गणहरसंखं, जिणाणं नामं च पढमस्स ।४५१।
(एवं नवस्वपि क्षेत्रेषु, पुरिम-पश्चिम-मध्यम जिनानाम्।
वक्ष्ये गणधर संख्यां, जिनानां नाम च प्रथमस्य[1] ।)

इस प्रकार शेष ९ क्षेत्रों में भी प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनकाल में साधुओं का छेदोपस्थापन व्रत रूप धर्म अथवा कल्प और मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के साधुओं का चातुर्याम धर्म होता है। अब मैं तीर्थंकरों के नाम, उनके गणधरों की संख्या तथा उनके प्रथम गणधरों के नाम का कथन करूँगा।४५१।

---

१ गणधर संख्यां जिनानां नामं, तेषां प्रथम गणधरस्य नामं च वक्ष्यामीत्यर्थः।

उसभजिणे चुलसीतिं, गणहर उसभसेण आदी(ए)-या ।
अजिय जिणिंदे नउति, तु सीहसेणो अत्थ आदी ।४५२।
(ऋषभजिनस्य चतुरशीतिः गणधरा ऋषभसेनाद्याः ।
अजितजिनेन्द्रस्य नवतिः तु सिंहसेनः अत्रादिः ।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे, जिनमें ऋषभसेन प्रथम अथवा मुख्य गणधर थे। दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के ९० गणधर थे। उनमें प्रमुख प्रथम गणधर, प्रमुख प्रथम गणधर का नाम था सिंहसेन ।४५२।

चारू य संभव जिणे, पंचाणउइं तीय गणहरा तस्स ।
पढमो य वज्जनाभो, अभिनंदण जिणवरिंद सयं तु ।४५३।
(चारुश्च संभवजिनस्य, पंचनवतिस्य गणधराः तस्य ।
प्रथमश्च वज्रनाभोऽभिनन्दनस्य शताधिकं तु ।)

तीसरे तीर्थंकर भगवान् संभवनाथ के ९५ गणधर थे। उनमें प्रमुख गणधर का नाम था चारु। चौथे जिनेश्वर अभिनन्दन के १०१ गणधर थे। उनमें प्रमुख गणधर का नाम वज्रनाभ था ।४५३।

सोलसयं सुमइस्स उ, चमरो तिय पढम गणहरो तस्स ।
छट्ठो य पउमजिणे सत्तहियसयं गणहराणं ।४५४।

(षोडशशतं सुमतेस्तु, चमरः किल प्रथमगणधरस्तस्य ।
सुज्जश्च सु(पद्मा)प्रभजिनस्य शतमेकं गणधराणाम् ।)

पांचवें तीर्थंकर सुमितनाथ के ११६ गणधर थे और उनमें प्रमुख थे चमर। छठे तीर्थंकर सुप्रभ पद्मप्रभ के १०१ गणधरों में सुज्ज प्रमुख गणधर थे ।४५४।

होइ सुपासेवियब्भो,[1] पंचाणवतीय गणहरा तस्स ।
दिण्णो य पढमसिस्सो, तेनउई होंति चंदाभे (चन्दप्पभे) ।४५५।
(भवति सुपार्श्वस्य विदर्भः. पंचनवतिश्च गणधरास्तस्य ।
दिन्नश्च[2] प्रथमशिष्यः, त्रिनवतिः भवन्ति चन्द्रप्रभे ।)

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व के ९५ गणधर थे, उनमें प्रमुख विदर्भ और आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के ९३ गणधरों में प्रमुख एवं प्रथम गणधर दिन्न थे ।४५५।

सुविहिजिणे वाराहो,[3] चुलसीति[4] गणहरा भवे तस्स ।
नंदो य सीयलजिणे, एक्कासीति मुणेयव्वा ४५६।
(सुविधिजिनस्य वाराहः, चतुरशीतिः गणधरा भवेयुस्तस्य ।
नन्दश्च शीतलजिनस्य, एकाशीतिः मुनेतव्या ।)

९ वें तीर्थंकर सुविधिनाथ के ८४ गणधर थे, उनमें प्रथम गणधर का नाम था वराह। १० वें तीर्थंकर शीतलनाथ के ८१ गणधर और उनमें प्रथम गणधर का नाम नन्द जानना चाहिए ।४५६।

---

१ दिगम्बरपरम्परायाः हरिवंशपुराणे बलो, तिलोयपन्नत्तौ च बलदत्त इति नामोल्लेखः।

२ तिलोयपन्नत्तौ तु वेदर्भ-इत्युल्लेखोऽस्ति ।

३ तिलोय पण्णत्तौ नागः हरिवंशपुराणे च विदर्भेत्युल्लेखा श्वेताम्बर परम्परायां ग्रन्थेषु 'वराह' एव ।

४ समवायांगे षडशीतिः; किन्तु श्वेताम्बर दिगम्बर परम्परोभययोरन्यान्यसर्वग्रन्थेषु सुविधेर्गणधराणां संख्या ८८ ।

सेज्जंसे सत्तत्तरि, पढमो सिस्सो य गोथुभो होइ।
छावट्ठी य सुभूमो बीयस्सो वासुपुज्जस्स ॥४५७॥
[श्रेयांसस्य सप्तसप्ततिः, प्रथमः शिष्यश्च गोस्तुभ भवति।
षट्षष्टिश्च सुभूमः बीतस्य वासुपूज्यस्य।]

११ वें तीर्थंकर श्रेयांस के ७७ गणधर थे। उनमें प्रमुख गणधर का नाम गोत्थुभ था। १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य के ६६ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम सुभूम समझना चाहिए।४५७।

विमलजिणे छप्पन्ना गणहर पढमो मंदरो होई।
पण्णासाणंत जिणे, पढमसिस्सो जसो नाम ॥४५८॥
[विमलजिने षट्पंचाशत्, गणधराः प्रथमः मन्दरो भवति।
पंचाशत् अनंत जिनस्य, प्रथम शिष्यः यशो नाम।]

* पासस्स अज्जदिण्णो,[1] पढमो अट्ठेव[2] गणहरा सहिया ।
जिणवीरं एक्कारस, पढमो से इंदभूई उ ।४६४।
(पार्श्वस्यार्य दिन्नः, प्रथमोऽष्टावेव गणधराः सहिताः ।
जिन-वीरस्यैकादश, प्रथमः स इन्द्रभूतिस्तु ।)

२३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के कुल ८ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम आर्य दिन्न था। और २४ वें तीर्थंकर वीर (महावीर) के ११ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम इन्द्रभूति था ।४६४।

गणहर संखा भणिया, जं नामो पढम गणहरो जस्स ।
एत्तो सिस्सिणी नामा, उसभादीणं तु वोच्छामि ।४६५।
(गणधर संख्या भणिता, यन्नामा प्रथम गणधरः यस्य ।
इतः शिष्या नामानि, ऋषभादीनान्तु वक्ष्यामि ।)

चौवीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या और जिन जिन तीर्थंकरों के जिस जिस नाम के प्रथम गणधर थे उनका कथन किया गया। अब मैं ऋषभादि चौवीसों तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याओं के नाम का कथन करूंगा ।४६५।

* उसभस्स होइ बंभी, फग्गू[3] अजियस्स सम्भवस्स सामा[4] ।
अभिनंदणस्स अजिया,[5] कासवी[6] सुमति जिणिंदस्स ।४६६।

---

* त्रिषष्ट्यधिक चतुशंता गाथा प्रतौ नास्ति । गाथांकलेखने लिपिक-प्रमादात् त्रुटिः संजाता प्रतीयते ।

१ समवायांगे तथा श्वेताम्बरपरम्परायाः इतरग्रन्थेषु पार्श्वस्य प्रथम गणधर 'अज्ज दिन्न' (आर्यदत्तः) आसीदिति निर्विवादोल्लेखः विद्यते किन्तु दिगम्बर परम्परायाः 'हरिवंशपुराणे' तिलोयपन्नत्तौ च पार्श्वस्य प्रथम गणधरः 'स्वयंभुः' नाम्नाख्यातः ।

२ समवायांगे पार्श्वजिनस्य गणधराणां संख्या तावदष्ट निर्दिष्टा किन्तु श्वेताम्बर-दिगम्बरोभयपरम्परयोरितरग्रन्थेष्वेषा संख्या दशः समुल्लिखितास्ति ।

* दिगम्बरपरम्परायाः मान्य ग्रन्थेषु यथा तिलोयपन्नत्तौ हरिवंश-पुराणे, उत्तरपुराणे च प्रथम-षष्ठ,-द्वाविंशति-चतुर्विंशतितम जिनानां प्रथम शिष्यानामानि तान्येव समुल्लिखितानि सन्ति यानि श्वेताम्बरपरम्परायाः आगमेष्वथवा ग्रन्थेषु तथा प्रस्तुत ग्रन्थे चोपलभ्यन्ते । शेष विंशति जिनप्रमुखशिष्यानामानि तु पूर्णतः भिन्नान्येव । यथा

३ अकुब्जा ४ धर्मश्री वा धर्मार्या ५ मेरुषेणा—मरुषेणा वा ६ अनन्ता

(ऋषभस्य भवति ब्राह्मी, फल्गु अजितस्य सम्भवस्य श्यामा ।
अभिनन्दनस्य अजिता, काश्यपी सुमतेः जिनेन्द्रस्य ।)

ऋषभदेव की प्रथम शिष्या ब्राह्मी, अजितनाथ की फल्गु थी, सम्भवनाथ की श्यामा, अभिनन्दन की अजिता और सुमतिनाथ की काश्यपी थी ।५६६।

पउमप्पहस्स उ रती, सोमा[1] सुपासस्स पढम सिस्सीणी य ।
चंदप्पहस्स सुमणा,[2] वारुणि[3] सुविहिस्स जेट्ठज्जा ।५६७।
(पद्मप्रभस्य तु रतिः, सोमा सुपार्श्वस्य प्रथम शिष्या च ।
चन्द्रप्रभस्य सुमना, वारुणी सुविधेः ज्येष्ठार्या ।)

पद्मप्रभ की प्रथम शिष्या रति और सुपार्श्व की सोमा थी । चन्द्रप्रभ की सुमना और सुविधिनाथ की प्रथम शिष्या वारुणी थी ।५६७।

सीयल जिणस्स सुल (सा) सा,[4] सेज्जंसजिणस्स धारिणी[5] पढमा ।
धरणी[6] य वासुपुज्जे, धरा[7] य विमलस्स जेट्ठज्जा ।५६८।
(शीतल जिनस्य सुलसा, श्रेयांसजिनस्य धारिणी प्रथमा ।
धरणी च वासुपूज्यस्य, धरा च विमलस्य ज्येष्ठार्या ।)

शीतलनाथ तीर्थंकर की प्रथम शिष्या सुलसा और श्रेयांस-नाथ की धारिणी थी । वासुपूज्य की प्रथम शिष्या का नाम धरणी तथा विमलनाथ की प्रमुख शिष्या का नाम धरा था ।५६८।

पउमा[1] अणंतइ जिणे, सिवा[2] य धम्मे सुतीय[3] संतिस्स ।
कुंथुस्स दामिणि[4] खलु, जेठज्जा रक्खी[5] य अरस्स ।४६९।
(पद्मा अनन्त-जिनस्य, शिवा च धर्मस्य श्रुती च शान्तेः ।
कुंथोः दामिनी खलु, ज्येष्ठार्या रक्खी च अरस्य ।)

भगवान् अनन्तनाथ की प्रथम शिष्या पद्मा, भ० धर्मनाथ की शिवा, शान्तिनाथ की श्रुती, कुंथुनाथ की दामिनी और अरनाथ की रक्षी थी ।४६६।

बंधुमती[6] मल्लिस्सस, मुणिमुव्वय-जिणवरस्स पुप्फवती ।[7]
अणिला[8] य नमि जिणिंदे, जक्खिणी[9] तह रिट्ठनेमिस्स ।४७०।
(बन्धुमती मल्ल्याश्च, मुनिसुव्रतजिनवरस्य पुष्पवती ।
अनिला च नमिजिनेन्द्रस्य, यक्षिणी तथा अरिष्टनेमिनः ।)

मल्लिनाथ की प्रथम शिष्या वन्धुमती, मुनिसुव्रत की पुष्पतवी नमिनाथ की अनिला और भगवान् अरिष्टनेमि की यक्षिणी थी ।४७०।

पासस्स पुप्फचूला, वीर जिणिंदस्स चंदणज्जाउ ।
एया पढमावक्खाया, (सव्व जिणाण) भिस्सिणीओ ।४७१।

---

१ दिगम्बरपरम्परायां सर्वश्री ।
२ दिग० पर० सुव्रता ।
३ प्रवचन सारोद्धारे 'सुहा' । दिगम्बर परम्परायाः ग्रन्थेषु 'हरिषेना' ।
४ समवायांगे 'अंजुया' प्रवचनसारोद्धारे सत्तरिसय द्वारे च दामणी-दामिणी वा । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु भाविता ।
५ 'हरिवंशपुराणे' कुंतुसेना, 'तिलोयपन्नत्तो' कुंथुसेना तथा 'उत्तर-पुराणे' च यक्षिला ।
६ तिलोय पन्नत्तो हरिवंशपुराणे च 'मधुसेना', उत्तारपुराणे वन्धुषेणा ।
७ ति० पन्नत्तो, हरि० पुराणे 'पूर्वदत्ता' तथोत्तारपुराणे 'पुष्पदन्ता' ।
८ समवायांगे अमिला, प्रव. सारोद्धारे सत्त. द्वारे च 'अनिला' । दिगम्बरपरम्परायां तु मार्गिणी मंगिनी वा ।
९ समवायांगे 'यक्षिणी', प्र. सारोद्धारे, सत्त. द्वारे च 'जक्खदिन्ना' । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु 'यक्षी:' 'यक्षिणी' वा ।

(पार्श्वस्य पुष्पचूला, वीरजिनेन्द्रस्य चन्दनार्या तु ।
एताः प्रथमा गणधारा (सर्वे जिनानां) शिष्यास्तु ।)

भगवान् पार्श्वनाथ की पुष्पचूला और म. वीर की आर्या चन्दना प्रथम शिष्या थी । ये चौबीसों तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याएं प्रसिद्ध हैं ।४६७।

तित्थगराणं सीसे, चोद्दसवि पुव्वहरस परिसीए ।
ताव जो वंदि पुरे, अतिति पडिमावगे जदा ।४६८।
(तीर्थंकराणां शिष्यान्, चतुर्दशापि पूर्वधरपरिषीदान ।
तथा यः वन्दितुं पुरे अतीतान् पितृमातरः जया ।४६८।)

अब मैं तीर्थंकरों के चतुर्दश पूर्वियों द्वारा संस्तुत शिष्यों, तीर्थंकरों के समय के राजाओं तथा तीर्थंकरों के माता-पिता के गुणगान से वन्दन करूँगा ।४६८।

चुलसीति सहस्साइं, उसभजिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
सत्तावीसं च सहस्सा, नमिजिणवरस्स ।४६९।
(चतुरशीति सहस्राणि, ऋषभजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
सप्तविंशति सहस्राणि, नमिनाथजिनवरस्य ।)

ऋषभदेव भगवान आदिनाथ के चौरासी हजार शिष्य थे ।४६९।

एमेव सयसहस्सं, अजिय जिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
साहस्स ... जिणवराणं ।४७०।
(एवमेव शतसहस्रं, अजितजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
... जिनवराणां ।)

दो चेवसयसस्सा, सीसाणं आसि संभवजिणस्य ।
मित्तविरिय थुयस्स, सेणाए[1] जियारितण यस्स ।४७५।
(द्वौ चैव शतसहस्राणि, शिष्याणामासन् संभव-जिनस्य ।
मित्रवीर्यस्तुतस्य, सेनायां-जितारितनयस्स ।)

महारानी सेना और महाराज जितारि के तनुज तथा नृपवर मित्रवीर्य द्वारा स्तुत भगवान् संभवनाथ के २,००,००० शिष्य थे ।४७५।

तिन्नेवसयसहस्सा, अभिनन्दण जिणवरस्ससीसाणं ।
सव्वरिरियथुयस्स, सिद्धत्थासंवरसुयस्स ।४७६।
(त्रीण्येव शतसहस्राणि, अभिनन्दन जिनवरस्य शिष्यानाम् ।
सर्ववीर्यस्तुतस्य, सिद्धार्था-संवरसुतस्य ।)

महारानी सिद्धार्था और महाराज संवर के सुत तथा नृपेन्द्र सर्ववीर्य द्वारा संस्तुत तीर्थंकर प्रभु अभिनन्दन के शिष्यों की संख्या ३,००,००० थी ।४७६।

तिन्नेव सयसहस्सा, वीससहस्सा य आसि सुमइस्स ।
जियसेण पणमियस्स, मंगलामेहतणयस्स ।४७७।
(त्रीण्येवशतसहस्राणि विंशतिसहस्राणि चासन् सुमतेः ।
जितसेन प्रणमितस्य, मंगलामेघतनयस्स ।)

महारानी मंगला और महाराज मेघ के नन्दन तथा नरपति द्वारा स्तुत एवं प्रणत भगवान् सुमतिनाथ के शिष्य साधु परिवार की संख्या ३,२०,००० थी ।४७७।

तिन्नेव सयसहस्सा, तीस सहस्साय आसि पउमाभो ।
दाणविरियथु[थु] यस्स, सुसीम-धर[2]रायतणयस्स ।४७८।

---

१ तिलोयपन्नत्ती तथा उत्तर पुराणे सुसेना, श्वेताम्बरपरम्पराया ग्रन्थेषु हरवंश-पुराणे च मातुः 'सेना' नामोल्लेखः ।

२ दिगम्बरपरम्परायां 'धरण' इति नामोल्लेखः विद्यते ।

([illegible] शतसहस्राणि [illegible] [illegible] पञ्चाशत् ।
[illegible], सुशीला-[illegible] ॥)

महारानी सुशीला और महाराजा [illegible] के तनय तथा राजा [illegible] द्वारा [illegible] को १,१०,००० [illegible] थे।१५७८।

[illegible] सयसहस्सा, सीसाणं आसि [illegible] ।
[illegible], पुहई-[illegible] ।१५७९।
([illegible] शतसहस्राणि, शिष्याणामासन् [illegible] ।
[illegible], पृथ्वी [illegible] ॥)

महारानी पृथ्वी एवं महाराजा [illegible] के तनय और [illegible] द्वारा [illegible] भगवान् सुपार्श्वनाथ के शिष्य-श्रमणों की संख्या ३,००,००० (तीन लाख) थी।१५७९।

[illegible] सीसा, [illegible] य सयसहस्साइं ।
[illegible] पुत्तेणं, [illegible] ।१५८०।
([illegible] शिष्याः, [illegible]-
[illegible] पुत्रेण [?] [illegible] ॥)

महारानी लक्ष्मणा और महाराज महासेन के आत्मज तथा [illegible] द्वारा [illegible] को २,५०,००० [illegible] थे।१५८०।

[illegible] सयसहस्सा, सीसाणं [illegible] ।
[illegible], [illegible] ।१५८१।
([illegible] शतसहस्राणि, शिष्याणां [illegible] ।
[illegible] ॥)

महारानी वामा और महाराज सुग्रीव के पुत्र तथा युद्धवीर्य नृपतिद्वारा स्तुत तीर्थंकर पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) के शिष्य-परिवार की संख्या २,००,००० (दो लाख) थी ।४८१।

एगं तु सयसहस्सं, सीसाणं आसिसीयलजिणस्स ।
सीमंधर महियस्सउ, नंदाए[1] दढरह सुयस्स ।४८२।
(एकं तु शतसहस्रं, शिष्यानामासीत् शीतल जिनस्य ।
सीमंधर महितस्य तु, नन्दाया दृढरथसुतस्य ।)

महारानी नन्दा और महाराज दृढरथ के नन्दन तथा राजा सीमंधर द्वारा पूजित तीर्थंकर शीतलनाथ के १,०० ००० (एक लाख) शिष्य थे ।४८२।

चुलसीति सहस्साइं, सिज्जंस जिणस्स सीसपरिवारो ।
तिविट्ठ[2] महियस्स, तहा विण्हाए विण्हु[3] पुत्तस्स ।४८३।
(चतुरशीति सहस्राणि, श्रेयांसजिनस्य शिष्यपरिवारः ।
त्रिपृष्ठ महितस्य, तथा विष्णायां-विष्णुपुत्रस्य ।)

महारानी विष्णु देवी और महाराज विष्णु के तनय तथा त्रिपृष्ठ वासुदेव द्वारा पूजित जिनराज श्रेयांसनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ८४,००० (चौरासी हजार) थी ।४८३।

बावत्तरिं सहस्सा, सीसाणं आसि वासुपुज्जस्स ।
दुविट्ठ[4] महियस्स, तणयस्स जयाएं वसु पुज्जस्स ।४८४।
(द्विसप्ततिःसहस्राणि, शिष्यानामासीत् वासुपूज्यस्य ।
द्विपृष्ठमहितस्य तनयस्य जायायां वसुपूज्यस्य ।)

---

१ उत्तरपुराणे हरिवंशपुराणे च सुनन्दा नामोपलभ्यते ।
२ तृपृष्ठः प्रथम वासुदेवः ।
३ श्रेयांसजिनस्य जननिजनकयोरुभयोरपि नाम्नि समवायांगादौ विष्णु उल्लिखिते स्तः । तिलोयपण्णत्तौ तु मातुः नाम वेणुदेवी विद्यते ।
४ द्वितीयो वासुदेवः द्विपृष्ठः ।

महारानी जया और महाराज वसुपूज्य के पुत्र तथा द्विपृष्ठ वासुदेव द्वारा पूजित भगवान् वासुपूज्य के ७२,००० (बहत्तर हजार) शिष्य थे।१८६।

अडसट्ठिं सहस्साइं, विमल जिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
पूजियस्स सयंभु[1] देवेण, कयवम्म सामा[2] तणयस्स ॥१८७॥
(अष्टषष्टिः सहस्राणि, विमल जिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
सम्पूजितस्य स्वयम्भुदेवेन, कृतवर्मा-श्यामा-तनयस्य ॥)

महाराजा कृतवर्मा और महारानी श्यामा के पुत्र तथा वासुदेव स्वयम्भू द्वारा पूजित भगवान् विमलनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ६८,००० (अड़सठ हजार) थी।१८७।

छावट्ठिं सहस्साइं, समणा आसि अणंत जिणस्स ।
पुरिसोत्तम[3] महियस्स य, सुजसाए[4] सीहसेण तणयस्स ॥१८८॥
(षट्षष्टिः सहस्राणि, श्रमणा आसन् अनन्त जिनस्य ।
पुरुषोत्तम महितस्य च, सुयशः-सिंहसेन तनयस्य ॥)

महारानी सुयशा और महाराज सिंहसेन के पुत्र तथा वासुदेव पुरुषोत्तम द्वारा पूजित भगवान् अनन्तनाथ के ६६,००० (छियासठ हजार) शिष्य थे।१८८।

चउसट्ठिं सहस्साइं, धम्मजिणिंदस्स समणसंघो ।
महियस्स पुरिससीहेण, सुव्वय सह भाणु तणयस्स ॥१८९॥
(चतुःषष्टिः सहस्राणि, धर्मजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
महितस्य पुरुषसिंहेन, सुव्रता सह भानु तनयस्य ॥)

---

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
४ [illegible]
[illegible]
५ [illegible]

(अष्टादश च सहस्राणि, शिष्यानामासीत् अरिष्टनेमिनः ।
कृष्णेन प्रणमितस्य, शिवासमुद्रयोः तनयस्य ।)

महारानी शिवा और महाराज समुद्रविजय के नन्दन तथा कृष्ण वासुदेव के नमस्य बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के १८,००० (अठारह हजार) शिष्य थे ।४९४।

सोलस साहस्सीओ, पास जिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
महियस्स पसेणइणा, सुयस्स वामासेणाणं ।४९५।
(षोडश साहस्रिकः, पार्श्वजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
महितस्य प्रसेनजितेन सुतस्य वामाश्वसेनयोः ।)

वामा महारानी और अश्वसेन महाराज के पुत्र तथा राजा प्रसेनजित् द्वारा पूजित तेवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों की संख्या १६,००० (सोलह हजार) थी ।४९५।

चोद्दस साहसीओ, सीसाणं आसि वद्धमाणस्स ।
सेणियरायनयस्स, तिसलासिद्धत्थ तणयस्स ।४९६।
(चतुर्दश साहस्रीकः, शिष्यानामासीत् वर्द्धमानस्य ।
श्रेणिक राजनतस्य, त्रिशलासिद्धार्थतनयस्य ।)

महारानी त्रिशला और महाराज सिद्धार्थ के पुत्र तथा श्रेणिक द्वारा प्रणत चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के १४००० (चौदह हजार) शिष्य थे ।४९६।

ओसप्पिणी इमीसे, जिणंतर समुट्ठिएण कालेणं ।
वोच्छामि चउव्वीसं, अरहंते भारएवासे ४९७।
(अवसर्पिण्यामस्यां, जिनान्तरं समुत्थितेन कालेन ।
वक्ष्यामि चतुर्विंशति अरिहन्तान् भारते वर्षे ।)

प्रवर्तमान इस अवसर्पिणी काल में एक तीर्थंकर के अनन्तर दूसरे तीर्थंकर के उत्पत्तिकाल के माध्यम से मैं भारतवर्ष के चौवीस तीर्थंकरों का कथन करूंगा ।४९७।

सहस्समासाविरेनिच्छु, निवास अद्धनवमासा सेसम्मि ।
उसभजिणराय सुविय, जिणवंस पगङ्घ वणियाए[1] ॥४९८॥
(तृतीयसमावरिनिर्दुषी, त्रिवर्षा नवमासशेषे ।
ऋषभ जिनः राज-सत्रिय-जिनवंशप्रकटकः विनीतायाम् ॥)

सुषम दुःषमा नामक तीसरे आरक के समाप्त होने में जब ८४ लाख पूर्व तथा तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशिष्ट थे, उस समय राजवंश, पवित्रवंश तथा जिनवंश के प्रकटयिता प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विनीता नगरी में उत्पन्न हुए ।४९८।

उसभाओ उप्पण्णं, पण्णासाकोडिसय सहस्सेहिं ।
तं सागरोवमाणं, अजियजिणंदो विणीयाए[2] ॥४९९॥
(ऋषभात् उत्पन्ने, पञ्चाशत्कोटि शत सहस्रैः ।
तत् सागरोपमैः, अजित जिनेन्द्रः विनितायाम् ॥)

ऋषभदेव के पचास लाख करोड़ सागरोपम व्यतीत हो जाने के पश्चात् विनीता नगरी में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ उत्पन्न हुए ।४९९।

तीसाए सागरोवम, कोडिसयसहस्स अन्तरुप्पण्णं ।
अजियाउ संभवजिणो, सावत्थीए विसाला हि ॥५००॥
(त्रिंशत् सागरोपमकोटिशतसहस्रात् अनन्तरमुत्पन्नः ।
अजितात् संभवजिनः, श्रावस्त्यां विशालायां ॥)

अजितनाथ से तीस लाख करोड़ सागर पश्चात् तीसरे तीर्थंकर, [illegible] नगरी में उत्पन्न हुए । यह [illegible] अतिविशाल [illegible]

१ [illegible]

२ [illegible]

जाणाहि सीयलाओ, सेज्जंसं ऊणियाए कोडी ए ।
तं सागरोवमाणं, सएहि वासेहिय इमेहिं ।५०८।
(जानीहि शीतलात्, श्रेयांसं ऊनितायाः कोट्याः ।
तं सागर-उपमानं, शतैर्वर्षैश्च एभिः ।)

छावट्ठिसय सहस्सा, छव्वीसं खलु भवे सहस्साइं ।
एएहिं ऊणिया खलु, मग्गिल्ला कोडि सीहपुरे ।५०९।
(षड् षष्टि सहस्राणि, षड्विंशतिः खलु भवेयुः सहस्राणि ।
एतैरूनिता खल्वग्रिला कोटिः सिंहपुरे ।)

शीतलनाथ के पश्चात् १०० सागर तथा ६६,२६००० वर्ष कम एक कोटि सागरोपम काल व्यतीत हो जाने पर सिंहपुर में ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ ।५०८-५०९।

सेज्जंसाओ वासुपुज्जं, चंपाए सगल चंद सोम-मुहं ।
चउप्पण्णा, उप्पण्णं सागरसिरिनामधेज्जाणं ।५१०।[1]
(श्रेयांसात् वासुपूज्यं, चंपायां सकलचन्द्र सौम्य मुखम् ।
चतुर्पञ्चाशत् उत्पन्नं सागरश्री नामधेयानाम्)

श्रेयांसनाथ के पश्चात् ५४ सागरोपकाल व्यतीत हो जाने पर पूर्णिमा के चन्द्र तुल्य सौम्य मुखवाले १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य का चम्पा नगरी में जन्म हुआ ।५१०।

विमलं च वासुपुज्जा, कम्पिल्लपुरी विलीण संसारे ।
तीसाए समुप्पन्नं, सागरसिरि नाम धेज्जाणं ।५११।
(विमलं च वासुपूज्यात्, काम्पिल्यपुरे विलीन संसारम् ।
त्रिंशत्सु उत्पन्नं, सागरश्रीनामधेयानाम् ।)

वासुपूज्य से ३० सागरोपम पश्चात् काम्पिल्यपुर में जन्म-मरण का अन्त करने वाले १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म हुआ ।५११।

---

१ सागरोपमाणाम्—इत्यर्थः ।

जइहि विधाण गुनव पंकप्पलं मालोविलनदुण्णओ ।
लक्खंगवधोरणह, विमलओ गलियं पिसलं ।।१२१।।
(नलिनीदलैरिव गुनव-[illegible]प्रभं [illegible]सुन्दम ।
नुपनेत्र[illegible], [illegible] गलितं विमलम् ।।)

[illegible]

[illegible]

पुत्रा [illegible]

[illegible] जवीन विणाओ, [illegible] जलन [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible][णि]यंमि जिनं घम्मं ।।१२३।।
([illegible] [illegible] जिनात्, [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible][णि]यं जिनं धर्मं ।।)

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible], [illegible] च [illegible] [illegible] जिनं ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।।१२४।।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
([illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।।)
[illegible] [illegible], [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] च [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।।१२५।।
[illegible] [illegible], [illegible] च [illegible] [illegible] ।
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।।)

गजपुर में उत्पन्न हुए सत्रहवें तीर्थंकर कुरुकुल तिलक कुंथुनाथ का १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्योपम काल का अन्तर जानना चाहिये अर्थात् शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्य पश्चात् कुंथुनाथ का जन्म हुआ । ५१५ ॥

पलिय चउब्भागेण य, कोडि सहस्सूणएण वासाणं ।
अर जिणवरं गयपुरे, कुंथुजिणाओ समुपण्णं ।५१६।
(पल्य चतुर्भागेन च कोटि सहस्र-ऊनेन वर्षाणाम् ।
अर जिनवरं गजपुरे. कुंथुजिनात् समुत्पन्नं)

कुन्थुनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव (एक चौथाई) पल्योपम काल व्यतीत होने पर गजपुर में अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म हुआ ।५१६।

मल्लिजिनं मिहिलाए, अराओ एकूणवीसमरिहंतं ।
जाणाहि समुप्पण्णं, कोडिसहस्सेण वासाणं ।५१७।
(मल्लिजिनं मिथिलायां, अरात् एकोनविंशमर्हतम् ।
जानीहि समुत्पन्नं, कोटिसहस्रेण वर्षाणाम् ।)

अरनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर मिथिला नगरी में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म हुआ समझना चाहिए ।५१७

मल्लिजिणा उप्पण्णं, चउपण्णवासाणसय सहस्सेहिं ।
मुणिसुव्वयं मुणिवरं, हरिवंसकुलम्मि रायगिहे ।५१८।
(मल्लिजिनात् उत्पन्नं चतुर्पञ्चाशत् वर्षाणां शतसहस्रैः ।
मुनि सुव्रतं मुनिवरं. हरिवंश कुले राजगृहे ।)

मल्लि जिनवर से ५४ लाख वर्ष पश्चात् राजगृह नगर में वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म हरिवंश में हुआ ।५१८।

मिहिलाए नमि जिणिंदं. नवनवणीय सुकुमाल सव्वंगं ।
छव्वाससयसहस्सेहिं [मुणि] सुव्वयाउ समुप्पण्णं ।५१९।

(मिथिलायां नमि जिनेन्द्रः, नवनवतेः गुरुमासानन्तरम्गतः ।
षट्पंचाशत्सहस्रैः, मुनिसुव्रतात् समुत्पन्नः ।।)

तीर्थङ्कर सुव्रत (मुनिसुव्रत) के छः लाख वर्ष पश्चात् अश्विनी नक्षत्र में [illegible] मिथिला में जन्म हुआ ।।४१९।।

पंचसु य सहस्सेसु, पंचसु उ गएसु नमि जिणिंदाओ ।
सोरिय अरिट्ठनेमि, दसारकुलनंदणो जाओ ।।४२०।।
(पञ्चसु सहस्रेषु, पंचसु गतेषु नमि जिनेन्द्रात् ।
शौरिके अरिष्टनेमि, दशार्ह-कुल-नन्दनो जातः ।।)

तीर्थङ्कर नमिनाथ के पाँच लाख वर्ष पश्चात् [illegible] हुए [illegible] दशार्ह कुल [illegible] अरिष्टनेमि का जन्म हुआ ।।४२०।।

[illegible] अट्ठमेहिं, [illegible] पुरीए ।
[illegible] पासजिणो [illegible] वाणारसीए जाओ ।।४२१।।
(त्र्यशीति-सहस्रैः [illegible] सार्धसप्तशतैः ।
[illegible] पार्श्वजिनः, वाराणस्यां जातः ।।)

[illegible] ।।४२१।।

[illegible] निव्वाणाओ [illegible] ।
[illegible] ।।४२२।।
([illegible] ।
[illegible] ।।)

[illegible] ।।४२२।।

जाव य उसभ जिणिंदो, जावेत्र य वद्धमाण जिणचंदो ।
अह सागरोवमाणं, कोडा कोडी भवे कालो ।५२३।
(यावच्च वृषभजिनेन्द्र. यावदेव च वर्द्धमान जिनचन्द्रः ।
अथ सागरोपमानां कोट्याकोटिः भवेत् कालः ।)

वायालीस सहस्सेहिं, ऊणि या वच्छराणा जाणाहि ।
एक्कं कोडा कोडि, उदहिसमाणाणमाणाणं [जुयलं] ।५२४।
(द्विचत्वारिंशत्सहस्रैः ऊनिताः वत्सराणां जानीहि ।
एकं कोट्याकोटिं उदधिसमानानां मानानाम् ।)

जिस समय तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विद्यमान थे उस समय से लेकर जब तक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विद्यमान थे उस समय तक अर्थात् भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण से भगवान् महावीर के निर्वाण तक (लगभग) एक कोटा कोटि सागरोपम काल होता है (उस काल को) ।५२३।

४२,००० वर्ष कम एक कोटा कोटि सागरोपम जानिये ।५२४।

पुरिम चरिमेसु अट्ठसु, अवोच्छिण्णं जिणेसु तित्थंति[1] ।
मज्झिमए सु य सत्तसु, वुच्छेओ एत्तियं कालं ।५२५।
(प्रथमचरमेषु अष्टसु, अविच्छिन्नं जिनेषु तीर्थम् ।
मध्यमेषु च सप्तसु व्युच्छेदः एतावद् कालम् ।)

प्रथम आठ और अन्तिम आठ – इन सोलह अन्तरालों में तीर्थंकरों के धर्म तीर्थ का कहीं विच्छेद नहीं हुआ, वह अबाध गति से निरन्तर चलता रहा । किन्तु मध्यमवर्ती आठ तीर्थंकरों—(सुविधिनाथ से शान्तिनाथ) के बीच के सात अन्तरालों में इतने (निम्नलिखित) काल तक तीर्थ की व्युच्छित्ति हुई :—।५२५।

---

१ अस्याः गाथायाः द्वितीय चरणे--' अवोच्छिण्णा जिणंतरेसु तित्थं त्ति"- इति पाठेन भाव्यम् ।

चउभागा चउभागो तिण्णि, चउभाग पच्छिमेणं च ।
छिण्णेव चउभागा-चउत्थभागो य चउभागो ॥६६॥
(चतुर्भागः चतुर्भागः, त्रीणि चतुर्भागाः पश्चिमेन च ।
छिन्नेव चतुर्भागानां, चतुर्थभागः चतुर्भागः ।)

चतुर्भाग--(१) [illegible] और [illegible] के [illegible] में [illegible] चतुर्भाग--(२) [illegible] और [illegible] (३) [illegible] और [illegible] (४) [illegible] और [illegible] (५) [illegible] और [illegible] और [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥६७॥

[illegible]

[illegible] ॥६८॥

(भरते च संभवजिनः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
मृगशीर्ष योगे दशाऽपि, सिद्धिं गता अपरसूर्ये)

भरत क्षेत्र में संभवनाथ तथा ऐरवत क्षेत्र में अग्निसेन--इन दशों तीर्थंकरों ने अपराह्न की वेला में चन्द्र का मृगशिरा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध गति प्राप्त की ।५३६।

*पउमप्पभो य भरहे, वयधारि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि मघा जोएणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि ।५३७।
(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारीजिनश्चैरवतवर्षे ।
दशाऽपि मघा योगेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी (वयरधारी-रवयधारी-व्रयधारी) इन दशों तीर्थङ्करों ने चन्द्र का मघा नक्षत्र के साथ योग होने पर अपराह्न की वेला में मुक्ति गमन किया ।५३७।

*सुविही य भरहवासे, एरवयंमि य सयाउ जिणचंदो ।
दसवि जिणा मूलेणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि ।५३७।
(सुविधिश्च भरतवर्षे, ऐरवते च शतायुः जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि जिनाः मूलेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु-- ये दशों तीर्थङ्कर मूल नक्षत्र के योग में अपराह्न की वेला में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५३७।

भरहे य वासुपुज्जो, सेज्जंसि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि जिणा समणेणं सिद्धि गया अवरसूरम्मि ।५३८।
(भरते च वासुपूज्यः श्रेयांस जिनश्च ऐरवतवर्षे ।
दशाऽपि जिनाः श्रवणेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत में वासुपूज्य तथा ऐरवत क्षेत्र में श्रेयांस--ये दशों

*५३१ संख्यायाः लेखने लिपिकेन या त्रुटि कृता सात्र परिमार्जितव्य ।

भरत क्षेत्र में धर्मनाथ और ऐरवत क्षेत्र में उपशान्त--ये दश तीर्थंकर चन्द्र का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होने पर पश्चिम रात्रि में सिद्ध गति में गये ५४६।

अर जिणवरो य भरहे, अइपास जिणो य एरवयवासे ।
रेवइ जोगे दसमी, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५०।
(अर जिनवरश्च भरते, अतिपार्श्व जिनश्चैरवतवर्षे ।
रेवतीयोगे दशमी, सिद्धिं गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में अरनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अतिपार्श्व--ये दश तीर्थंकर चन्द्र के साथ रेवती नक्षत्र का योग होने पर अपर रात्रि के परार्द्ध में मोक्ष पधारे ।५५०।

नमि जिणचन्दो भरहे, एरवए सामकोट्ठ जिणचंदो ।
अस्सिणिजोगे दसवि, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५१।
(नमिजिनचन्द्रः भरते, ऐरवते श्यामकोष्ठजिनचन्द्रः ।
अश्विनीयोगे दशाऽपि, सिद्धिं गता अपर रात्रौ)

भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ—ये दश तीर्थंकर चन्द्र और अश्विनी नक्षत्र का योग होने पर रात्रि के परार्द्ध में सिद्ध हुए ।५५१।

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।
दसवि य साती जोगे, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५२।
(भरते च वर्द्धमान, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।
दशाऽपि च स्वातियोगे, सिद्धिं गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत में वारिषेण—ये दश तीर्थंकर अपर रात्रि के समय चन्द्र का स्वाति नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्धि में गये ।५५२।

एते चत्तालीसं दससु वियासेसु खीणसंसारा ।
सव्वे ते केवलिणो, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५३।

[स्पष्टीकरण :—दशों क्षेत्रों के इस चौवीसी के २४० तीर्थकरों में से इस प्रकार उपरि चर्चित ३० तीर्थंकर निषिद्या---पर्यंकासन से सिद्ध हुए।]

दोण्णि सया उ दहुत्तर, जिणवर चंदाण केवलीणं तु।
दससु वि वासेसु सेसा, वाघारियपाणिणो सिद्धा ।५५७।
(द्वे शते तु दशोत्तर, जिनवरचन्द्राणां केवलिनां तु।
दशस्वपि वर्षेषु शेषाः व्याघारितपाणयः सिद्धाः।)

दशों क्षेत्रों के अवशिष्ट २१० केवलज्ञानी जिनेश्वर व्याघारित-पाणि (प्रलम्बभुज) अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा में सिद्ध हुए ।५५७।

चंदाणण उसभजिणो, आइगरा चोद्सेण भत्तेण।
एते य दसवि सिद्धा, दससु वि वासेसु जिणचंदा ।५५८।
(चन्दाननः ऋषभजिनः आदिकराश्चतुर्दशेन भक्तेन।
एते च दशाऽपि सिद्धा, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः।)

चन्द्रानन और ऋषभ देव क्रमशः पांच ऐरवत और पांच भरत इन दशों क्षेत्रों में धर्म को आदि करने वाले ये १० तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चतुर्दश भक्त अर्थात् छः उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ।५५८। (५५९ वीं गाथा मूल प्रति में नहीं है।)

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्दो।
छट्ठेण दसविसिद्धा, दससु विवासेसु जिणचंदा ।५६०।
(भरते च वर्द्धमानः, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः।
षष्ठेन दशाऽपि सिद्धाः, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में षष्ठ भक्त अर्थात् दो उपवासों की तपस्या से सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६०।

(स्पष्टी करण:—इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों में से ऋषभादि दश प्रथम तीर्थंकर ६ उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए।)

[स्पष्टीकरण :—दशों क्षेत्रों के इस चौवीसी के २४० तीर्थंकरों में से इस प्रकार उपरि चर्चित ३० तीर्थंकर निपिद्या---पर्यंकासन से सिद्ध हुए।]

दोण्णि सया उ दहुत्तर, जिणवर चंदाण केवलीणं तु ।
दससु वि वासेसु सेसा, वाघारियपाणिणो सिद्धा ।५५७।
(द्वे शते तु दशोत्तर, जिनवरचन्द्राणां केवलिनां तु ।
दशस्वपि वर्षेषु शेषाः व्याघारितपाणयः सिद्धाः ।)

दशों क्षेत्रों के अवशिष्ट २१० केवलज्ञानी जिनेश्वर व्याघारित-पाणि (प्रलम्बभुज) अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा में सिद्ध हुए ।५५७।

चंदाणण उसभजिणो, आइगरा चोद्सेण भत्तेण ।
एते य दसवि सिद्धा, दससु वि वासेसु जिणचंदा ।५५८।
(चन्दानन: ऋषभजिनः आदिकराश्चतुर्दशेन भक्तेन ।
एते च दशाऽपि सिद्धा, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

चन्द्रानन और ऋषभ देव क्रमशः पांच ऐरवत और पांच भरत इन दशों क्षेत्रों में धर्म को आदि करने वाले ये १० तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चतुर्दश भक्त अर्थात् छः उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ।५५८। (५५९ वीं गाथा मूल प्रति में नहीं है ।)

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्दो ।
छट्ठेण दसविसिद्धा, दससु विवासेसु जिणचंदा ।५६०।
(भरते च वर्द्धमानः, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।
षष्ठेन दशाऽपि सिद्धाः, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में षष्ठ भक्त अर्थात् दो उपवासों की तपस्या से सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६०।

(स्पष्टी करण:—इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों में से ऋषभादि दश प्रथम तीर्थंकर ६ उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए ।)

अमरेहिं परिगहियाइं, जाणि रयणाइं कहवि दिट्ठाइं ।
अमरेसु भुवणेसु य, एयाइं अहिय पुण्णाइं ॥८७॥
(अमरैः परिगृहीतानि, यान्यपि रत्नानि अथ विदृष्टानि ।
अमरेषु भुवनेषु च, एतान्यधिक पुण्यानि ॥)

माला य वेजयंती. विचित्तरयणावसोहिया रम्मा ।
सारिक्खी जा तडियं, घणसमए इंदरायस्स ।५८४।
(माला च वैजयन्ती, विचित्ररत्नावशोभिता रम्या ।
सदृशी सा तडितया, घनसमये इन्द्रराज्ञः ।)

त्रिपृष्ठ के पास अद्भुत-अलभ्य रत्नों से मण्डित एवं सुशोभित अतीव सुन्दर वैजयन्ती माला थी जो कि वर्षाकालीन सघन घनघटा में चमकती हुई बिजली के समान देदीप्यमान थी ।५८४।

सत्तुजण भयकरं चावं दरि यारि[1] जीवउच्चावं [टं] ।
जीया[2] निघोसेणं, सयसाहस्सी पडइ जस्स ।५८५।
(शत्रुजन भयंकरं चापं दृप्तारिजीवोच्चाटम् ।
ज्या निर्घोषेण, शतसाहस्री पतति यस्य ।)

उस वासुदेव त्रिपृष्ठ के पास दर्पोन्मत्त वैरियों के मन का उच्चाटन कर देने वाला शत्रुओं के लिये काल के समान भयंकर (साङ्ग) धनुष था, जिसकी प्रत्यंचा (ज्या) की टंकार मात्र से लाखों शत्रु मूच्छित हो गिर पड़ते थे ।५८५।

कोत्थुभ-मणी य दिव्वो, वच्छत्थल विभूसणो तिविट्ठस्स ।
लच्छी ए परिग्गहीउ, रयणुत्तमसार संगहिओ ।५८६।
(कौस्तुभमणिश्च दिव्यो, वक्षस्थल विभूषणः त्रिपृष्ठस्य ।
लक्ष्म्याः परिगृहीतः, रत्नोत्तमसार-संगृहीतः ।)

त्रिपृष्ठ के पास लक्ष्मी द्वारा सेवित, उत्तमोत्तम रत्नों के सार से उत्पन्न दिव्य कौस्तुभ मणि था जो उसके वक्षस्थल का विभूषण था ।५८६।

---

१ दरियारि-दृप्तारिः । दरिय-दृप्त "दरियनागदप्प महणा"—दृप्तनाग दर्पमथना (प्रश्न, ४ आश्र० द्वार)

२ जीया—ज्या । धनुषो गुणे । वाच० ।

अमरे हिं परिगहियाइं, मणवि रयणाइं [illegible]
अमरेंसु भूषणेंसु य, एयाइं अन्निय पुण्णाइं [illegible]
(अमरैः परिगृहीतानि, मन्यापि रत्नानि [illegible]
अमरेषु भूषणेषु च, एतान्यत्रिन पूर्णानि [illegible]

त्रिपृष्ठ वासुदेव के ये सात रत्न [illegible]
है। दिव्य भूषणों व ये सात सर्वदा [illegible]

([illegible]—गाथाओं के [illegible]
होता है कि इनमें ६ रत्नों का ही [illegible]
गया है। वासुदेव के सातवें रत्न—[illegible]
[illegible] नाहरचोट ग्रन्थ में था [illegible]

वहइ हली वि हलं, [illegible] पण य [illegible]
[illegible] महाबलो, मट्टविहण [illegible]
(वहति हली मपि हलं, [illegible]
[illegible] महा-भट [illegible]

इसी प्रकार बलदेव के [illegible]
[illegible] एक वस्त्र की [illegible]
का सातवाँ भाग) [illegible]
पुरुषों के प्राणों का हरण करने [illegible]
[illegible] पासिहिंद, [illegible]
[illegible] सोयमहाणं, [illegible]
([illegible] नीहिं. [illegible]
[illegible]

सुनन्द अथवा नन्दित नामक मूसल को अचल वलदेव धारण करते हैं। अचल का वह मूसल टिड्डीदल के समान अपार एवं विशाल सेनाओं को भयभीत कर किंकर्त्तव्यविमूढ बना देने वाला, सौभ अर्थात् लोहमय गगन विहारी नगराकार विमानों बड़े-बड़े अभद्य नगरों को विचूर्णित करने में सिद्धहस्त और वज्र सार का बना हुआ था ॥५८६॥

सव्वोउ पंच मालं, कुसुमासव लोल छप्प (य) विउलं।
मणिकुंडलं च वामं, कुवेरघरसारं आरामं ।५९०।
(सर्वर्तु पंचमालं, कुसुमासव लोल षट्पद विपुलम् ।
मणि कुंडलं च वामं, कुवेर गृहसार आरामम् ।)

अचल के वक्षस्थल पर सभी ऋतुओं के पांच वर्ण के फूलों की माला थी, जिस पर फूलों के रस को चूसने के लोभी चपल भ्रमर मंडराते रहते थे। अचल के कानों में धन कुवेर के धनागार के सभी आभूषणों में सारभूत मनोहर मणिकुण्डलों की जोड़ी थी ।५९०।

अचलस्स वि अमर परिग्गहाइं, एयाइं पवररयणाइं ।
सत्तूण अजियाइं, समरगुण पहाणगेयाइं ।५९१।
(अचलस्यापि अमर परिग्रहाणि, एतानि प्रवररत्नानि ।
शत्रूणामजितानि, समरगुण प्रधान गेयानि ।)

अचल वलदेव के पास भी शत्रुओं द्वारा अजेय, समर के सभी प्रधान गुणों से गेय अर्थात् युक्त ये (उपरि लिखित) उत्कृष्ट रत्न थे ॥५९१॥

वद्धमउडाण निच्चं, रज्जधुरुव्वहणधीरवसभाणं ।
भोइण नरिंदाभाणं, सोलसराती सहस्साइं ।५९२।
(वद्धमुकुटानां नित्यं, राज्यधुरोद्वहनधीरवृषभाणां ।
भोगिन् नरेन्द्राभानां, षोडश राजसहस्राणि ।)

वासुदेव त्रिपृष्ठ और उसी प्रकार [illegible] में सुपरी के समान राजपुत्रों को [illegible] करते हैं और, मुकुटबद्ध [illegible] के समान [illegible] १६,००० (सोलह हजार) राजा नित्य [illegible] हैं ।

सोलसमेत्ता, देवाण गणबद्धगाण पडिपुण्णा ।
अट्ठण्ह देवसहस्सा, अभिजोग्गा सव्वचक्कीसु ।।५१३।।
(षोडशसहस्रमात्राः देवानां गणबद्धानां प्रतिपूर्णाः ।
अष्टौ च देव सहस्राः, आभियोग्याः सर्वचक्रिषु ।।)

उनके पास सभी [illegible] गणबद्धों से रक्षित हुए [illegible] हैं, उनमें ही [illegible] उनमें ही [illegible] हैं । उनके [illegible] सभी [illegible] को [illegible] ८००० (आठ हजार) देव सदा उनकी आज्ञा का पालन करते हैं ।।५१३।।

अट्ठण्हा कोडीओ पादिक्कनगाण रयणमयाणं ।
[illegible] [illegible], [illegible] हुवाणं ५१४।।
[illegible] कोटिश्च [illegible] रयणमयीनाम् ।
[illegible], [illegible] हुवाणाम् ।।)

[illegible] [illegible] [illegible] १६ हजार [illegible] हैं ।।५१४।।

[illegible] [illegible], [illegible] देवाणं ।
[illegible], [illegible] महदा ।५१५।।
(विशाला [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ।)

[illegible] [illegible] वासुदेव और [illegible] के [illegible] १० [illegible] और [illegible] के [illegible] हजार [illegible] ।

नेगाइं सहस्साइं, गामागरणगर पट्टणादीणं ।
वियड्ढदाहिणेणउ, पुव्वावर अंतरट्ठिया ।५९६।
(अनेकानि सहस्राणि, ग्रामागारनगरपत्तनादीनाम् ।
वैताढ्य दक्षिणेन तु, पूर्वापरान्तरस्थिताः ।)

इनके अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत के दक्षिणी भाग में पूर्व तथा पश्चिम की तलहटियों में बसी दो विद्याधर श्रेणियों के अनेक सहस्र ग्राम-आगार-नगर तथा पत्तन त्रिपृष्ठ वासुदेव एवं अचल बलदेव के आधिपत्य में थे ॥५९६॥

दरियरिउमाणमहणा, अवसेवसमाणइत्तु नरवइणो ।
दाहिण भरहं सगलं, भुंजंतिविलीण पडिवक्खा ।५९७।
(दृप्त ऋपुमान मथनाः अवशान् वशमानयित्वा नरपतयः ।
दक्षिण भरतं सकलं, भुञ्जन्ति विलीन प्रतिपक्षाः ।)

दर्पोन्मत्त (दृप्त) शत्रुओं के मान का मथन (मर्दन) करने वाले त्रिपृष्ठ और अचल स्वतन्त्र राजा-महाराजाओं को अपने आज्ञानुवर्ती एवं अधीन बना कर शत्रुविहीन हो सम्पूर्ण दक्षिण भरत के निष्कण्टक राज्य का उपभोग करने लगे ।५९७।

सोलस साहस्सी तो, नरवइतणयाण रूवकलियाणं ।
तावइओविय जणवय, कल्लाणीतो तिविट्ठस्स ।५९८।
(षोडशसाहस्रीस्तु, नरपतितनयानां रूपकलितानाम् ।
तावत्योऽपि च जनपद-कल्याण्यस्तु त्रिपृष्ठस्य ।

राजाओं की अनुपम रूप-लावण्यवती १६,००० कन्याएं और उतनी ही अर्थात् १६ हजार, विभिन्न जनपदों की रूप-गुण-यौवन संपन्ना सुन्दरियां ।५९८।

इय बत्तीस सहस्सा, चारुपत्तीण ता तिविट्ठुस्स ।
धारिणि पायोक्खाणय, अट्ठसहस्सा य अयलस्स ।५९९।

(मथुरा च कनकवस्तु, श्रावस्ती पोतनं च राजगृहम् ।
कोगंदी [काकन्दी] कौशाम्बीः, मिथिलापुरी हस्तिनापुरञ्च ।)

मथुरा. कनकवस्तु श्रावस्ती :पोतनपुर, राजगृह, काकन्दी, कौशाम्वी, मिथिलापुरी और हस्तिनापुर ।६०६।

आसग्गीवे तारय, मेरय महुकेटवे निसुंभे य ।
वलिय हिराए[1] (हिरण्णे) तह, रावणे य नवमे जरासिंधू ।६१०।
(अश्वग्रीवः तारक-मेरक-मधुकैटभाः निशुम्भश्च ।
वलिश्च हिरण्य [क्षिपुः] तथा, रावणश्च नवमः जरासिन्धु [सन्धः] ।)

अश्वग्रीव, तारक, मेरक. मधुकैटभ, निशुम्भ. वली हिरण्यकशिपु, रावण और जरासन्ध ।६१०।

एते खलु पडिसत्तू, कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे य चक्क जोहा, सव्वे वि हया सचक्केहिं ।६११।
(एते खलु प्रतिशत्रवः. कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वे च चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः)

ये कीर्तिशाली वासुदेवों के प्रतिशत्रु अर्थात् प्रतिवासुदेव थे। ये सब चक्रयोधो थे और सभी अपने ही चक्रों द्वारा मारे गये ।६११।

पंच अरहंते वंदंति, केसवा पंच आणु पुव्वीए ।
सेज्जंस-तिविट्ठादि, धम्म-पुरिससीह पेरन्ता ।६१२।
(पंच अर्हतान् वन्दन्ति. केशवा पञ्च आनुपूर्व्या ।
श्रेयांस-त्रिपृष्ठादि, धर्म-पुरुषसिंह पर्यन्ताः ।)

---

१ श्वेताम्बर परम्परा ग्रन्थेषु सप्तमो प्रतिवासुदेवः प्रहलाद नाम्ना दिगम्बर परम्परायाः तिलोयपण्णत्ती-ग्रन्थे च प्रहरण नाम्ना समुल्लिखिताऽस्ति प्रहलादस्तु परम भागवतोऽभिमतः सनातन परम्परायां पुराण ग्रन्थेषु । अनया गाथया हिरण्यक्षिपुरेव नवमो प्रतिवासुदेव आसीदित्यनुमीयते । विदूषां विमर्शणीयं विषयमेतत् प्रतिभाति ।

बलमित्र-भानुमित्र का साठ, नभसेन का ४०, गर्दभिल्ल का १०० वर्ष तक क्रमशः राज्य चलने के पश्चात् शक राजा का शासन हुआ ।६२२।

पंच य मासा पंच य वासा, छच्चेव होंति वाससया ।
परिनिव्वुयस्स अरिहा, तो उप्पन्नो सगो राया ।६२३।
(पंच च मासा पंच च वर्षा, षट् चैव भवन्ति वर्षशता ।
परिनिर्वृतस्यार्हतः, तत उत्पन्नः शको राजा ।)

भगवान् महावीर के निर्वाण से ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत हो जाने पर शक राजा हुआ ।६२३।

सगवंसस्सय तेरस सयाइं, तेवीसइं च होंति वासाइं ।
होही जम्मं तस्सउ कुसुमपुरे दुट्ठवुद्धिस्स ।६२४।
(शकवंशस्य त्रयोदश शतानि, त्रयोविंशतिश्च भवन्ति वर्षाणि ।
भविष्यति जन्म तस्य तु (ततस्तु) कुसुमपुरे दुष्टवुद्धेः ।)

शक वंश के १३२३ वर्ष होते हैं तब दुष्टवुद्धि का कुसुमपुर में जन्म होगा ।६२४।

पत्तो प (च) च कुलंमि य, चेत्ते सुद्धट्ठमीय दिवसंमि ।
रोद्दोवगए चंदे विट्ठिकरणे रविस्सुदए ।६२५।
(प्राप्तस्त्यक्तकुले च, चैत्रे शुद्धाष्टम्याश्च दिवसे ।
रौद्रोपगते चन्द्रे, वृष्टिकरणे रवेरुदये ।)

चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन चन्द्र के रौद्र योग में आने पर वृष्टि करण में सूर्य के उदय के समय उस (दुष्ट वुद्धि) का त्यक्त (नीच) कुल जन्म हुआ ।६२५।

जम्मोवगए सूरे, सणिच्छरे विण्हु [?] देवयागए य ।
सुक्के भोमेण हते, चंदेण हए सुरगुरुंमि ।६२६।
(जन्मोपगते सूर्ये, शनिश्चरे विष्णुदेव गते च ।
शुक्रे भौमेन हते, चन्द्रेण हते सुरगुरौ ।)

[illegible] के [illegible] के [illegible] के [illegible]
[illegible] के [illegible] (बुध) द्वारा और बृहस्पति के [illegible] द्वारा [illegible]
होते पर ।१२०।

नमिसरस्यमणीमिव, सबालवेल्लिय एग पल्लोगि ।
मणिमिव [illegible] पवत्थुसूव पूवर उ केउंति ।१२७।
(कोमि [illegible] न [illegible] लिर्या [नांथे] एक पसे ।
[illegible], न पूस पुत्तके तु केउ ।)

एक ही [illegible] और एक ही [illegible] में [illegible] और [illegible]—दोनों के
[illegible] के [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] द्वारा
[illegible] किये जाते पर ।१२७।

(अथवा [illegible]) [illegible] पहमाम, [illegible]
[illegible] ।
[illegible] [illegible] व [illegible] ।१२८।
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] व [illegible] ।)

[illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।१२९।
[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उन स्तूपों के सम्बन्ध में उसके द्वारा पूछताछ की जाने पर लोग उसे बतायेंगे कि बल, धन, रूप एवं यश---सभी दृष्टियों से समृद्ध नंद नामक राजा यहां बहुत समय तक शासनारूढ रहा ।६३७।

तेणउ इहं हिरण्णं, निक्खितंसि बहुबलपमत्तेणं ।
न य णं तरंति अण्णे, रायाणो दाणिं धितुं जे ।६३८।
(तेन त्विह हिरण्यं, निक्षिप्तं (अस्ति) बहुबलप्रमत्तेन ।
न च नु तरन्ति अन्ये, राजान इदानीं ग्रहीतुं ये ।)

बलाधिक्य से प्रमत्त उस नन्द राजा ने इन स्तूपों में बहुत सा स्वर्ण गाड़ा था। अब इस स्वर्ण को लेने में कोई दूसरे राजा समर्थ नहीं हैं ।६३८।

तं वयणं सोऊणं, खणेहीति समंतओ तओ थूभे ।
नंदस्स संतियं तं, पडिवज्जइ सो अहं हिरण्णं ६३९।
(तद्वचनं श्रुत्वा, खनत इति समन्तात् ततः स्तूपान् ।
नन्दस्य संचितं तत्, प्रतिपद्यते सोऽथ हिरण्यम् ।)

लोगों के उस वचन को सुन कर वह उन पांचों स्तूपों को सब ओर से खुदवायेगा और नन्द राजा द्वारा संचित उस सम्पूर्ण स्वर्ण को ग्रहण कर लेगा ।६३९।

सो अत्थपडिथद्धो, अण्ण नरिंदे तणे वि अगणिंतो ।
अह सव्वतो महंतं खणाविही पुरवरं सव्वं ।६४०
(स अर्थप्रतिस्तब्ध अन्य नरेन्द्रान् तृणान्यप्यगणयन् ।
अथ सर्वतो महान्तम् खनापयिष्यति पुरवरं सर्वम् ।)

वह उस अपार अर्थ राशि को पा कर प्रतिस्तब्ध अर्थोन्मत्त होगा। उसकी अर्थ लोलुपता और बढ़ेगी। अब तो वह अन्य सभी राजाओं को तृणतुल्य भी न गिनता अर्थात् मानता हुआ (इस) समस्त महान् नगर को सब ओर से खुदवायेगा ।६४०।

नामेण लोण देवी, गावी रूवेण नाम अइवुच्छा ।
धरणियलाउब्भूया, दीसिही सिलामई गावी ।६४१।

नाम्ना सौमनसी, गीर्वाण नाम मनुष्या ।
पश्चिमायाम् [illegible], [illegible] विलासवती गार्गी ॥

[illegible]
[illegible] देवी [illegible] ॥ १४ ॥

सा किल नाम्ना गार्गी, [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥ ६४२ ॥
सा किल [illegible] गार्गी, [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥

[illegible]
[illegible]

[illegible] ॥
[illegible] ॥ ६४३
[illegible]
[illegible] ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ।

नामक राजा समस्त साधु-संन्यासियों को एकत्र कर कहेगा--"तुम सब लोग मुझे कर दो" ।६५१।

रुद्धोय समणसंघो, अच्छिहीति सेसया य पासंडा ।
सव्वे दाहिंति करं, सहिरण्णसुवण्णिया जत्था ।६५२।
(रुद्धश्च श्रमणसंघः, स्थास्यति शेषकाश्च पाषण्डा ।
सर्वे दास्यन्ति करं, सहिरण्य सुवर्णिकाः यत्र ।)

कर देना स्वीकार न करने की दशा में श्रमण संघ उस राजा द्वारा अवरुद्ध हो वहीं रुका रहेगा। अन्य धर्मों के साधु संन्यासी तथा अन्य सभी पाखण्डी उस राजा को अपने-अपने पास के स्वर्ण में से कर के रूप में स्वर्ण देंगे ६५२।

सव्वे य कुपासंडे, मोयावेहि बला सलिंगाइं ।
अइ तिव्वलोहघत्थो, समणे वि अभिद्दवेसीय ।६५३।
(सर्वांश्च कुपासण्डान, मोचापयिष्यति बलात् स्वलिंगानि ।
अतितीव्रलोभग्रस्तः श्रमणानपि अभिद्रविष्यति च ।)

वह अन्य सब पाखण्डियों से बलपूर्वक उनका वेष उतरवा लेगा और अतीव तीव्र लोभ से अभिभूत हो वह श्रमणों को भी संताप देगा।६५३।

वोच्छंति य मयहरगा, अम्हं दायव्वं म किंचित्थ ।
जं नाम तुम्हलुब्भा, करेहि तं दायसी राय ।६५४।
(वक्ष्यन्ति च महत्तरका, अस्माकं दातव्यं द्रव्यं न किंचिदत्र ।
यत्-नाम त्वं लोभात् करं आदायसि राजन् ।

इस पर महत्तर संघ-स्थविर उसे कहेंगे -"हमारे पास देने के लिये ऐसी कोई वस्तु या द्रव्य नहीं है जिसे तुम लोभ के वशीभूत हो कर द्वारा लेना चाहते हो" ।६५४।

रोसेण खूसयंतो, सो कइ वि दिणा तहेव अच्छिहही ।
अह नगर देवया तं, अप्पणिया[1] भणिही राय ।६५५।

---

१. अप्पणिया दुरप्पा/त. २०/

(रोषेण मुंगुरायन्, स कत्यपि दिनानि तथैव स्थास्यति ।
अथ नगर देवता तं, आत्मीया भणिष्यति गाढम् ।)

वह कतिपय दिनों तक क्रोध से बड़बड़ाता हुआ श्रमण संघ को धमकाकर उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार करता रहेगा। अन्ततोगत्वा उसके नगर का अधिष्ठाता देव उससे कहेगा—।६५५।

किं दुट्ठ सरीरं, रे निग्गंथ किं बाहसे समणसंघं ।
सव्वं ते पज्जत्तं, नवु बहु दीहं पडिच्छाहि ।६५६।
(किं स्वर्गे मर्तुं यत्, नृशंस किं बाधते श्रमणसंघम् ।
सर्वं ते पर्याप्तं, ननु कति दिवसानि प्रतीक्षस्व ।)

क्या तुम शीघ्र ही मौत के मुँह में जाना चाहते हो जो श्रमण संघ को इस प्रकार पीड़ा पहुँचा रहे हो? तुम्हारी दुष्टता सीमा का अतिक्रमण कर चुकी है, अब तुम अधिक दिनों तक जीना नहीं चाहते?।६५६।

[illegible]मो सो, पडिओ पाएसु समणसंघस्स ।
कोवो दिट्ठो भयवं कुणह पसायं पसाएमि ।६५७।
(अथ पश्चात्तप्त: स, पतित: पादेषु श्रमणसंघस्य ।
कोप: दृष्ट: भगवन् ! कुरुत प्रसादं प्रसादयामि ।)

नगर देवता के ये वचन सुनते ही राजा चतुर्मुख भयभीत हो श्रमण संघ के चरणों में गिर पड़ेगा। उसके सब स्वप्न चकनाचूर हो जायेंगे। वह गिड़गिड़ाकर कहेगा—"भगवन्! मैंने आपके कोप को देख लिया, अब मुझ पर दया कीजिये। मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ।"।६५७।

किं [illegible], अह कि य बहुसु, अहिं न [illegible] ।
घोर [illegible] सर्वे, अह दिवसा सई [illegible] ।६५८।
([illegible], [illegible] न [illegible] (विशुद्धिम्) ।
घोर [illegible] सर्वे, अथ दिवसान् [illegible] ।)

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
इणमो वेयावच्चं, भणमाणाणं न वड्डिहिति ६६६।
(स्वामिक सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
इदं वैयावृत्यं, भणमाणानां न वर्तिष्यते ।)

"ओ सनत्कुमार देवलोक के स्वामी ! तुम श्रमण संघ के शरण्य बनो, यह श्रमण संघ की सेवा का अवसर है' —इस प्रकार कहते हुए श्रमण बाढ़ में नहीं बहेंगे ।६६६।

अलोइयं नीसल्ला, पच्चक्खाणेसु धणियमुज्जंता ।
उत्थप्पिहिंति समणी, गंगाए अग्गवेगेणं ।६६७।
(आलोचित निश्शल्या प्रत्याख्यानेषु धणिय (अतिशय) मुद्यच्छन्तः ।
उत्थाप्स्यन्ते श्रमण्यः, गंगाया अग्रवेगेन ।)

आलोचना कर निश्शल्य बनी हुई तथा प्रत्याख्यान करने में पूर्णतः उद्यत श्रमणियां गंगा के तीव्र वेग द्वारा पानी से बाहर पहुँचा दी जायेंगी ।६६७।

काओवि साहुणीओ, उवगरण धणिय राग पडिबद्धा ।
कलुण पलोयणि यातो, वसहि सहियातो वुज्झंति ।६६८।
(काचिदपि साध्व्य, उपकरणघनितरागप्रतिबद्धाः ।
करुण प्रलोकनिकास्ता, वसति सहितास्ततः वाह्यन्ते ।)

अपने उपकरणों के प्रति प्रगाढ अनुराग में बंधी हुई कतिपय श्रमणियां करुण दृष्टि से अपने उपकरणों को देखती हुई वसतियों सहित उस बाढ़ में डूब जायेंगी ।६६८।

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
इणमो वेयावच्चं, भणमाणीणं न वड्डिहिति ।६६९।
(स्वामिन् सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
इदं वैयावृत्यं, भणमानीनां न वर्तिष्यति ।)

"हे भगवत्कुमारेन्द्र ! तुम श्रमणसंघ के वात्सल्य बनो। यह वैयावृत्य (श्रमण श्रमणी की सेवा) का सुअवसर है"—इस प्रकार बोलती हुई साध्वियाँ बाढ़ से सुरक्षित रहेंगी ।६६।

आलोइय निग्गन्था, समणीओ पच्चक्खाइऊण दव्वगुणा ।
इत्थिपिहिंति पणियं, गंगाए कण्णवेगेणं ६७०।
आलोचितनिर्ग्रन्थाः श्रमण्यः प्रत्याख्याता द्रव्यगुणाः ।
उत्थास्यन्ते पणियं [तूर्णं], गंगाया कर्णवेगेन ।।

तीनों प्रकार के द्रव्यों की आलोचना की हुई प्रत्याख्यान कर [illegible] के लिये उद्यत साध्वियाँ गंगा के तीव्र वेग द्वारा तीव्र ही पानी से बाहर पहुँचा दी जायेंगी ।७०।

केई कलत्तविलग्गा, वच्चंति नरा समणीण संघाया ।
आयरियाईय सहा, उत्तिण्णा थीय कूलंमि ।६७१।
(केचित् कलत्रविलग्नाः प्रवहेयुः श्रमण श्रमणीनां संघाताः ।
आचार्यादिसहाया, उत्तीर्णाः द्वितीय कूले ।।)

श्रमणों एवं श्रमणियों के कतिपय [illegible] [illegible] और लकड़ी के पाटियों पर बैठ कर [illegible] [illegible] हुये ।७१।

समणाओ वि य बूढो, केई [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]. केई [illegible] [illegible] [illegible]
(श्रमणोऽपि च व्यूढाः, केचित् [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

उस समय भी कल्प और व्यवहार का धारक पंच महाव्रत रूपी संयम से संयत तपस्वी, सूत्रार्थों का मर्मज्ञ और पर शान्त आज्ञादृष्टि नामक श्रमण ।६८०।

वीरेण समाइट्ठो, तित्थोगालीए जुगप्पहाणोत्ति ।
सासण उण्णति जणणो, आयरितो होहिति धीरो ।६८१।
(वीरेण समादिष्टः, तीर्थोद्गाल्यां युगप्रधान इति ।
शासनोन्नतिजनकः, आचार्या भविष्यति धीरः ।)

जिसे "तीर्थोद्गारी" में श्रमण भगवान् महावीर ने युगप्रधान बताया है, जिन-शासन की उन्नति करने वाला अति धीर आचार्य होगा ।६८१।

पाडिवतो नामेण, अणगारो तह य सुविहिया समणा ।
दुक्खपरिमोयणट्ठा, छट्ठट्ठम तवे काहिंति ।६८२।
(प्रातीपव्रतः नाम्ना, अणगारस्तथा च सुविहिताः श्रमणाः ।
दुःखपरि मोचनार्थं. षष्टाष्टम तपांसि करिष्यन्ति ।)

प्रातिपद नामक एक अनगार तथा सुविहित परम्परा के श्रमण होंगे । वे जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होने के लिये षष्ठम (वेला) और अष्टम (तेला) आदि तप करेंगे ।६८२।

रोसेण मिसिमिसंतो, सो कइ दीहं तहेव अच्छीय ।
अह नगरदेवयाउ, अप्पिणिया वेत्ति वेसीया ।६८३।
(रोपेण मिसमिसायन् स कति [चित्] दिवसान् तथैव आस्थितः ।
अथ नगरदेवता तु, आत्मीया ब्रुवति आवेशिता ।)

क्रोधातिरेक से दांतों को किटकिटाता हुआ वह कतिपय दिनों तक उसी प्रकार श्रमण संघ को संताप देता रहेगा । इस पर नगर की अधिष्ठात्री देवी आवेश भरे स्वर में कहेगी—।६८३।

किं तूरसि मरिउं, जे निस्संसं किं वाहसे समणसंघं ।
सव्वं तं पज्जत्तं, णणु कइ दीहं पडिच्छाहि ।६८४।

निर्वाणगामी नायक ।

(किं स्वपिषि मनुज, रे नृशंस किं जाग्रते श्रमणसंघम् ।
मर्त्यं ननु पर्याप्तं, ननु कति दिवसान् प्रतीक्षसि ।)

"श्रमण संघ को पीड़ा पहुँचा कर तू क्यों चैन से सोता
जाता है, हम, तू पर्याप्त दुःख पा कर पूछा चैन अब तू कितने
दिन जीना चाहता है ? ।६८४।

सासणवि य अणुगंतो, छट्ठं भिक्खस्स मग्गए भागं ।
समणाणं निहिय, संघस्साराहणट्ठाए ।६८५।
(शासनमपि च [श्रमणं] अनुगच्छन्, षष्ठं भिक्षायाः मृग्यते भागम् ।
श्रमणानां निहिताः, संघस्याराधनार्थाय ।)

वैकुमारजी को अनुसुनी करते हुए वह श्रमणों से भिक्षा का
छठा भाग मांगने लगा । श्रमण संघ की आराधनार्थ अवर्णनीय
का विरुद्ध खड़ा हो गया ।६८५।

गोवाईवि निउत्ता, गमणा रोहेण मिलामिलावेणा ।
अंबा कवडो य मणंति, राय छट्ठंहि मग्गं [छ] मि
[रायं मा कुणंइ गच्छंति] ।६८६।
(गोपादयोऽपि निरुद्धाः गमनात् रोधेन मिलामिलापनात् ।
श्रमणा कपटश्च भणतः, राजन् मा कुरुत षष्ठं भिक्षु ।)

अयाद् कुछ कात्तर भिक्षा का छठा भाग कर के छत से देवा
ब्रीवार तू किसे करते की हत्या में श्वेतालिदेव के पावों को पीड़ते
हुए कामों के अनन्तर संघ की वार्तों को मजाक से बन्द कर दिया ।
वह ऐसा करता और वह उनको कहते हैं—"राजन् ! मत अब करो,
श्रमणों को कुछ भक्ष दे चुके हो ।" ।६८७।

कडुकाइडिउं, सगडाडकिंचं मग्गे इत्थो ।
अबीहु मोइंस, किं सिक्खाविओ हु ।६८७।
(काष्ठीभूतोऽपि कण्ठे, शकटस्य कार्दमिके तथा स्यात् ।
अश्वोऽपि अश्विता, किं शिक्षापिता अपि ।)

(देव इव श्रमणसंघः, पूजिष्यते सर्वनगरग्रामेषु ।
ऊनाः विंशति सहस्राः अनुपमः भविष्यति सत्कारः ।)

सभी नगरों एवं ग्रामों में देवोपम श्रमणसंघ की पूजा होगी। कुछ ही न्यून बीस हजार वर्षों तक श्रमण संघ का अपूर्व सत्कार होगा।६९३।

एवं च्चिय वासेसु, नवसुवि होहींति सक्काउ राया।
एगसमएण दसवि सक्कीसाणाओ काहिंति।६९४।
(एवं चैव वर्षेसु, नवस्वपि भविष्यन्ति शकाः राजानः।
एक समयेन दशाऽपि शकेशा आज्ञां करिष्यन्ति।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत और पांच ऐरवत–इन नौ ही क्षेत्रों में शक राजा होंगे। ये दशों ही शक राजा एक ही समय में अपनी राजाज्ञा चलायेंगे अर्थात् शासन करेंगे।६९४।

दत्तो वि महाराया, जिणाययण मंडियं वसुमतिं तु।
कारेहि सो सिग्घं, दिवसे दिवसे य सक्कारं।६९५।
(दत्तोऽपि महाराजा, जिनायतन-मंडितं वसुमतीं तु।
कारयिष्यति स शीघ्रं, दिवसे दिवसे च सत्कारम्।)

महाराजा दत्त भी शीघ्र ही पृथ्वी को जिनायतनों (जिनालयों) से मण्डित कर श्रमण संघ का दिन प्रतिदिन सत्कार करेगा।६९५।

तस्स सुओ जियसत्तू, तस्सविय सुतो उ मेघघोसोत्ति।
अन्नोन्नरायवंसा, जाव विमलवाहणो राया।६९६।
(तस्य सुतः जितशत्रुः, तस्यापि च सुतस्तु मेघघोष इति।
अन्योऽन्यराजवंशाः, यावत्-विमलवाहनः राजा।)

राजा दत्त का पुत्र होगा राजा जितशत्रु और जितशत्रु का पुत्र राजा मेघघोष। इस प्रकार राजा विमलवाहन तक अन्यान्य राजवंश होंगे।६९६।

(नवस्वपि वर्षेस्वेवं, मनः परमावधि पुलाकादीनाम् ।
समकाले व्युच्छेदः, तीर्थोद्गाल्यां निर्दिष्टः ।)

इस प्रकार शेष ९ क्षेत्रों में भी मनःपर्यवज्ञान, परमावधि, पुलाकलब्धि आदि १० विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों का एक साथ एक ही समय में विच्छेद होना "तीर्थोगाली" (तीर्थ---ओगाली--तीर्थ प्रवाह) में बताया गया है ।७००।

चोद्दस पुव्वच्छेदो, वरिससते सत्तरे विणिदिट्ठो ।
साहुम्मि थूल भद्दे, अन्ने य इमे भवे भावा ।७०१।
(चतुर्दशपूर्वच्छेदः[1] वर्ष शते [च] सप्ततौ विनिर्दिष्टः ।
साधौ स्थूल-भद्रे, अन्ये च इमे भवेयुः भावाः ।)

(श्रुतकेवली भद्रबाहु के स्वर्गगमन के पश्चात्) वीर निर्वाण वर्ष १७० में साधु स्थूलभद्र में चतुर्दश पूर्वों का छेद अर्थात् ह्रास बताया गया है। अन्य भी ये (निम्नलिखित) घटनाएं घटित होने का निर्देश किया गया है ।७०१।

कोवीकय सज्झातो, समणो समण गुण निउण चिंतइ उं ।
पुच्छइ गणिं सुविहियं, अइसयनाणिं महासत्तं ।७०२।
(कोऽपि कृतस्वाध्यायः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तकः ।
पृच्छति गणिनं सुविहितं, अतिशय ज्ञानिनं महासत्त्वम् ।)

श्रमण के गुणों में निपुण एवं चिन्तक एक साधु स्वाध्याय करने के पश्चात् सुविहित परम्परा के अतिशय ज्ञानी एवं महासत्वशाली गणाचार्य से पूछता है ।७०२।

भगवं कह पुव्वाओ, नट्ठाओ उवरियाइं चत्तारि ।
एयं जहा विदिट्ठं, इच्छह सब्भावतो कहिउं ।७०३।
(भगवन् कथं पूर्वाणि नष्टानि उपरिमानि चत्वारि ।
एतद् यथा विद्दष्टं, इच्छथ सद्भावतः कथितुं ।)

१ पूर्वतर चतुर्पूर्वाणां विच्छेदात् चतुर्दशपूर्वह्रासं-हानिरित्यर्थः । छेदशब्दोऽत्र ह्रास द्योतक एव न तु विलुप्ति द्योतकः ।

"भगवन् ! ऊपर के चार पूर्व (ग्यारहवें पूर्व से चौदहवें तक) किस प्रकार नष्ट हो गये ? यह आपने जिस प्रकार देखा (ज्ञानालोक में देखा, अथवा सुना) है उसी प्रकार कहने की कृपा कीजिये।" ७०३।

जह पाडलस्स कुसुमपयरस्सवि परंपरागओ गंधो ।
संकमती गंधओ अहियवरं पागडो होइ ।७०४।
(यथा पाटलस्य कुसुम प्रकरस्यापि परम्परागतः गंधः ।
संक्रामी संक्रान्त अधिकतरं प्रकटीभवति ।)

आचार्य ने भगवन् के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा — "जिस प्रकार पूर्वविदित पुष्पों वाले पाटल अर्थात् गुलाब के पुष्प की परम्परागत सुगन्ध अच्छे गांधी के सम्पर्क से और अधिक विकसित एवं प्रकट होती है।७०४।

एवं सुयधर पडिपुण्णओ, नगो परम मंदमेहावी ।
होइहि पुण्णओ पुण, जह पाव दुग्गंधओ होई ।७०५।
(एवं श्रुतधर परिपूर्णकाः, नगो परममंद मेधावी ।
भविष्य पूर्णकः पुनः, यथा पाप दुर्गन्धितः भवति ।

उसी प्रकार परम मन्द मनुष्य भी [illegible] [illegible] पूर्ण [illegible] हो जाता है। उसी प्रकार पुण्य भी [illegible] यह दुर्गन्धपूर्ण हो जाता है ।७०५।

[illegible]

[illegible] हिययस्स [illegible] न हि [illegible] ।
[illegible] ।७०६।

(विज्ञानं जिन वचनं, कदापि नापि दीयते अधन्यस्य ।
धन्यस्य दीयते पुनः, श्रद्धानस्य भावेन ।)

जिन वाणी एवं विशिष्ट ज्ञान कभी किसी अधन्य अर्थात् हीन अथवा अधम पुरुष को नहीं देना चाहिये। वह केवल आन्तरिक श्रद्धाशील उत्तम पुरुष को ही देना चाहिए ७०६।

अम्हं आयरियाणं, सुतीए कण्णाहडं वा सोउं ।
जे तित्थोगालीएयं, एगमणा से निसामेह ।७०७।
(अस्माकं आचार्याणां श्रुत्वा कर्णाहृतं वा श्रुत्वा ।
यत् तीर्थोद्गालिकायां, एकमनसा तत् निशामयतः ।

मैंने अपने आचार्यों के मुख से अथवा परम्परागत श्रुति के आधार से तीर्थोगाली अर्थात् तीर्थों के प्रवाह के सम्बन्ध में सुन कर जो जाना है, उसे तुम एकाग्रचित्त हो सुनो ।७०७।

तिण्णि य वासा मासद्ध अट्ठ बावत्तरिंय सेसाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो जातो वद्माण रिसी ।७०८।
(त्रयश्च वर्षाः मासार्द्धाष्ट द्वासप्ततिश्च शेषाणि ।
शेषायां चतुर्थ्यां, ततः जातो वर्द्धमानर्षिः ।)

चतुर्थ आरक की समाप्ति में जब पचहत्तर (७५) वर्ष और साढा आठ मास शेष रहे तब महर्षि भगवान् महावीर का जन्म हुआ ।७०८।

अद्ध य सट्ठामासा, तिन्नेव हवन्ति तह य वासाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो कालगतो महावीरो ।७०९।
(अर्द्धश्च साष्टामासाः त्रय एव भवन्ति तथा च वर्षाः ।
शेषायां चतुर्थ्यां, ततः कालगतो महावीरः ।)

जब चतुर्थ आरक की समाप्ति में तीन वर्ष और साढा आठ मास अवशिष्ट थे, तब भगवान महावीर मोक्ष पधारे ।७०९।

मृत्यु से बचे हुए शेष साधु सुदीर्घ काल के पश्चात् उस समय एक दूसरे को देख कर यह अनुभव करने लगे मानो वे परलोक में जा कर पुनः जीवित हो लौटे हों ।७२०।

ते विंति एक्कमेक्कं, सज्झाउ कस्स कित्ताउ धरति ।
हंदि हु दुक्कालेणं, अम्हं नट्ठो हु सज्झातो ।७२१।
(ते ब्रुवन्ति एकमेकं, स्वाध्यायः कस्य कियान् धरति ।
हंत ! इह तु दुष्कालेन, अस्माकं नष्टो हि स्वाध्यायः ।)

वे परस्पर एक दूसरे से पूछते हैं कि किस किस को कितना-कितना आगम पाठ कण्ठस्थ है । हा ! दुष्काल के कारण हमें तो स्वाध्याय-अर्थात् आगम-पाठ विस्मृत हो गया है ।७२१।

जं जस्स धरइ कंठे, तं तं परि यट्टिऊण सव्वेसिं ।
तीणेहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कार संगाइं ।७२२।
(यद् यस्य धरति कण्ठे, तत्तत् परावर्तयित्वा सर्वेषाम् ।
तैः पिण्डितानि, तत्र एकादशांगानि ।)

जिस जिस साधु को जितना जितना पाठ कण्ठस्थ था, उस उस पाठ को सुन कर सब के आगम पाठों का परावर्तन किया गया और इस प्रकार उन्होंने (ज्ञान स्थविरों ने) वहां ग्यारह अंगों का पाठ यथावत् क्रमबद्ध, सुनिश्चित, सुव्यवस्थित कर प्रत्येक अंग को पूर्णतः एकत्रित किया ।७२२।

ते विंति सव्व सारस्स, दिट्ठिवायस्स नत्थि पडिसारे ।
कह पुव्वगएण विणा य, पवयणं सारं धरेहामो ।७२३।
(ते ब्रुवन्ति सर्वसारस्य, दृष्टिवादस्य नास्ति प्रतिसार [प्रतिस्मारः]
कथं पूर्वगतेन विना च, प्रवचनसारं धरिष्यामः ।)

एकादशांगी को सुव्यवस्थित करने के पश्चात् वे श्रमण कहते हैं—"सम्पूर्ण ज्ञान का सारभूत दृष्टिवाद तो किसी को स्मरण नहीं है । पूर्वगत ज्ञान के विना हम सब प्रवचन के सार को किस प्रकार धारण कर सकेंगे ? ।७२३।

गवयस्स (पयस्स) मच्चमूलम्, नवरि गीहनदि अवसिन्नाइं ।
दुम्लाई अपगतन्न इ, न याविनिवि भणिय वट्टिनाओ ॥२४॥
(पिडवास गहवाहि, नवरं न्तुई माविं नवाहिमा: ।
[illegible] न ह, न [illegible] भणिन मोजनाः ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]

गो रिव पडिल सुओ, [illegible] ओग पडिवसी ।
[illegible] न ते [illegible] या, [illegible] भाग ॥२५॥
[illegible], [illegible] ।
[illegible] न वा [illegible] वा, [illegible] ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥२६॥
[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]
[illegible]

"पूर्वश्रुतक्रमधर ! भगवान् महावीर का वर्तमानकालिक समस्त संघ आपसे प्रार्थना करता है—याचना करता है कि आप पूर्वों की वाचना दें" ।७२७।

सो भणति एव भणिए, अतिइ्ढ किलिट्ठएण वायणाणं ।
न हु ता अहं समत्थो, इण्हि से वायणं दाउं ।७२८।
(स भणति एवं भणिते, अतिरुद्ध-क्लिष्टत्वात् वाचनानाम् ।
न खलु तावदहं समर्थः, एतासां भो वाचनां दातुम् ।

संघाटक के इस कथन को सुन कर भद्रबाहु ने कहा—"पूर्वों की वाचनाएं गहन-गम्भीर, गूढार्थपूर्ण और नितान्त क्लिष्ट हैं अतः मैं इनकी वाचनाएं देने में समर्थ नहीं हूं ।७२८।

अप्पट्ठे आउत्तस्स, मज्झ किं वायणाए कायव्वं ।
एवं च भणियमेत्ता, रोसस्सवसं गया साहू ७२९।
(आत्मार्थे आयुक्तस्य, मम किं वाचनया कर्त्तव्यम् (करणीयम्) ।
एवं च भणितमात्रा, रोषस्यवशं गताः साधवः ।)

आत्मकल्याण में संलग्न मुझे वाचनाओं से क्या करना है। भद्रबाहु इतना ही कह पाये थे कि संघातक के साधु रोष के वशीभूत हो गये ।७२९।

(अह विण्णविंति साहू, हंतेवं पसिणपुच्छणं अम्हं ।
एवं भणंतस्स तुहं, को दंडो होइ तं भणसु ।७३०।)
(अथ विज्ञपयन्ति साधवः, हंत ! एवं प्रश्न पृच्छनमस्माकम् ।
एवं भणतस्य तव, को दंडः भवति तद् भण ।)

तदनन्तर वे साधु भद्रबाहु को विज्ञप्त करते हुए कहते हैं—"हमें दुःख के साथ आप से एक प्रश्न पूछना पड़ रहा है कि इस प्रकार की बात कहते हुए आप किस दण्ड के भागी होते हैं ? आप हमें यह बता दीजिये ।७३०।

सो भणति एव भणिए, अविसन्नो वीरवयणे नियमेण ।
वज्जेयव्वो सुयनिण्हवोत्ति, अह सव्व साहूहिं ।७३१।)

श्रमण संघाटक के इस कथन पर अपयशभीरु, यशस्वी एवं धैर्यशाली भद्रबाहु ने कहा--"मैं एक स्थिति में अर्थात् एक शर्त पर वाचना देना चाहता हूं--।७३४।

अप्पट्ठे आउत्तो, परमट्ठे सुट्ठु दाणि उज्जुत्तो ।
न वि हं वाहरियव्वो, अहं पि न विवाहरिस्सामि ।७३५।
(आत्मार्थे आयुक्तः, परमार्थे सुष्ठु इदानीं उद्युक्तः ।
नाप्यहं व्याहर्त्तव्यः अहमपि न विव्याहरिष्यामि ।)

आत्मकल्याण में संलग्न तथा परमार्थ में इस समय अच्छी तरह उद्यत मुझे न तो कोई अन्य कुछ कहे और न मैं ही किसी को कुछ कहूंगा ।७३५।

पारिय काउसग्गो, भत्तट्ठितो व अहव सज्झाए[२] ।
निंतो व आइंतो वा, एवं भे वायणं दाहं ।७३६।
(पारित कायोत्सर्गः, भक्तास्थितो वाथवा स्वाध्याये (शय्यायाम्) ।
गच्छन् वा आगच्छन् वा एवं भवतां वाचनां दास्यामि ।)

कायोत्सर्ग के पारण के पश्चात् भोजनार्थ बैठा हुआ, अथवा स्वाध्याय में निरत, कहीं जाता हुआ अथवा कहीं आता हुआ--मैं वाचनाएं दूंगा ।७३६।

वाढं ति समणसंघो, अम्हे अणुमन्निमो तुहं छंदं ।
देहि य धम्मो वाहं, तुम्हं छंदेण हिच्चामो ।७३७।
(वाढं ! इति श्रमणसंघः, वयमनुमन्यामहे तव छंदम् ।
देहि य धर्मे वाहं त्वां छन्देन जहिमः ।

श्रमण संघ के प्रतिनिधि संघाटक ने कहा--'बिल्कुल ठीक है, हम आपके इस छंद (शर्त) को स्वीकार करते हैं। आप धर्म को प्रवाह दीजिये अर्थात् वाचनाएं दीजिये। हम आपको सब प्रकार के छंद (शर्त) से मुक्त करते हैं ।७३७।

---

२ सेज्जाए--(शय्यायां) इति पाठान्तरमप्युपलभ्यते ।

ते भासी मेहावी, दन्नुणा गहण धारणे समत्था ।
मार्ग पंचसयाइं, सिक्खगसाहूण गहियाइं ॥७३८॥
(ते भगवन्तः मेधाविनः उद्युक्ताः, ग्रहणधारणसमर्थाः ।
तेषां पञ्चशतानि, शैक्षक साधूनां गृहीतानि ।

श्री पूर्वगत शास्त्र को ग्रहण एवं धारण करने में समर्थ तथा
पूर्वों का अध्ययन करने के लिये उत्साहित थे ऐसे ५०० विद्यार्थी
शिक्षार्थी श्रमणों को पूर्वों के ज्ञान की साधना ग्रहण करने के लिये
चुना गया ७३८।

वेयावच्चगरा ते पढमंकम्मुवट्ठविया दो दो ।
भिक्खंमि अपडिबद्धा, दिणा य रत्तिं च सिक्खंति ॥७३९॥
वैयावृत्त्यकारकेषु एकैकस्य उपस्थापिता द्वौ द्वौ ।
भिक्षायाम प्रतिबद्धाः दिवा च रात्रौ च शिक्षन्ते ॥)

उन ५०० श्रमणों में से प्रत्येक की वैयावृत्य अर्थात् सेवा के
लिये दो-दो श्रमणों को नियुक्त किया गया। भिक्षाटन आदि कार्यों
से निश्चिन्त वे ५०० शिक्षार्थी साधु रात और दिन पूर्वों का ज्ञान
सीखने लगे ७३९।

ते एगं, संघ साहू, वायण परिपुच्छणाए परिसंता ।
वायणं अलहंता, तत्थ य ते किंचि भणमाणा ॥७४०॥
ते एकः, संघ साधवः, वाचन परिपृच्छनया परिश्रान्ताः ।
वाचनाम् अलभमानाः, तत्र च किंचिदपि भणमानाः ॥)

एक एक करके उन ही क्रम के शिक्षार्थी साधु वाचना तथा
परिपृच्छना अर्थात् बार-बार की पृच्छना से श्रान्त हो एवं ग्रहण-
करने पूर्वगत ज्ञान की पर्याप्त निरन्तर वाचना प्राप्त होने की
आशा से पूरी तरह और न करने वाले ...

उज्जुगचा मेहावी, सिक्खू उ जन्नं अदमणाल्ला ।
अह मे थोवा थोवा, सव्वे तत्थ विनिग्गया ॥७४१॥

(उद्युक्ताः मेधाविनः, अवशिष्टास्तु वाचनां अलभमानाः।
अथ ते स्तोकाः स्तोकाः, सर्वे श्रमणाः विनिस्सृताः।)

शिक्षा ग्रहण करने के लिये समुद्यत शेष मेधावी शिक्षार्थी साधु यथेप्सित वाचनाओं के न मिलने के कारण वहां से थोड़ी संख्या में निकलने लगे। इस प्रकार सभी शिक्षार्थी श्रमण नेपाल छोड़ कर निकल आये।७४१।

एक्को नवरि न मुंचति, सकडाल कुलस्स जसकरो धीरो।
नामेण थूलभद्दो, अविहिंसा-धम्मभद्दो त्ति।७४२।
(एको नवरं न मुंचति, सकडाल कुलस्य यशकरः धीरो।
नाम्ना स्थूलभद्र, अविहिंसा-धर्मभद्रः इति।)

केवल एक--शकडाल कुल का यश बढ़ाने वाले धीर अहिंसा रूपी आत्म धर्म में जागरूक स्थूलभद्र नामक साधु श्रुतकेवली भद्रबाहु के सान्निध्य को नहीं छोड़ता है अर्थात् पूर्वगत की वाचनाएं ग्रहण करता रहता है।७४२।

सो नवरि अपरितंतो, पयमद्धपयं च तत्थ सिक्खंतो।
अन्तेइ भद्दबाहुं, थिरबाहुं अट्ठवरिसाइं।७४३।
स नवरं अपरिश्रान्तः, पदमर्द्धपदं च तत्र शैक्ष्यन्।
अन्ते एति [अन्तेवसति] भद्रबाहुं, स्थिरबाहुं अष्ट-वर्षाणि)

बिना किसी प्रकार की निराशा एवं संताप के वह बड़े धैर्य के साथ प्रतिदिन एक पद अथवा आधा पद सीखता हुआ दृढ़ बाहुओं वाले भद्रबाहु की सेवा में आठ (८) वर्षों तक रहता है।७४३।

सुन्दर अट्ठपयाइं, अट्ठहिं वासेहिं अट्ठमं पुव्वं।
भिंदति अभिण्णहियतो, आमेले उं अह पवत्तो।७४४।
(सुन्दरार्थपदानि, अष्टभिर्वर्षैरष्टमं पूर्वम्।
भिनत्ति अभिन्नहृदये, आमेलयितुमथप्रवृत्तः।)

स्थूलभद्र एकाग्रचित्त हो पूर्वगत के सुन्दर पुरार्थ भरे गहन-गम्भीर अर्थ पदों एवं आठ वर्षों में आठवें पूर्व का अवगाहन करता हुआ उन्हें हृदयंगम करने में प्रवृत्त रहा। ७४४।

तस्स वि ताव पवत्तो, तवनियमो एव भद्दबाहुस्स ।
जो पारिय तवनियमो, वाहरिउं ते भइ पवत्तो ।७४५।
(तस्यापि इतानीं प्रवृत्तः, तपनियम एवं भद्रबाहोः ।
स पारित-तपनियमः व्याहर्तुं तत् अथ प्रवृत्तः ।)

उधर भद्र भद्रबाहु का भी तप-नियम सम्पन्न हुआ । तप-नियम की पारिता कर भद्रबाहु अपने जिज्ञासु शिष्य स्थूलभद्र को पूर्वों की अधिकाधिक वाचनाएं देने में प्रवृत्त हुए। ७४५।
(७४६ की रचना त्रुटित है छोड़ दी है)

अह भणइ भद्दबाहू, पढमं ता अट्ठमस्स वासस्स ।
अणगार न हु किलिम्मसि, भिक्खे सज्झाय-जोगे य ।७४७।
(अथ भणति भद्रबाहु, प्रथमं तावत् अष्टमस्य वर्षस्य ।
अनगार ! न खलु क्लाम्यसि, भिक्षायां स्वाध्याय-योगे च ।)

आचार्य भद्रबाहु आठवें वर्ष के प्रारम्भ में शिष्य से पूछते हैं—"अनगार ! तुम्हें भिक्षा एवं स्वाध्याय के योग में किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हो रहा है ? ७४७

तो अट्ठमस्स वासस्स, तेण पडिभणियं भयवं ।
केत्तियं च करेमि कीलं, अइवाहए भणियं भयवं ।७४८।
(स अष्टमस्य वर्षस्य, तेन प्रतिभणितो भगवन् ।
कियन्तं च क्लेशं करोमि, कियत् अतिवाहितं कथय भगवन् ।)

आठवें वर्ष के प्रारम्भ में भद्रबाहु द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में श्री स्थूलभद्र ने कहा—"भगवन् ! पढ़ने का कष्ट करते हुए मुझे अभी कितना अध्ययन शेष है, कृपया निर्देश करावें ।

समय मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट कैसे हो सकता है, अर्थात् मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है ।७४८।

एक्कं तो भे पुच्छं, केत्तियमेत्तं मि सिक्खतो होज्जा ।
कत्तियमेत्तं च गयं, अट्ठहिं वासेहिं ता किं लद्धं ।७४९।
(एकं तु भवन्तं पृच्छामि, कियन्मात्र मया शिक्षितं भवेत् ।
कियन्मात्रं च गतं, अष्टभिर्वर्षैस्तावत् किं लब्धम् ।)

हाँ, मैं एक बात आपसे जानना चाहता हूँ कि मुझे कुल कितना सीखना था, उसमें से कितना सीख चुका हूँ---इन (विगत) आठ वर्षों में मैंने क्या (कितना) प्राप्त कर लिया है ? ७४९।

मंदर गिरिस्स पासंमि, सरिसवं निक्खिवेज्ज जो पुरिसो ।
सरिसव मेत्तं ति गयं, मंदरमेत्तं च ते सेसं ।७५०।
(मन्दरगिरेः पार्श्वे, सर्षपं निक्षिपेत यः पुरुषः ।
सर्षपमात्रं ते गतं, मंदरमितं च ते शेषम् ।)

गिरिराज मन्दराचल के पार्श्व में कोई पुरुष सरसों का एक दाना रख दे और फिर तुम्हारे द्वारा सीखे हुए ज्ञान और अब सीखने के लिये अवशिष्ट रहे ज्ञान की तुलना की जाय तो वस्तुतः मन्दराचल के पार्श्व में पड़े सरसों के एक दाने जितना ज्ञान तुमने सीखा है तथा मंदराचल जितना ज्ञान सीखने के लिये अवशिष्ट रहा है ।७५०।

सो भणइ एवं भणिए, भीतो व वि ताअहं समत्थोमि ।
अप्पं च मई आउ, वहुसुय मन्दरो सेसो ।७५१।
(स भणति एवं भणिते, भीतो नापि तावदहं समर्थोऽस्मि ।
अल्पं च मम आयुः, बहुश्रुतमन्दरः शेषः ।)

भद्रवाहु के इस कथन को सुन कर श्रमण स्थूलभद्र ने भय विह्वल स्वर में कहा---"तो मैं तो इसे सीखने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि आयु तो मेरी थोड़ी है और श्रुत शास्त्र का इतना सुविशाल मन्दराचल तुल्य भाग सीखना शेष है" ।७५१।

मा मग्गिहि निट्ठविहिमि, अन्नवरेण धीर कालेण ।
मज्झ नियमो समत्तो, पुच्छाहि दिवा य रत्तिं च ।७४२।
(मा मार्गय निष्ठापयिष्यामि, अन्यतरेण धीर ! कालेन ।
मम नियमः समाप्तः, पृच्छ दिवा च रात्रिं च ।।)

स्थूलभद्र को आश्वस्त करते हुए भद्रबाहु ने कहा—"धीर ! डरो नहीं । तुम थोड़े से ही समय में इसे समाप्त कर लोगे । मेरा नियम समाप्त हो गया है । अतः अब तुम रात दिन पृच्छाएं करते हुए पूर्वों का अध्ययन करो" ।७४२।

सो सिक्खिउं पयत्तो, दट्ठूणं गुरुं दिट्ठिवायंपि ।
पुव्वकमेणेव नविं, पुव्वगयं पुव्व-निद्दिट्ठं ।७४३।
(स शिक्षितुं प्रवृत्तः, दृष्ट्वा गुरुं दृष्टिवादे ।
पूर्वक्रमेणैव नवीनं, पूर्वगतं पूर्वनिर्दिष्टम् ।।)

इस से प्रोत्साहित हो दृष्टिवाद में [illegible] मुनि स्थूलभद्र पूर्व [illegible] के पश्चात् पूर्व निर्दिष्ट पूर्वक्रम से सीखने में और अधिक प्रयत्नशील हुए ।७४३।

सिक्खि दसवत्थुसयं पुव्वं अभिसरति वायणाओ धीर ।
जति नवो अविगीओ, गुरुवयणा चंदण निहिंसं ।७४४।
(शिक्षते दशवस्तुकं पूर्वं, अधिसरति वाचनायां धीर ।
यतिः नवः अविगीतः, गुरुवचनः चन्दननिभिसम् ।।)

इस स्थूलभद्र [illegible] ।७४४।

तइया य अणगारीआ, भूया सह रत्ति दुत्तिहेलाए ।
सुंभा सेणा रेणा, भगिणीओ थूलभद्दस्स ।७४५।

(नास्त्यत्र कोऽपि सिंहः, स चैव चैपः भ्रातृकः युष्माकम् ।
ऋद्धिपात्रो जातः, श्रुतस्य ऋद्धिं प्रदर्शयति ।)

भद्रबाहु ने कहा---"यहां कोई सिंह नहीं है, वह तुम्हारा भाई ही है। वह ऋद्धियों का पात्र अर्थात् ऋद्धि घर बन गया है और श्रुत-ऋद्धि का प्रदर्शन कर रहा है ।७६२।

तं वयणं सोऊणं, तातो अंचियतणुरुहसरीरा ।
संपत्तिया उ तत्तो, जत्तो सो थूलभदरिसी ।७६३।
(तद् वचनं श्रुत्वा, तास्तु अंचिततनुरुहशरीराः ।
सम्प्राप्तास्ततः यत्र स स्थूलभद्र ऋषिः ।)

भद्रबाहु के वचन सुनते ही हर्षवशात् रोमांचित हुई वे सातों साध्वियां उस स्थान पर पहुँची जहां स्थूलभद्र ऋषि थे ।७६३।

जह सागरोव्व उव्वल मतिगतो पडिगतो सयं ठाणं ।
स पलियंक निसन्नो, धम्मझाणं पुणो झाइ ७६४।
(यथा सागरो वा उद्वेल मतिगतः प्रतिगतः स्वकं स्थानम् ।
स पर्यंकनिषण्णः, धर्मध्यानं पुनः ध्याति ।)

उद्वेलित समुद्र जिस प्रकार उद्वेलन के पश्चात् पुनः अपने स्थान पर चला जाता है ठीक उसी प्रकार स्थूलभद्र भी सिंह के रूप से पुनः निज स्वरूप में आकर पर्यंकासन से बैठ कर पुनः धर्म ध्यान में संलग्न हुए ।७६४।

दुपुट्ठमहुकंठ, सो परियट्टेइ तात्र पाढमयं ।
भणियं च ताहिं भाउम, सीहं दट्ठूण ते भीया ।७६५।
(द्रुत पुष्ट मधुरकण्ठेन स परावर्तयति तात्रत्पाठमयम् ।
भणितं च ताभिर्भ्रात्रिक ! सिंह दृष्ट्वा तव भीताः)

वे मधुर स्वर में द्रुत गति से अपने पाठ का परावर्तन करने लगे। बहिनों ने कहा---'भैय्या ! हम तो आपके सिंह को देख कर डर गई थीं ।७६५।

सो वि य पागडदंतं, दंसिन्तुय निय कमल सच्छदं हसिउं ।
भणइ य गारवणाए, सुय बुद्धी दंसिनीया य मए ॥७६६॥
(सोऽपि च प्रकटदन्तं, दर्शय निजकमल समानं हसित्वा ।
भणति च गारवतया, श्रुतबुद्धिः दर्शिता च मया ।)

स्पृशनक ने हंस कर श्वेत कमल के समान सफेद दांतों को दिखाते हुए गर्व से कहा — यह तो मैंने श्रुत आदि प्रदर्शित की थी ॥७६६॥

तं वयणं सोऊणं, भाओ अंगिय तणुरुहगीता ।
कुव्वंति पंजलिय उडा, पागडणत्थे सुणिउणत्थे ॥७६७॥
(तद्वचनं श्रुत्वा भ्रातृ अंगितनूरुहगीताः ।
कुर्वन्ति प्राञ्जलिक पुटाः प्रकटनार्थाय सुनिपुणार्थाय ।)

अपने भाई के वचनों को सुन कर हर्षातिरेक से उसके शरीर के रोमांच खड़े हो गए । तदनन्तर वे भाओ नाभियां हाथ जोड़ कर स्पृशनक के व्याकरण (प्रथम व्याकरण) के प्रति सुन्दर प्रशंसा करने लगी ॥७६७॥

इयरोवि य अमिलीओ, विनडिडण पुलेमइ रिगो ।
उविणंवि हेउवडे, गमाणवुवट्ठिओ कउ ॥७६८॥
(इतरोऽपि च अशिष्टः, विडंबिता स्पृशनक व्याधिः ।
दर्शिते हेतुवादे, अकस्मात्प्रवर्तितः कथं न ।)

तदनन्तर स्पृशनक अपने इतर की हंसी को दिखा कर कलुषित भावना वाले उपदेश की हंसी से हर्षित हुए ॥७६८॥

अह भणइ भाउओ, अगणइ अन्नाहि रुपिवं तुम्हं ।
पीइवुमो भयणु, पुच्छिन्तो रियलं मे ॥७६९॥
(अथ भणति भ्रातृकं अभद्र ! अन्यं हि दृष्टं तुम्हम् ।
स्पर्शेंद्रिय भ्रातृ, इदम् सर्वं प्रच्छ मे ।)

स्थूलभद्र को वाचना लेने हेतु उपस्थित देख भद्रवाहु ने कहा- "अणगार ! तुम्हारे लिये इतना पूर्वज्ञान ही पर्याप्त है। अब इन्हीं का परावर्तन करते हुए और स्पष्टतः इन्हें हृदयंगम करते रहो" ।७६९।

अह भणइ थूलभद्दो, पच्छायावेण ताविय सरीरो ।
इड्ढीगारवयाए, सुयविसयं जेण अवरद्धं ।७७०।
(अथ भणति स्थूलभद्रः, पश्चाचापेन तापित शरीरः ।
ऋद्धिगारवतया, श्रुतविषयं येन अपराद्धं ।)

ऋद्धि के गर्व के वशीभूत हो जिन्होंने श्रुत विषयक अपराध किया था, उन स्थूल भद्र का शरीर (तन-मन) पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। उन्होंने भद्रवाहु की सेवा में निवेदन किया--।७७०।

न वि ताव मज्झ मण्णु, जह मे ण समाणियाइं पुव्वाइं ।
अप्पा हु मए अवराहितो त्ति, पलियं खु से मण्णु ।७७१।
(नापि तावत् मह्यं मन्युः, यथा मया न समानितानि पूर्वाणि ।
आत्मा खलु मया अपराद्ध इति, पलितं खलु मे मन्युः ।)

मुझे इस बात का उतना दुःख नहीं है कि मैंने सम्पूर्ण पूर्वों का ज्ञान प्राप्त नहीं कि किन्तु मुझे इस बात का घोर दुःख है कि मैंने अपनी आत्मा के साथ अपराध किया है ।७७१।

एतेहिं नासियव्वं, मए विणा वि जह सासणे भणियं ।
जं पुण मे अवरद्धं, एयं पुण डहति सव्वंगं ।७७२।
(एतैः नाशितव्यं, मया विनापि, यथा शासने भणितम् ।
यत् पुनः मया अपराद्धं एतत् पुनर्दहति सर्वाङ्गम् ।)

जैसा कि जिनशासन में कहा गया है, मेरे विना भी इनका नाश अवश्यंभावी है। पर जो मैंने अपराध किया है, वह मेरे अंग प्रत्यंग को जला रहा है ।७७२।

वोच्छंति य भयहरगा, अणागया जे य संपतिकाले ।
गारविय थूलभद्दम्मि, नाम नट्ठाइं पुव्वाइं ।७७३।

(दृश्यन्ति च महत्परा, अनागताः ये न लप्स्यन्ति काले ;
गतविक स्थूलभद्रं, नाम नप्स्यन्ति पूर्वाणि ।)

भविष्यत् काल और वर्तमान काल के महत्तर (आचार्य आदि) यहाँ स्थूलभद्र में (चार) पूर्व नष्ट हुए (७३)।

अह निष्णविति साहू, गणठ्वा करिय अंजलिं सीसे ।
महत्ल मा पसीयह, इणमेग एक्कमवराहम्मि ।७७४।
(अथ विज्ञपयन्ति साधवः, गणान्तस्थाः कृत्वा अंजलिं शीर्षे ।
भद्रक तावत् प्रसीद, अस्य एकमपराधम् ।)

इस गच्छ के साधु साञ्जलि शीश झुका कर भद्रबाहु से प्रार्थना करते हैं—'स्थूलभद्र के एक मात्र इस अपराध को क्षमा कर दें... [illegible] हीं (७७४)।

रागेण व दोसेण व, जं च पमाएण किंचि अवरद्धं ।
तं मे स खमाहुणं, अपुणक्कारं गमावेति ।७७५।
(रागेण वा दोषेण वा, यच्च प्रमादेन किंचिदपराद्धम् ।
तन्मे स क्षमाहूणं, अपुनःकारं गमयति ।)

रागवश, दोषवश अथवा प्रमादवश ही स्थूलभद्र ने जो भी अपराध किया है... [illegible] के इस अपराध को—फिर कभी इस प्रकार का अपराध नहीं करेगा—इस प्रतिज्ञा के साथ क्षमा करता है (७७५)।

अह गुरुणोश्च तममत्थमाहूणा भद्दबाहुणा भणियं ।
मा गुच्छह निव्वेहं, कायव्वं जिणावेहं ।७७६।
(अथ गुरुवरी-श्रोतव्यान्-अहूणा भद्रबाहुना भणितम् ।
मा कुरुत निर्वेदं, कायव्यं जिनावेहम् ।)

इसके बाद के [illegible] की प्रार्थना सुन कर ... भद्रबाहु ने कहा... [illegible]
... [illegible]

रायकुल सरिसभूते, सगडाल कुलम्मि एस संभूतो ।
गेह गओ चेव पुणो, निण्हातो सव्व सत्थेसु ।७७७।
(राजकुल सदृश भूते, शकटालकुले एषः सम्भूतः ।
गेह गतश्चैव पुनः, निष्णातः सर्वशास्त्रेषु ।)

राजकुल के समान महान् शकडाल कुल में इसका (स्थूलभद्र का) जन्म हुआ है। गृहस्थावस्था में ही यह सब शास्त्रों में निष्णात हो गया था ।७७७।

कोसा नामं गणिया, समिद्धकोसा य विउल कोसा य ।
जीए घरे उवइट्ठो, (उवरिट्ठो) रति संविसेसम्मि वेसम्मि ।७७८।
(कोशा नामा गणिका, समृद्धकोशा च विपुलकोशा च ।
यस्या गृहे उपदिष्टः [उपरिष्ठः] रति-सविशेषे वेश्मनि ।)

यह अति समृद्ध एवं विपुल कोश की स्वामिनी कोशा नामक गणिका के---रति के प्रासाद से भी विशिष्ट भवन में यह रहा है ७७८।

बारस वासाइं उत्थो [उसिओ] कोसए घरम्मि सिरिघर समम्मि ।
सोऊण य पिउ मरणं, रण्णो वयणं नि गिज्झीय ।७७९।
(द्वादशवर्षान् च उक्षितः, कोशायाः गृहे श्रीगृह-समे ।
श्रुत्वा च पितुः मरणं, राज्ञः वचनं च निगृह्य ।)

लक्ष्मी के प्रासाद के समान कोशा के घर में यह बारह वर्षों तक रहा। पिता के मरण को बात सुन कर तथा नंदराज के बुलाने के आदेश को प्राप्त कर-- ।७७९।

तिगिच्छि सरिस वण्णं [?] कोसं आपुच्छए तयं धणियं ।
खिप्पं खु एह सामिय, अहयं न हु चाय-ए सहं ।७८०।
तडित् [?] सदृशवर्णा, कोशामापृच्छति तदा त्वरितम् ।
क्षिप्रं खलु एहि स्वामिन्. अहं न खलु शक्नोमि सोढुम् ।)

(क्लेशान् परिचिन्तयन्, राजकुलाच्च ये परिक्लेशाः ।
नरकेषु च ये क्लेशाः, तावत् लुञ्चति आत्मनः केशान्)

संसार के अनेक प्रकार के असह्य कष्टों राजकुल से प्राप्त होने वाले विविध क्लेशों और नारकीय भीषण क्लेशों का चिन्तन करते-करते स्थूलभद्र ने अपने केशों का स्वयं ही लुञ्चन कर लिया ।७६१।

तंविय परिहिय वत्थं छेत्तूणं कुणइ अग्गतो आरं ।
कंबलरयणो गुंठि काउं, रण्णो ठियं पुरतो ।७९२।
(तमपि च परिहितवस्त्रं, छित्वा करोति अग्रहारम् ।
कम्बलरत्ने ग्रन्थि कृत्वा, राज्ञः स्थितः पुरतः)

अपने पहने हुए वस्त्र को उतार तथा फाड़ कर उसका अग्रहार (कटि प्रदेश पर रखने का वस्त्र खण्ड) बना लिया । रत्न कम्बल में गांठें लगा (उसका ओघा बना) स्थूलभद्र (साधुवेष) में राजा नन्द के सम्मुख आ खड़ा हुआ ।७६२।

एयं मे सामत्थं, भणइ अवणेहि मत्थतो गुट्ठिं ।
तो णं केसविहूणं, केसेहिं विणा पलोएति ।७९३।
एतत् मे सामर्थ्यम्, भणति अपनय मस्तकात् ग्रन्थिम् ।
ततः ननु केशविहीनं, क्लेशैर्विना प्रलोकयति ।)

राजा नंद को सम्बोधित कर स्थूलभद्र ने कहा– "मेरा यह सामर्थ्य है । मेरे सिर के भार को दूर कीजिये ।" केश-विहीन (मुण्डित) स्थूलभद्र को सब प्रकार के क्लेशों से रहित अर्थात् प्रसन्न देख कर राजा नन्द विस्मित हो उनकी ओर देखता ही रह गया ।७६३।

अह भणइ नंद राया, लाभेति धीर नत्थि रोहियणं [रोहणयं] ।
बाढं चि भणिऊणं, अह सो संपत्थितो तत्तो ।७९४।
(अथ भणति नन्दराजा, 'लाभ' इति धीर नास्ति रोधनकम् ।
बाढम् ! इति भणित्वा, अथ स संप्रस्थितस्ततः ।)

नन्दराज ने कहा — "वीर ! [illegible] अपने [illegible] का [illegible] हो। अब आप के [illegible] में कोई अवरोध नहीं है।" [illegible] "[illegible]" — कह कर राजभवन से प्रस्थान कर गया। ७६।४।

(यह गाथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्राचीन प्रति में उल्लिखित नहीं है।)

[illegible] नंदराया, [illegible] गणियाघरं जइ कहिंचि।
[illegible] मे [illegible], [illegible] पुत्तो पिवामि ७९।५।

(अथ भणति नन्दराजा, यदि गणिका गृहं यदि कथंचित्।
गत: मे अपथ्यवादी अस्याः पुत्र: [illegible])

[illegible] के [illegible] जाने के पश्चात् [illegible] [illegible] ने कहा— यदि यह कदाचित् गणिका के घर भी चला जाता है तो [illegible] इस [illegible] को उस गणिका के [illegible] ही मार डालूं। ७९।५।

तो [illegible] गणियघर [illegible] च [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible]। ७९।६।

(स [illegible] [illegible], गणिकागृहं [illegible] च [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]: ।)

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] के घर [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] है। ७९।६।

सो [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible]। ७९।७।

(स [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible]: ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

में नष्ट हो गये। क्यों कि ये दोनों तप केवल चतुर्दश पूर्वधर ही कर सकते हैं। शेष तप चतुर्विध तीर्थ की विद्यमानता तक विद्यमान रहेंगे।८०४।

तं एवमंगवंसो य, नंदवंसो मरुयवंसो य।
सयगाहेण पणट्ठा, समयं सज्झायवंसेण।८०५।
(तद् एवं अंगवंशश्च, नन्दवंशः मरुतवंशश्च।
स्वापराधेन प्रणष्टाः, समं स्वाध्यायवंशेन)

तो इस प्रकार सज्झाय वंश के साथ-साथ अग वंश, नन्द वंश और मरुत (मौर्य ?) वंश अपने अपराध से नष्ट हुए।८०५।

पढमो दस पुव्वीणं, सयडालकुलस्स जसकरो धीरो।
नामेण थूलभद्दो, अविहिंसाधम्म-भद्दो त्ति।८०६।
(प्रथमः दश पूर्वीणां, शकटालकुलस्य यशस्करः धीरः।
नाम्ना स्थूलभद्रः, अविहिंसा धर्मभद्र इति।)

दशपूर्वधारियों में प्रथम शकटार कुल का यशोवर्द्धक स्वधर्म-भद्र धैर्यशाली स्थूलभद्र होगा।८०६।

नामेण सच्चमित्तो, समणो समणगुण निउण चिंवतीउ।
हो ही अपच्छिमो किर, दस पुव्वी धारओ वीरो।८०७।
(नाम्ना सत्यमित्रः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तकस्तु।
भविष्यति अपश्चिमः किल, दशपूर्वी[1] धारकः वीरः।)

श्रमणगुणों में निपुण और श्रमणगुणों का चिन्तक सत्य-मित्र नामक वीर श्रमण अन्तिम दश पूर्वधर होगा।८०७।

एयस्स पुव्वसुयसायरस्स, उदहिव्व अपरिमेयस्स।
सुणसु जह अथकाले, परिहाणी दीसते पच्छा।८०८।
(एतस्य पूर्वश्रुतसागरस्य, उदधिरिव अपरिमेयस्य।
श्रृणुस्व यथा अथकाले, परिहानिः दृश्यते पश्चात्।)

१ दशानांपूर्वाणां समाहारः—इति दशपूर्वी।

वीर निर्वाण सं० उन्नीस सौ (१६००) में भारद्वाज गोत्रीय महाश्रमण नाम से विख्यात श्रमण के निधन पर सूत्रकृताङ्ग का विच्छेद (ह्रास) होगा ।८१६।

वरिस सहस्सेहि इहं दोहि, विसाहे मुणिम्मि वोच्छेदो ।
वीर जिण धम्मतित्थे, दोहि तिन्नि सहस्स निद्दिट्ठो[1] ।८२०।
वर्ष सहस्रैरिह द्वाभिः विशाखे मुनौ व्यवच्छेदः ।
वीरजिन धर्मतीर्थे, द्वि त्रि सहस्रे निर्दिष्टः ।)

वीर निर्वाण सं० दो हजार (२०००) में तथा वीर निर्वाण पश्चात् दो हजार से तीन हजार वर्षों के बीच भी भगवान् महावीर के धर्म तीर्थ में कतिपय सूत्रों के व्यवच्छेद (ह्रास) का निर्देश किया गया है ।८२०।

विण्हु मुणिम्मि मरंते, हारित गोत्तम्मि होति वीसाए ।
वरिसाण सहस्सेहिं, आयारंगस्स वोच्छेदो ।८२१।
(विष्णु मुनौ मृते, हारित गोत्रे भवति विंशतिभिः ।
वर्षाणां सहस्रैः, आचाराङ्गस्य विच्छेदः ।)

वीर निर्वाण सं० २०,००० (बीस हजार) में हारित गोत्रीय विष्णु नामक मुनि का निधन होते ही आचारांग का व्यवच्छेद (ह्रास) हो जायगा ।८२१।

अह दुसमाए सेसे, होही नामेण दुप्पसह समणो ।
अणगारो गुणगारो, खमागारो तवागारो ।८२२।
(अथ दुःषमायां शेषे, भविष्यति नाम्ना दुःप्रसहः श्रमणः ।
अनगारः गुणागारः, क्षमागार तपागारः)

तदनन्तर दुःषमा नामक पंचम आरक का थोड़ा सा समय अवशिष्ट रहने पर क्षमा, तप तथा गुणों के भण्डार दुःप्रसह नामक अणगार होंगे ।८२२।

---

१ अस्यां गाथायां विच्छिन्नमानस्य न कस्यचिदप्यंगस्य नामोल्लेखः कृतः । अतोऽनुमीयते यत समुच्चयरूपेण कतिपयाङ्गानां ह्रासस्यैवात्रोल्लेखः कृतोऽस्ति ।

आठ वर्ष की अवस्था में वह दुःप्रसह, आचार्य नाइल से देवलोकों के सुखों के सम्बन्ध में सुन कर, उन पर चिन्तन करता हुआ आचार्य नाइल के पास श्रमण धर्म में प्रव्रजित हो जायगा ।८३३।

सो पव्वइतो संतो, महया जोगेण सुंदरुज्जोगो ।
कम्मक्खतोवसमियं, सिक्खिही सुतं दसवेतालं ८३४।
(स प्रव्रजितः सन् महता योगेन सुन्दरोद्योगः ।
कर्मक्षयोपशमिकं, शिक्षिष्यति सूत्रं [श्रुतं] दशवैकालिकम् ।)

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् श्रमण दुःप्रसह बड़ी तन्मयता के साथ अहर्निश परिश्रम कर ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के फलस्वरूप दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करेगा उसे कण्ठस्थ करेगा ।८३४।

दसवेतालियधारी, पुज्जिही जणेण जहव दसपुव्वी ।
सो पुण सुट्ठुतरागं, पुज्जिही समण संघेणं ८३५।
(दशवैकालिकधारीः पूजयिष्यते जनेन यथैव दशपूर्वी ।
स पुनः सुष्ठुतया, पूजयिष्यते श्रमणसंघेन ।)

उस समय दशवैकालिक सूत्र को कण्ठस्थ करने वाला श्रमण लोगों द्वारा दश-पूर्वधर के समान पूजित—सम्मानित होगा। श्रमणसंघ भी दश वैकालिकधारी मुनि का भलीभांति पूजा—सम्मान करेगा ।८३५।

अउणा वीससहस्सो, सामाणिओ होहिति सक्कयालोए ।
दुस्सह दूसमकाले, खीणे अप्पावसेसजुगे ।८३६।
(अऊन [अन्यून] विंशतिसहस्रः, सामानिकः भविष्यति शक्रस्य लोके ।
दुस्सहे दुःपमाकाले, क्षीणे अल्पावशेप युगे ।)

दुःसह्य कष्ट पूर्ण दुःपम नामक पांचवें आरक की समाप्ति में जब कुछ ही घड़ियां शेप रह जायेंगी, उस समय दुःप्रसह आचार्य शक्रलोक अर्थात् सौधर्म कल्प नामक प्रथम देवलोक में अन्यून बीस हजार देव परिवार वाले सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगा ।८३६।

(दुःप्रसभोऽणगारः, नाम्ना अपश्चिमः प्रवचनस्य ।
फल्गुश्रीः श्रमणीनां, सापि च श्रमणी अपश्चिमा ।)

प्रवचन अर्थात् जिन शासन का अन्तिम अणगार दुःप्रसभ नामक श्रमण और जिन शासन की अन्तिम श्रमणी फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी ।८४०।

विग्गहवती वियदया, कमल विहूणा सिरिव्व पच्चक्खा ।
होहीति तया समणी, फग्गुसिरी नाम नामेण ८४१।
(विग्रहवती अपि च दया,[1] कमलविहीना श्रीव प्रत्यक्षा ।
भविष्यति तदा श्रमणी, फल्गुश्री नाम नाम्ना ।)

उस समय (दुःषम नामक आरक के अन्त में), साक्षात् सदेहा दया और प्रत्यक्ष कमल विहीना लक्ष्मी तुल्या वह फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी ।८४१।

तम्मि य नगरे सेट्ठी, होही नामेण नाइलो नाम ।
सो सव्वसावगाणं, होही तइया अपच्छिमिओ ।८४२।
(तस्मिन् च नगरे श्रेष्ठीः, भविष्यति नाम्ना नाइलो नाम ।
स सर्व श्रावकाणां, भविष्यति तदा अपश्चिमकः ।)

उसी नगर में नाइल नामक एक श्रेष्ठी होगा जो भगवान् महावीर के शासन के श्रावकों में सब से अन्तिम श्रावक होगा ।८४२।

सेट्ठी य नाइलो नाम, गिहवई सावगाणपच्छिमो ।
सव्वसिरी सावियाणं, सा विय तया अपच्छिमिया ।८४३।
(श्रेष्ठी च नाइलः नामा, गृहपतिः श्रावकाणां अपश्चिमः ।
सर्वश्री श्राविकानां, सापि च तदा अपश्चिमका ।)

---

१ सशरीरा दया-इत्यर्थः ।
"विग्गहवती वायदूया" (विग्रहवती वावदूका)---इति पाठे सति सशरीरा सरस्वतीत्यर्थः ।

स्वामी के अभिन्न साधक भागवंत [illegible] और
परिवारों में अभिन्न [illegible] होगी ।८४।

अभिगय जीवाजीवा, सा या जिय भाविया अणक्खमिया ।
पावेंति निव्विणअणं, मरामिरी नाम नामेणं ।८४।
(अभिगत जीव-अजीवा, सा या जिन भाविता अनुत्तमया ।
प्राप्नोति निर्विण्णमतिः, मरीची नाम नाम्ना ।)

उस समय में चतुर्थ भक्त (उवास) और षष्ठ भक्त (वेला) ये उत्कृष्ट तप होंगे। आचार्य दुःप्रसह अष्टम भक्त (तेला) का तप करेंगे।८४७।

सो दाहिण लोगवती, इंदो धम्माणुराग रत्तो य।
आगंतूणं तइया, पुणो पुणो वंदते संघं।८४८।
(स दक्षिणलोकपतिः, इन्द्रः धर्मानुरागरतश्च।
आगत्वा तदा, पुनःपुनः वन्दते संघं)

दक्षिण लोक का स्वामी सौधर्मेन्द्र धर्मानुराग में अनुरक्त हो वहां आकर बारम्बार संघ को वन्दन करता है---।८४८।

गुणभवण गहण सुयरयणभरिय, दंसणविसुद्धरच्छागा।
संघ नगर! भद्दं ते, अखंड चारित्तपागारा।८४९।
(गुणभवनगहन! श्रुतरत्नभृत! दर्शन विशुद्ध रथ्याकः!।
संघनगर! भद्रं ते, अखंड चारित्र प्राकार!)

पिण्ड विशुद्धि आदि अमित उत्तरगुणरूपी भवनों की विद्यमानता के कारण अति गहन! आचाराङ्गादि अनेक सुखदाई श्रुतरत्नों से परिपूर्ण! मिथ्यात्वादि कूड़े कर्कट से रहित विशुद्ध दर्शन रूपी रथ्याओं वाले! और अखण्ड चारित्र के प्राकार (परकोटे) से सदा सुरक्षित! ओ संघ-नगर! तुम्हारा कल्याण हो।८४९।

भद्दं सील पडागूसियस्स, तव नियम-तुरय जुत्तस्स।
संघरहस्स भगवतो, सज्झाय सुनंदि घोसस्स।
(भद्रं शीलोच्छ्रित पताकस्य[1], तपोनियम तुरगयुक्तस्य।
संघ-रथस्य भगवतः, स्वाध्याय सुनन्दि घोषस्य।)

शील रूपी उत्तुंग पताका वाले, तप और संयम रूपी आशुगामी अश्वों से युक्त अर्थात् जुते हुए और स्वाध्याय के सुमधुर स्वर रूपी सुन्दर नन्दी घोष वाले हे भगवत्स्वरूप संघ-रथ! तुम्हारा कल्याण हो।८५०।

---

१ प्राकृतशैल्याऽन्यथोपन्यासः।

[illegible], [illegible] :
[illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] ।८४३।
[illegible], [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] के [illegible] हैं ([illegible] के [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] ॥

(नवस्वापि वर्षेष्वेवं, इन्द्रः स्तुत्वा श्रमण संघं तु ।
ईशानोऽपि तथैव च, क्षणेन अमरालयं प्राप्तः ।)

शेष ६ क्षेत्रों में भी सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र इसी प्रकार श्रमण संघ की स्तुति कर अपने-अपने सुरलोक को लौट गये ।८५४।

दसवेतालिय अत्थस्स, धारतो संजउ तवाउत्तो ।
समणेहिं विप्पहीणो, विहरिही एक्कगो धीरो ।८५५।
(दशवैकालिक अर्थस्य, धारकः संयतः तपायुक्तः ।
श्रमणैर्विप्रहीणः, विहरिष्यति-एकको धीरः ।)

दश-वैकालिक सूत्र के अर्थ को धारण करने वाला संयम और तप में उद्यत वह धीर दुःप्रसह आचार्य श्रमणों से विहीन एकाकी ही विचरण करेगा ।८५५।

अट्ठेव य गिहवासो, वारसवरिसाइं तस्स परियातो ।
एवं वीसति वासा, दुप्पसहो होहिंही वीरो ।८५६।
(अष्टावेव च गृहवासः, द्वादशवर्षाणि तस्य [श्रमण] पर्यायः ।
एवं विंशतिवर्ष्यः, दुःप्रसभः भविष्यति वीरः ।)

दुःप्रसह आचार्य आठ वर्ष तक गृहवास में और १२ वर्ष तक श्रमण पर्याय में रहेगा। इस प्रकार वह २० वर्ष की आयु वाला होगा ।८५६।

छज्जीवकाय हियतो, सो समणो संजमे तवाउत्तो ।
भत्ते पच्चक्खाते, गच्छिही अमरालयं वीरो ।८५७।
(षड्जीवकाय हितकः, स श्रमणः संयमे तपसि आयुक्तः ।
भक्ते प्रत्याख्याते, गमिष्यति अमरालयं वीरः ।)

षड्जीव निकाय का हितैषी वह वीर आचार्य दुःप्रसह संयम तथा तप में निरत रहता हुआ अन्त में अनशन कर सुरलोक को प्रयाण करेगा ।८५७।

अद्धवरिसगिहवासी, बालपण्डिआइं होइ परियाउ ।
जत्तं काही य तहा, अप्पम अप्पेण दुक्खओ ।८४८।
(अल्पमपि मुनीनाम् उद्गतवर्षाणि भवति [संयम] पर्यायः ।
यत्नं करिष्यति च तदा, अल्पमल्पं न दुःखदः ॥)

धमतीर्थ के अन्तिम सदस्य होंगे। दुःषम आरक के अस्तंगत होते ही चतुर्विध तीर्थ का भी अस्तमन हो जायेगा ।८७४।

तेसु य काल गतेसु, तद्दिवसं चेव होही अधम्मो ।
इय दूसमाए काले, वच्चंते पाव भूइट्ठे ।८७५।
(तेषु[1] च काल गतेषु, तद्दिवसे चैव भविष्यति अधर्मः ।
अस्या दुष्षमायाः काले, व्यतीते पापभूयिष्ठो ।)

इसपाप प्रधान अथवा पापाधिक दुःषम नामक पंचम आरक के जाते (समाप्त होते) समय साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका- उन चारों के दिवंगत होते ही, उसी दिन से भरत क्षेत्र में अधर्म का आधिपत्य हो जायेगा ।८७५।

सामाइय समणाणं, महाणुभावाण चेइयायारो ।
सव्वाय गंधजुत्ती दोसुवि, सज्झाएसु [दससुवि खेत्तेसु] नासिहिति ।८७६।
(सामायिकं श्रमणानां, महानुभावानां चैत्याचारः ।
सर्वा च गंधयुक्तिः दशस्वपि क्षेत्रेषु नश्ययिष्यति ।)

श्रमणों की सामायिक, महानुभावों (श्रद्धालुओं) क चैत्याचार, और सब प्रकार की गन्ध युक्ति दशों ही क्षेत्रों में नष्ट हो जायेगी ।८७६।

चंकमिउं वरतरयं नरतिरियं, तिमिसगुहाए तमंधयाराए ।
न य तइया मणुयाणं, जिणवरतित्थे पणट्ठम्मि ।८७७। [युग्मम्]
(चंक्रमितु नरतिर्यंचं तमिस्रगुहायां तमोऽन्धकारायाम् ।
न च तदा मनुष्याणां[2], जिनवर तीर्थे प्रणष्टे ।)

मानव और तिर्यंच अन्धकार पूर्ण तमिस्र गुफा में रहने लगेंगे उस समय जिनेन्द्र भगवान् के तीर्थ का व्युच्छेद हो जाने के कारण मनुष्यों में उपर्युल्लिखित सामायिक आदि धर्माचार नहीं होंगे ।८७७।

---

१ तेषु—दुःप्रसहादिषुचतुर्षु—इत्यर्थः ।
२ सामायिकादि इति शेषः ।

तीर्थंकर काल में भारत वर्ष ऋद्धि से भरपूर—समृद्ध, अनेक अतिशयों से सम्पन्न, देवलोक के समान और गुणों से भरा पूरा था ।८८१।

गामानगरब्भूया, नगराणि य देवलोय सरिसाणि ।
रायसमा य कुडुंबी, वेसमण समा य रायाणो ।८८२।
(ग्रामाः नगरभूताः, नगराणि च देवलोकसदृशानि ।
राजसमाश्च कुटुम्बिनः, वैश्रवणसमाश्च राजानः ।)

उस समय भारत के ग्राम नगरों के तुल्य, नगर देवलोक के समान, गृहस्थ राजा के समान और राजागण वैश्रवण के समान सर्वतः सम्पन्न थे ।८८२।

चंद समा आयरिया, अम्मापियरो य देवत समाणा ।
मायसमाविय सासू, ससुराविय पितिसमा आसी ।८८३।
(चन्द्रसमा आचार्या, अम्बापितरौ च दैवतसमानाः ।
मातासमापि च श्वश्रूः, श्वशुरा अपि च पितृसमा आसन् ।)

आचार्य गण चन्द्रमा के समान सौम्य-शीतल एवं ज्ञान के प्रकाश करने वाले, माता-पिता देव-दम्पती तुल्य, सासें माताओं के समान और श्वसुर पिता के समान थे ।८८३।

धम्मा धम्मविहिन्नू, विणयण्णू सच्चसोय संपण्णो ।
गुरुसाहूपूयणरतो, सदारनिरतो जणो तइया ।८८४।
(धर्माधर्मविधिज्ञः, विनयज्ञः सत्यशौचसंपन्नः ।
गुरुसाधुपूजनरतः, स्वदारनिरतः जनस्तदा ।)

उस समय के मनुष्य धर्म तथा अधर्म की विधि के ज्ञाता, विनीत, सत्य-शौच सम्पन्न, गुरु एवं साधु की पूजा सत्कार में सदा तत्पर और स्वदार-संतोषी होते थे ८८४।

अच्छइय सविण्णाणो, धम्मे य जणस्स आयरो तइया ।
विज्जा पुरिसा पुज्जा, वरिज्जइ कुलं च सीलं च ।८८५।

उवसग्ग गब्भहरणं, इत्थितित्थं अभाविया-परिसा ।
कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंद-सूराणं ।८८९।
(उपसर्ग-गर्भहरणं, स्त्रीतीर्थं अभावितापरिषद् ।
कृष्णस्य अपरकंका, उत्तरणं चन्द्रसूर्ययोः ।)

उपसर्ग (१), गर्भापहार (२), स्त्री तीर्थंकर (३), अभाविता परिषद (४), कृष्ण का अपर कंका गमन (५), चन्द्र-सूर्य का उतरना (६)—।८८९।

हरिवंसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पाओ य अट्ठसयसिद्धा ।
अस्संजयाण पूया, दसवि अणंतेण कालेणं ।८९०।
(हरिवंश कुलोत्पत्तिः, चमरोत्पातश्च अष्टशतसिद्धाः ।
असंयतानां पूजा, दश अपि अनन्तेन कालेन ।)

हरिवंशकुलोत्पत्ति (७), चमरेन्द्र का उत्पात (८), उत्कृष्ट अवगाहना के १०८ सिद्ध (९) और असंयत-पूजा (१०)--ये दश आश्चर्य अनन्त काल पश्चात् होते हैं ।८९०।

लोगुत्तम पुरिसेहिं, चउप्पणाए इहं अतीएहिं ।
सुबहुहिं केवलिहि य, मणपज्जव ओहिनाणेहिं ।८९१।
(लोकोत्तमपुरुषैः, चतुष्पंचाशता इह अतीतैः ।
सुबहुभिः केवलिभिश्च, मनःपर्यवावधिज्ञानिभिः ।)

यहां चौवन लोकोत्तम (महान्) पुरुषों के हो चुकने के पश्चात्। बहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञानियों एवं अवधिज्ञानियों ।८९१।

बहुरिद्धी पतेहि य, मइ सुयनाणेहि वुहिय सारेहिं ।
काल गतेहिं वुहेहिं मोक्खविण्णाणरासीहिं ।८९२।
(बहुऋद्धिपात्रैश्च मतिश्रुतज्ञानीभिः व्यूढसारैः ।
कालगतैः बुधैः मोक्षविज्ञानराशीभिः ।)

(भविष्यन्ति च पाखण्डा, मंत्राक्षरकुहकसंप्रयुक्ताश्च ।
मण्डलं मुद्रायोगाः, वशोच्चाटनपराश्च दृढम् ।)

मन्त्र, यन्त्र, इन्द्रजाल आदि कौतुक विद्या एवं मण्डल मुद्रायोग आदि के द्वारा वशीकरण, उच्चाटन आदि हीन क्रियाओं में अहर्निश तत्पर रहने वाले पाखण्डियों का उस काल में बाहुल्य होगा ।८६६।

तेहिं मुसिज्जमाणो, लोगो सच्छंद रइय कव्वेहिं ।
अवमन्निय सब्भावो, जातो अलितो य पलितो य ।८९७।
(ते मुष्यमानः लोकःस्वच्छन्दरचितकाव्यैः ।
अवमान्य सद्भावं[1], जातोऽलितश्च पलितश्च ।)

उन पाखण्डियों के द्वारा ठगे और लुटे जाते हुए उस समय के लोग स्वच्छन्दतापूर्वक रचित मनमाने काव्यों द्वारा वीतराग द्वारा उपदिष्ट आगमों की अवमानना करते हुए अलित-पलित हो जायेंगे ।८९७।

होहिंति साहुणो वि य, सप्पक्खनिरवेक्खनिद्दया धणियं ।
समणगुण मुक्क जोगा, केइ संसारछेत्तारो ।८९८।
(भविष्यन्ति साधवोऽपि च, स्वपक्षनिरपेक्षनिन्दका आधिक्येन ।
श्रमणगुणमुक्तयोगा, केचित् संसार-छेत्तारः ।)

साधु भी अधिकांशतः स्वपक्ष की अवहेलना करने वाले, बड़े निर्दय और श्रमण गुणों एवं योग से हीन होंगे । कोई विरले ही साधु संसार के बंधनों को काटने वाले होंगे ।८९८।

होहीति गुरुकुलवासे, मंदा य मंदमतीय समण धम्मंमि ।
एयं तं संपत्तं, वहुमुंडे अप्पसमणे य ।८९९।
(भविष्यन्ति गुरुकुलवासे, मन्दाश्च मन्दमतयश्च श्रमणधर्मे ।
एतत् तत् सम्प्राप्तं, बहुमुण्डा अल्पश्रमणाश्च ।)

---

[1] सद्भावं—गणिपिटकमित्यर्थं ।

गामा मसाण भूया, नयराणि य पेयलोय-सरिसाणि ।
दास समाय कुडुंबी, जमदंडसमा य रायाणो ।९०३।
(ग्रामाः श्मशानभूताः, नगराणि च प्रेतलोक सदृशानि ।
दास समाश्च कुटुम्बिनः, यमदण्डसमाश्च राजानः ।)

उस समय के ग्राम श्मशान के समान और नगर प्रेतलोक के समान भयावह, गृहस्थ दास के समान दीन और राजा लोग साक्षात् यमदण्ड के समान उत्पीड़क होंगे ।९०३।

रायामच्चे भिजाया, भिच्चा जणवएसु य रायाणो ।
खायंति एक्कमेक्कं, मच्छा इव दुव्वले वलिया ।९०४।
(राजामात्याभिजाताः, भृत्याः जनपदेसु च राजानः ।
खादन्ति एकमेकं, मत्स्या इव दुर्बलान् वलिनः ।)

उस समय जनपदों में राजामात्य, अभिजार कुल के लोग, राजभृत्य और राजा परस्पर एक दूसरे को इस प्रकार खायेंगे जिस प्रकार कि वलवान् मच्छ अपने से दुर्बल मत्स्यों को खाते हैं ।९०४।

जे अंता ते मज्झा, मज्झा य कमेण होंचि णं चत्ता ।
अपडागा इव नावा, डोल्लंति समंतओ देसा ।९०५।
(ये अन्त्याः[अन्त्यजाः]ते मध्याः, मध्याश्च क्रमेण भवन्ति ननु त्यक्ताः।
अपताका इव नौः, दोलयन्ति समन्ततः देशे ।)

जो लोग अन्त्य अर्थात् सब से हीन हैं वे मध्यम वर्ग के होंगे और जो मध्यम वर्ग के हैं वे क्रमशः परित्यक्त होंगे । समुद्र में पड़ी विना पाल की नाव के समान लोग देश में इधर से उधर भटकते रहेंगे ।९०५।

पगलित गो महिसाणं, उत्तच्छाणं पलायमाणाणं ।
अजहन्निया पवित्ती, उक्कक्खाणं जणवयाणं ।९०६।
प्रगलित गौ महिषाणां, उत्त्रस्तानां पलायमानानाम् ।
अजघन्या प्रवृत्तिः, उत्कक्षानां जनपदानाम् ।

(शिष्या अपि न पूजयन्ति, आचार्यान् दुःषमानुभावेन ।
आचार्या सुमनसा, न ददति उपदेशरत्नानि ।)

दुःषम काल के प्रभाववशात् शिष्य अपने आचार्यों की सत्कार-सम्मान आदि से पूजा नहीं करेंगे और आचार्य भी अन्तर्मन से उन्हें उपदेश नहीं देंगे ।६१०।

समणाणं गोयर तो, नासिहिति दुःसमप्पभावेणं ।
सावगधम्मो वि तहा, अज्जाणं पण्णत्ती सावि [?] ।९११।
(श्रमणानां गोचरं ततः, नाशयिष्यति दुःषमाप्रभावेन ।
श्रावक धर्मोऽपि तथा, आर्यिकाणां प्रज्ञप्ति सापि ।)

दुःषम आरक के प्रभाव से आगे चल कर श्रमणों की मधुकरी, श्रावक धर्म और साध्वियों का आचार भी धीरे-धीरे नाश को प्राप्त होगा ।६११।

देवा न देंति दरिसणं, धम्मे य मती जणस्स पम्हुट्ठा ।
सत्ताकुला य पुहवी, वहुअं किण्णा य पासंडा ।९१२।
(देवा न ददति दर्शनं, धर्मे च मतिः जनस्य प्रमुष्टा ।
सत्त्वाकुला च पृथ्वी, वहुकं कीर्णाश्च पापण्डाः ।)

देवता मनुष्यों को दर्शन नहीं देंगे । मानव समाज की धर्म बुद्धि नष्ट हो जायेगी । अपना-अपना प्रभुत्व जमाने की मानव-मानव में होड के कारण पृथ्वी सत्ताकुल हो जायेगी और अधिकांशतः सर्वत्र पाखण्डियों का प्रसार होगा ।६१२।

सयणे निच्च विरुद्धो, निसोहिय साहिवासमित्तेहिं ।
चण्डो दुराणुयत्तो, लज्जारहितो जणो जातो ।९१३।
(स्वजनेनित्यविरुद्धः, निशोधित साधिवास मित्रैः ।
चण्डः दुरानुवृत्तो, लज्जारहितः जनो जातः ।)

उस समय में लोग सदा साथ रहने वाले मित्रों एवं स्वजनों के साथ विरोध रखने वाले, बड़े क्रोधी दुष्टतापूर्ण कार्यों में प्रवृत्त और लज्जारहित होंगे ।६१३।

एवं परिहीयमाणे, लोगे चंदोव्वकाल पक्खम्मि ।
जे धम्मिया मणुस्सा, सुजीवियं जीवियं तेसिं ।९२५।
(एवं परिहीयमाने, लोके चन्द्र इव कृष्णपक्षे ।
ये धार्मिकाः मनुष्याः, सुजीवितं जीवितं तेषाम् ।)

इस प्रकार कृष्ण पक्ष के चन्द्र की तरह निरन्तर क्षीण होते हुए लोक (काल) में जो मनुष्य धर्माचरण करने वाले होंगे उन्हीं का जीवन वस्तुतः अच्छा जीवन कहा जायेगा ।६२५।

दुस्सम सुस्समकालो, महाविदेहेण आसि परितुल्लो ।
सोउ चउत्थोकालो, वीरे परिनिव्वुते छिन्नो ।९२६।
(दुःषम सुषमकालः, महाविदेहेन आसीत् परितुल्यः ।
स तु चतुर्थः कालः, वीरे परिनिर्वृते छिन्नः ।)

दुःषम सुष्षम काल (जो भरत ऐरवत आदि दक्ष क्षेत्रों में था, वह), महाविदेह क्षेत्र में सदा एक ही समान रूप में प्रवर्तमान काल के तुल्य था। वह इस अवसर्पिणी काल का चतुर्थ आरक भगवान् के निर्वाण के (निम्नलिखित काल के) पश्चात् समाप्त हुआ ।६२६।

तिहिं वासेहिं गतेहिं, गएहिं मासेहिं अद्धनवमेहिं ।
एवं परिहायंते, दूसमकालो इमो जातो ।९२७।
(त्रिभिर्वर्षैर्गतैः, गतैः मासैरर्द्ध नवमैः ।
एवं परिहीयमाने, दुःषम काल इमो जातः ।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर यह दुष्षम नामक पंचम आरक प्रारम्भ हुआ ।६२७।

एयम्मि अइक्कंते, वाससहस्सेहि एक्कवीसाए ।
फिट्टिहिति लोग धम्मो, अग्गिमग्गो जिणक्खातो ।९२८।
(एतस्मिन्नति क्रान्ते, वर्ष सहस्रैः एकविंशत्या ।
स्फोटिष्यति लोकधःर्म, अग्निमार्गः जिनाख्यातः ।)

(अथ दुःषमायां तस्यां, व्यतिक्रान्तायां चरम समये ।
वर्षिष्यति सप्त रात्रिषु, महत् निरन्तरं वर्षम् ।)

उस दुष्षम आरक की समाप्ति की अन्तिम वेला में सात रात (रात दिन) निरन्तर घोर वर्षा बरसेगी ।९३२।

तेण हरिया य रुक्खा, तण गुम्मलया वणप्फतीओ य ।
अग्गिस्स य किर जोणी, तमहोरत्तं पडिसिसिहिति[1] ।९३३।
(तेन हरिताश्च वृक्षाः, तृणगुल्मलता वनस्पतयश्च ।
अग्नेश्च किल योनिः, तस्मिन् अहोरात्रे प्रतिसेत्स्यति ।)

उस घोर वर्षा से हरे वृक्ष, तृण, गुल्म, लता, वनस्पति और अग्नि की योनि उसी अहोरात्र (एक दिन तथा एक रात) में नष्ट हो जायेगी ।९३३।

एते सणियं सणियं, सव्वे विय पव्वेया न होहिंति ।
वेयड्ढो रयणड्ढो, नवरं किच्छाए दीसिहिति ।९३४।
(एते शनैः शनैः, सर्वेऽपि च पर्वता न भविष्यन्ति ।
वैताढ्यः रत्नाढ्यः नवरं कृच्छ्रया द्रक्ष्यन्ति ।)

ये सब पर्वत भी धीरे-धीरे नहीं रहेंगे । रत्नभण्डार वैताढ्य पर्वत भी बड़ा छोटा दिखाई देगा ।९३४।

चंदा मुच्चिहिंति हिमं, अहियं य सूरिया तविहिंति ।
जेण इहं नर तिरिया, सीउण्हहया किलिस्संति ।९३५।
(चन्द्राः मुंचिष्यन्ति हिमं, अधिकं च सूर्याः तप्स्यन्ति ।
येन इह नरतिर्यञ्चा, शीतोष्णहताः क्लिशिष्यन्ति ।)

चन्द्र हिमवर्षा करेंगे और सूर्य बड़ी तीव्रता से तपेंगे जिससे कि इन दश क्षेत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्च शीत और घाम के मारे असह्य कष्ट पायेंगे ।९३५।

---

१ निर्वृ तिमवाप्स्यति-लुप्ता भविष्यतीयर्थः ।

भसुंडिय रूवगणा, विवण्णदेह-छवि-निरभिरामा ।
नग्गा वि गया भरणा, वीभच्छा दीह रोमनहा ।९४०।
(भूसुण्डित रूपगणाः, विवर्णदेहछवि निरभिरामाः ।
नग्नाः विगताभरणाः, वीभत्साः दीर्घरोमनखाः ।)

उस समय लोग ग्रामशूकरों के समान विवर्ण एवं घृणास्पद देह वाले, नग्न, वस्त्र रहित, लम्बे-लम्बे केशों एवं नखों वाले तथा बड़े ही वीभत्स होंगे ।९४०।

कुणिम सिरीसिव कद्दम, मुत्त पुरीसासिणो मडहदेहा ।
हण भिंद छिंद पवरा, दोग्गतिगामी य होहिंति ।९४१।
(कुणिमा सरीसृपकर्दम, सूत्रपुरीषासिनः मृतकदेहाः ।
हन भेदय छेदयप्रवराः दुर्गतिगामिनश्च भविष्यन्ति ।)

वे लोग कुवड़े, सर्प, कीचड़, मूत्र और पुरीष (विष्टा) खाने वाले, मुर्दे के समान देह वाले, मारो, काटो, छेद डालो—इस प्रकार के दुष्ट वचन बोलने वाले एवं मृत्यु के पश्चात् दुर्गतिगामी होंगे ।९४१।

पुणरवि अभिक्खभिक्खं, अरसं विरसं य खार खट्टं च ।
अग्गिविस असणि सहियं, मुंचहिंति मेहा जलमणिट्ठं ।९४२।
(पुनरपि अभिक्षभिक्षं, अरसं विरसं च क्षारमम्लं च ।
अग्नि-विष-अशनिसहितं, मुंचिष्यन्ति मेघा जलमनिष्टम् ।)

बार-बार भीषण दुष्काल पड़ेंगे। उस समय बादल अरस, विरस, कड़वा, खट्टा, अग्नि, विष एवं वज्र सहित अनिष्टकर जल बरसायेंगे ।९४२।

जेण इहं मणुयाणं, कासो सासो भगंदरं कोड्ढो ।
होहिंती एवमाई, रोगा अण्णे अणेग विहा ।९४३।
(येन इह मनुष्यानां, कासः श्वासो भगंदरं कुष्ठः ।
भविष्यन्ति एवमादयः रोगा अन्ये अनेक विधाः ।)

उस समय के मनुष्य बड़े तीक्ष्ण एवं कठोर नखों वाले, अनघड़ घड़े के समान मुख तथा बोलने में अति विकट अटपटे नामों वाले होंगे वे सब के सब वर्ण आदि सब गुणों से अति कर्कश और निष्ठुरातिनिष्ठुर स्वभाव वाले होंगे ।६५४।

रयणी पमाणमेत्ता, उक्कोसेणं तू वीस सोलाउ ।
बहुपुत्त न त्तु महिया, निल्लज्जा विणय परिहीणा ।
(रत्निप्रमाणमात्रा, उत्कृष्टतस्तु विंशतिः षोडशायुष्काः ।९५५।
बहुपुत्र नप्तृसहिता, निर्लज्जाः विनय परिहीनाः ।)

उन मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई एक मुण्ड हाथ की, उनकी उत्कृष्ट आयु २० अथवा १६ वर्ष की होगी। वे बहुत से पुत्रों पौत्रों और दोहित्रों के परिवार वाले, नितान्त निर्लज्ज एवं अविनीत होंगे ।६५५।

नट्ठगिहा मक्कर, भोइणो, सूरपक्कमंसासी ।
अणु गंगा सिंधु, पव्वय विलवासी कूरकम्माय ।९५६।
(नष्ट गृहा मकर भोजिनः, सूर्यपक्व मांसाशिनः ।
अनु गंगा सिंधु,-पर्वतविलवासिनः क्रूर कर्माणश्च ।)

वे गृहविहीन नरनारी मत्स्य मकरभोजी सूर्य की गरमी से पके मांस को खाने वाले गंगा एवं सिन्धु नदियो के तटों के पास की वैताढ्य पर्वत की गुफाओं में रहने वाले और बड़े ही क्रूरकर्मा होंगे ।६५६।

होहिंति य विलवासी, बावत्तरि ते विलाउ वेयड्ढे ।
उभतो तडे णदीणं, नव नव एक्केक्कए कूले ।९५७।
(भविष्यन्ति च विलवासिनः, द्वासप्तति ते विलास्तु वैताढ्ये ।
उभयतो तटे नदीनां, नव नव एकैकके कूले ।)

वे लोग विलवासी (गुहावसी) होंगे। वे बहत्तर (७२) विल वैताढ्य पर्वत में नदियों के दोनों तटों पर होंगे। प्रत्येक तट पर नौ-नौ विल होंगे ।६५७।

भरत क्षेत्र में गंगा एवं सिन्धु नदियां और वैताढय पर्वत, के ये तीन ही बचे रहेंगे. शेष कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहेगा ।६६१।

इगवीस [वास] सहस्साइं, भणिया अति दूसमा उवीरेणं।
रायगिहे गुण सिलए, गोयममादीणं सिस्साणं ।९६२।
(एकविंशति (वर्ष) सहस्राणि, भणिता अति दुःपमाः तु वीरेण।
राजगृहे गुणशीलके, गौतमादीनां शिष्याणाम् ।)

राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में भगवान् महावीर ने गौतम आदि गणधरों को दुष्पम दुष्पम नामक आरक की स्थिति २१००० (इकवीस हजार) वर्ष बताई है ।९६२।

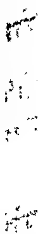
ओसप्पिणी उ एसा, कोडा कोडी उ होइ दस चेव ।
अवरोह अरगाण नियय, अरगा छच्चेव विक्खाया ।९६३।
(अवसर्पिणीतु एषा कोट्याकोट्यस्तु भवन्ति दश चैव ।
अवरोहो आरकाणां नियतः, आरकाः षड् चैव विख्याताः ।)

यह अवसर्पिणी काल दश कोट्या कोटि सागर प्रमाण स्थिति वाला होता है । इसमें छह आरक विख्यात हैं । उन छहों आरकों का अवरोह (क्रमशः हीयमान उतार) अर्थात् अपसर्पण नियत है ।९६३।

एत्तो परं तु वोच्छं, उस्सप्पिणीए किंचि उद्देसं ।
इगवीस सहस्साणं, अई दूसम होइ वासाणं ।९६४।
(इतः परं तु वक्ष्ये, उत्सर्पिण्याः किंचिदुद्देशम् ।
एक विंशतिः सहस्राणां, अति दुःपमः भवति वर्षाणाम् ।)

अब मैं उत्सर्पिणी काल के सम्बन्ध में थोड़ा कथन करूँ इसका दुष्पम दुष्पम नामक प्रथम आरक २१००० (इकवीस हजा वर्ष का होता है ।९६४।

दससु वि वासेसैसा, काहिति दुक्खाइं मणुय तिरियाणं ।
होही सुस्सिरा भूमी, मम्मर [illegible]



वे नर-नारी दुष्पम-दुष्पमा के प्रारम्भ में बीस वर्ष की आयु और शरीर को दो हाथ ऊँचाई वाले होंगे। इस आरक के अन्त में उनकी आयु १६ वर्ष और शरीर की ऊँचाई एक मुण्ड हाथ होगी।९६८।

जिय पक्खिवग्ग सीह, चउपया पंच इंदिया जे य
गय गो महिस खरोट्ठ पसुय विविहा य पाणिगणो ।९६९।
(यावन्तः पक्षिवर्गं सिंहचतुष्पदाः पंचेन्द्रियाः ये च ।
गज गो महिष खरोष्ट्रपशवश्च विविधश्च प्राणिगणः ।)

जितने पक्षिवर्ग के सभी जाति के पक्षी, सिंह, हाथी, गौ, महिष, गधे, ऊंट आदि पंचेन्द्रिय चतुष्पद पशुवर्ग और अन्य विविध प्राणिवर्ग हैं, वे सब --।९६९।

आगामियाए उस्सप्पिणीए, होहिंति बीय मेत्ताइं ।
बावत्तरि जुयलाइं, नराणतत्तोय सवण्णाउ ।९७०।
(आगामिन्यां उत्सर्पिण्यां, भविष्यन्ति बीजमात्राणि ।
द्वासप्ततिः युगलानि, नराणां ततश्च सवर्णानि ।)

आगामी उत्सर्पिणी काल (के प्रथम आरक) में बीज मात्र होंगे। उस समय में मानव वर्ग के बहत्तर (७२) सवर्ण अर्थात् सहोदर नर-नारी-युगल होंगे।९७०।

होहिंति बिलावासी, बावत्तरि ते बिलाउ वेयड्ढे ।
उभतो तडे नईणं, नव नव एक्के क्कए कूले ।९७१।
(भविष्यन्ति बिला आवासिनः, द्वासप्ततिः ते बिलास्तु वैताढ्ये ।
उभयतोः तटयोः नदीनां, नव नव एकैकके कूले ।)

वैताढ्य पर्वत में वे ७२ बिल होंगे। नदियों के दोनों तटों पर प्रत्येक तट पर नौ नौ बिलों के हिसाब से होंगे।९७१।

सेसं तु बीजमेत्तं, होहिं सव्वेसिं जीवजातीणं ।
कुणिमाहारा सव्वे, निसाए संज्झ कालस्स ।९७२।

इस प्रकार धवल पक्ष के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की ओर अग्रसर लोक एवं काल में उस समय के मनुष्यों की सहसा ही मनःशुद्धि होती है।६६६।

विज्जाण य परिवुड्ढी, पुप्फ फलाणं च ओहीणं च ।
आउय सुह रिद्धीणं, संठाणुश्चत्त धम्माणं ।९९७।
(विद्यानां च परिवृद्धिः, पुष्पफलानां चौषधीनां च ।
आयुश्च सुखऋद्धीणं:, संस्थान-उच्चत्व-धर्माणाम् ।)

विद्याओं, पुष्प-फलों, औषधियों: आयु, सुख, समृद्धि, संस्थान, उत्सेध (ऊंचाई) और धर्म—इन सब की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।६६७।

दूसमकालो होही, एवं एयं जिणो परिकहेइ ।
दूस्समसुस्सुमकाले, पवड्ढमाणं अनो वेंति ।९९८।
दुःषमकालेः भविष्यति, एवं एतत् जिनः परिकथयति ।
दुःषम सुष्पम कालं प्रवर्द्धमानं अतः ब्रुवन्ति ।)

इस प्रकार का दुष्षम काल होगा—ऐसा जिनेश्वर कहते हैं। दुष्षमसुषम काल को इसी लिये प्रवर्द्धमान काल कहा जाता है।६६८।

पव्वयनदीण वुड्ढी, वुड्ढी विन्नाण नाण सोक्खाणं ।
छण्ह वि रिऊण वुड्ढी, दससु वि वासेसु बोधव्वा ।९९९।
(पर्वतनदीनां वृद्धिः, वृद्धिर्विज्ञानज्ञानसौख्यानाम् ।
षण्णामपि ऋतूनां वृद्धिः, दशस्वपि वर्षेषु बोद्धव्या)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःषम-सुषम आरक में दशों ही क्षेत्रों में पर्वतों तथा नदियों की वृद्धि होगी। विज्ञान, ज्ञान एवं सौख्य की वृद्धि होगी। छहों ऋतुओं के प्रभाव गुण आदि में भी अभिवृद्धि होगी।६६६।

धण सत्तरसंवण्णं, फलाइं मूलाइं सव्वरुक्खाणं ।
खज्जूर दक्ख दाडिम, फणसा तउसा य वड्ढंति ।१०००।

पुनः यथा समय अमृत के समान सरस जल की अच्छी वर्षाएं होंगी जिससे कि मानव वर्ग में किसी प्रकार के रोग संघात उत्पन्न नहीं होंगे।१००३।

अह दुसमाए तीसे, सत्तण्हं कुलगराण उप्पत्ती।
कायव्वा आणुपुव्वी, जह परिवाडीए सव्वेसिं।१००४।
(अथ दुःषमायां तस्यां सप्तानां कुलकराणां उत्पत्तिः।
कर्त्तव्या आनुपूर्वीः, यथा परिपाट्या सर्वेणाम्।)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःषम नामक द्वितीय आरक में सात कुलकर उत्पन्न होंगे। उन सब का परिपाटी के अनुसार आनुपूर्वी कर लेनी चाहिए।१००४।

पढमेत्थ विमलवाहण, सुदाम संगम सुपास नामे य।
दत्तो सुनहे तसु मं, इय सत्तेव निद्दिट्ठा।१००५।
(प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, सुदाम संगम सुपार्श्व नामा च।
दत्तः सुनखः तसुमं, इति सप्तैव निर्दिष्टाः।)

प्रथम कुलकर का नाव विमलवाहन, द्वितीय सुदाम, तीसरे संगम. चौथे सुपार्श्व नामक, पांचवें दत्त, छट्ठे सुनख और सातवे तसुमं होगा। इस प्रकार ये सात कुलकर बताये गये हैं।१००५।

उस्सप्पिणी इमीसे, विनियाए समाए य गंग सिंधूणं।
एत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पण्णा कुलगरा सत्त।१००६।
उत्सर्पिण्याः इमायाः, द्वितीयायां समायां च गंगासिन्ध्वोः।
अत्र बहुमध्य देशे, उत्पन्ना कुलकराः सप्तः।)

उस आगामी उत्सर्पिणी की दूसरी समा अर्थात् द्वितीय आरक में गंगा और सिन्धु के मध्यवर्ती प्रदेश में सात कुलकर उत्पन्न होंगे।१००६।

[स्पष्टीकरणः—समवायांग सूत्र में आगामी उत्सर्पिणीकाल के द्वितीय आरक में भरत क्षेत्र के भावी सात कुलकरों के नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं:—

चउ सुं वि एरवए सुं, एवं चउसुवि य भरहवासे सु ।
एक्केक्कम्मि उ, होहिंति कुलगरा सत्त ।१०१०।
(चतसृष्वपि ऐरवतेषु, एवं चतुष्ष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एकैकके तु, भविष्यन्ति कुलकराः सप्तः ।)

इसी प्रकार शेष चारों ही ऐरवत क्षेत्रों तथा चारों भरत क्षेत्रों में, प्रत्येक में सात-सात कुलकर होंगे ।१०१०।

गाम नगरागराणं, गोउल संवाह संन्निवेसाणं ।
कुलनीति रायनीतीण, कारगा कुलगरा तइया ।१०११।
(ग्रामनगराकराणं, गोकुल संवाह सन्निवेषाणाम् ।
कुल नीतिः राजनीत्योः, कारका कुलकराः तदा ।)

उस समय के वे कुलकर ग्राम, नगर, आकर, गोकुल, संवाह एवं सन्निवेशों तथा कुल नीति एवं राजनीति के निर्माता होंगे ।१०११।

आसा हत्थी गावो, गहियाइं रज्ज संगह निमित्तं ।
ववहारो लेहवणं, होही सामाइ एसिं तु ।१०१२।
(अश्वाः हस्तिनः गावः गृहीतानि राज्यसंग्रहनिमित्तम् ।
व्यवहारः लेखापनं, भविष्यति सामादि एषां तु ।)

उन कुलकरों द्वारा घोड़ों, हाथियों, गायों आदि को राज्य संग्रह के लिये पकड़ा जायेगा। व्यवहार अर्थात् आदान-प्रदान, लेखन और साम आदि दण्ड नीतियों का भी इन्हीं के समय में प्रचलन होगा ।१०१२।

उग्गा भोगा राइण्ण, खंत्तिया संगहो भवे च उहा ।
उप्पण्णे अग्गणिम्मिय, रंधणमातीणी काहिंति ।१०१३।
(उग्राः भोगा (ज्ञाः) राजन्याः, क्षत्रियाः संग्रहः भवेत् चतुर्धा ।
उत्पन्ने अग्नौ च, रन्धनादीनि करिष्यन्ति ।)

दूसम सुस्सम कालो, उदही समाणाण कोडी कोडीओ ।
जिण चक्कि दसाराणं(वासुदेवाणं), किंचि समासं पवक्खामि ।१०२४।
(दुःषमसुषमाकाल, उदधि समानानां (सागरोपम) कोट्या कोटिकः ।
जिनचक्रि वासुदेवानां, किमपि समासेन प्रवक्ष्यामि ।)

उत्सर्पिणी का दुःषम सुष्पम काल एक कोटा कोटि सागरोपम-(४२,००० वर्ष कम-इस प्रकार का उल्लेख होना चाहिए पर इस गाथा में ऐसा उल्लेख नहीं है)—का होगा । अब मैं जिन (तीर्थंकर), चक्रवर्ती और दशार्हों के सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कहूँगा ।१०२४।

नगरम्मि सत दुवारे, सुमइ रायस्स भारिया भद्दा ।
सयणिज्जे सुह सुत्ता, चोद्दस सुमिणे उ पेच्छिहिति ।१०२५।
(नगरे शतद्वारे, सुमति राज्ञः भार्या भद्रा ।
शयनीये सुखसुप्ता, चतुर्दश स्वप्नानि तु प्रेक्षयिष्यति ।)

शतद्वार नामक नगर में राजा सुमति की रानी भद्रा शय्या पर सुख पूर्वक सोती हुई (निम्नलिखित) चौदह स्वप्न देखेगी ।१०२५।

गय-उसभ-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर-सागर-विमाण भवण* रयणुच्चय-सिहिं च ।१०२६।
(गज-वृषभ-सिंह-अभिषेक-दाम-शशि-दिनकरं-झसं-कुम्भम् ।
पद्मसर-सागर-विमान भवन-रत्नोच्चय-शिखिं च ।)

गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक, दाम शशि, सूर्य, मत्स्य, कुंभ-कलश, पद्मसर, सागर, भवन (विमान नहीं), रत्नराशि और निर्धूमाग्नि ।१०२६।

एते चउद्दस सुमिणे, पासइ भद्दा सुहेण पसुत्ता ।
जं रयणिं उववण्णो, कुच्छिसि महायसो पउमो ।१०२७।

* यदा तीर्थंकरजीवः देवलोकात् गर्भे च्यवति तदा तीर्थंकरमाता द्वादशमे स्वप्ने विमानं पश्यति । तीर्थंकर जीवस्य नरकात् गर्भे च्यवनावस्थायां तु माता भवनं पश्यति ।

इसी प्रकार शेष चारों ऐरवत और चारों भरत क्षेत्रों में, चन्द्र का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर आठ तीर्थंकर अपनी अपनी माता की कुक्षि में उत्पन्न होंगे ।१०३०।

जो सो सेणियराया, कालं काऊण काल मासम्मि ।
रयणप्पमाए तीसे, उव्वहित्ता य इहयम्मि ।१०३१।
(यः स श्रेणिकराजा, कालं कृत्वा कालमासे ।
रत्न प्रभायां तस्यां, उद्वर्त्य च इहके ।)
सीमंत नरगाओ उ, आउं परिपालिऊण तो भगवं ।
चउरासीति सहस्साणं, वासाणं सो महापउमो ।१०३२।
(सीमंत नरकात्तु, आयुः परिपाल्य ततः भगवान् ।
चतुरसीति सहस्राणां, वर्षाणां स महापद्मः ।)

भगवान् महावीर का परम भक्त राजा श्रेणिक था, वह अपनी आयु पूर्ण होने पर काल धर्म को प्राप्त हो रत्नप्रभा नाम की में उत्पन्न हो वहां सीमन्त नरक की अपनी ८४,००० वर्ष की आयु पूर्णकर वह भगवान महापद्म के रूप में रानी भद्रा की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न होंगे ।१०३१--१०३२।

चेत्तस्स सुद्ध तेरसि, चंदे हत्थुत्तरेण जोगेणं ।
सिद्धत्थ महा पउमा, जाया दस एकसमएणं ।१०३३।
(चैत्रस्य शुक्ल त्रयोदश्यां, चन्द्रस्य हस्तोत्तरेण योगेन ।
सिद्धार्थ महापद्माः, जाता दश एक समयेन ।)

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को चन्द्र का हस्तोत्तरा के साथ योग होने पर सिद्धार्थ और महापद्म १० तीर्थंकर (दश क्षेत्रों में) एक ही समय में उत्पन्न होंगे ।१०३३।

नाणा रयणा विचित्ता, वसुधारा निवडिया कलकलेंती ।
गंभीर महुर सद्दो य, दुंदुभिताडियो गयणे ।१०३४।
(नाना रत्न विचित्रा, वसुधारा निपतिता कल कलन्ती ।
गम्भीरमधुर शब्दश्च दुंदुभिताडितः गगने ।)

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ १२०३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

अद्ध नवमा य मासा, वासा तिन्नेव होंति वोक्कंता।
दूसमसुस्समा काले, तो उप्पण्णो महा पउमो ।१०३८।
(अर्द्ध नवमा च मासा, वर्षाणि त्रीण्येव भवन्ति व्युत्क्रान्ता।
दुःषम सुषमा काले, तत उत्पन्नो महा पद्मः।)

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुष्पम सुषम नामक तृतीय आरक के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर महापद्म तीर्थंकर का जन्म होगा।१०३८।

चुलसीति सहस्साइं, वासा सत्तेव पंच मासा य।
वीर महा पउमाणं, अंतरमेयं तु विन्नेयं ।१०३९।
(चतुरसीति सहस्राणि वर्षाणि सप्तैव पंच मासाश्च।
वीर महापद्मयोरंतरमेत तु विज्ञेयम्।)

भगवान् महावीर और महापद्म इन दोनों के बीच के काल का अन्तर ८४,००७ वर्ष और पांच मास समझना चाहिए।१०३९।

तुट्ठा उ देवीओ, देवा आणंदिया सपरिसग्गा।
भयवंमि महापउमे, तइलोक्क सुहावहे जाते ।१०४०।
(तुष्टास्तु देव्यः, देवा आनन्दिताः सपरि षत्काः।
भगवति महापद्मे, त्रैलोक्यसुखावहे जाते।)

त्रैलोक्य को सुख प्रदान करने वाले तीर्थंकर भगवान् महापद्म के उत्पन्न होने पर देवियां बड़ी प्रसन्न होंगी और अपनी परिषदों सहित देव-देवेन्द्र आनन्द का अनुभव करेंगे।१०४०।

जायंमि महापउमे, पउम मणि कणगवर वासं।
मुंचंति देवसंघा, हरिसवसुल्ल सियरोमंचा ।१०४१।
(जाते महापद्मे, पद्ममणि-रत्न-कनकवरवर्षम्।
मुंचन्ति देवसंघाः, हर्षवशोल्लसित रोमाञ्चाः।)

भगवान् महापद्म का जन्म होने पर हर्षातिरेक से पुलकित हो देवों के समूह पद्ममणियों, रत्नों और स्वर्णमुद्राओं की बड़ी सुन्दर वर्षा करेंगे।१०४१।

[illegible] नगरे, [illegible] ।
[illegible] महाराजे, नामं [illegible] ॥१०४२॥
([illegible] नगरे, [illegible] ।
[illegible], नाम [illegible] ॥)

[illegible]

[illegible] ॥१०४३॥
[illegible] ।
[illegible])

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥१०४४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥)

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥१०४५॥
[illegible] ।
[illegible]

उस समय लोग पारस्परिक द्वेष तथा त्रास से रहित, विप्लव, उथल-पुथल, भय, दण्ड, आततायी के आक्रमण, ईति-भीति (महामारी), और चोर लुटेरों के भय से विहीन तथा कर भार से उन्मुक्त होंगे ।१०४५।

अह वड्ढंति सो भगवं, सुमतिरायस्स संगतो धीरो ।
दासीदास परिवुडो, परिकिण्णो पीढमद्देहिं ।१०४६।
(अथ वर्द्धते स भगवान्, सुमतिराज्ञः संगतः धीरः ।
दासीदासपरिवृतः, परिकीर्णः पीठमर्दैः ।)

सुमति नृपति के आनन्दवर्द्धक वे धैर्यशाली प्रभु महापद्म दासी-दासियों से घिरे हुए एवं सुखासनों पीठमर्द आदि पर सुशोभित हो बढ़ने लगेंगे ।१०४६।

असित सिरतो सुनयणो, बिंबोट्ठो धवलदंती पंतीओ ।
वरपउमगब्भगोरो, फुल्लुप्पल गंधनीसासो ।१०४७।
(असित शिरजः सुनयनः, बिम्बोष्ठः धवलदन्तपंक्तीकः ।
वरपद्मगर्भगौरः, फुल्लोत्पलगन्धनिःश्वासः ।)

भगवान् महापद्म भ्रमर सन्निभ काली केश राशि, अति सुन्दर विशाल लोचन युगल, बिम्ब फल तुल्य लाल-लाल ओष्ट-पुट, स्वच्छ धवल दन्त-पंक्तियों वाले, श्रेष्ठ पद्म के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित नीलकमल के फूल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वास निःश्वास वाले होंगे ।१०४७।

जातीसरो उ भयवं, अप्परिवडिएहिं तिहि उ नाणेहिं ।
कंतीहि य पुट्ठीहि य, अब्भहितो तेहिं मणुएहिं ।१०४८।
(जातिस्मरस्तु भगवान्, अप्रतिपतितैस्त्रिभिस्तु ज्ञानैः ।
कान्तिभिश्च पुष्टिभिश्च, अभ्यधिकः तेभ्यः मनुजेभ्यः ।)

वे प्रभु महापद्म जातिस्मर ज्ञान तथा कभी क्षीण न होने वाले मति-श्रुति-अवधि-इन तीन ज्ञान से युक्त तथा उस समय के सभी मनुष्यों की अपेक्षा अत्यधिक कान्ति एवं पुष्टि वाले होंगे ।१०४८।

तत्पश्चात् माता-पिता शुभ तिथि और शुभ करण में महापद्म का बड़े सामन्त कुल में उत्पन्न हुई यशोदा नामक एक सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह करेंगे।१०५२।

भर हंमि पढम राया, हय-गयरह-जोह संकुलं सेणं।
तो माणि भद्द देवो, काहिति पुण्णभद्दो य १०५३।
(भरते प्रथमो राजा, हय गज रथ योध संकुलं सैन्यम्।
ततः मणिभद्रदेवः करिष्यति पूर्णभद्रश्च।)

महापद्म आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के प्रथम राजा होंगे। मणिभद्र और पूर्णभद्र देव उन राजा महापद्म के लिये अश्व-गज एवं रथारोही योद्धाओं की एक अति विशाल सेना संगठित करेंगे।१०५३।

जम्हा देवा सेणं, पडियग्गंति उ पुव्व संगइया।
तम्हा उ देवसेणो, देवासुर पूजितो नामं।१०५४।
(यस्मात् देवाः सैन्यं, प्रत्यग्रन्ति तु पूर्व संगतिकाः।
तस्मात् तु देवसेनः, देवासुरपूजितः नाम)

पूर्व भव के मित्र देवों द्वारा सेना के संगठित किये जाने कारण महापद्म का दूसरा नाम देवासुर पूजित देवसेन भी प्रसि होगा।१०५४।

धवलं गयं महंतं, सत्तंग पइट्ठितं चउद्दंतं।
वाहेति विमल जसो, नामं तो विमलवाहणोत्ति १०५५।
(धवलं गजं महान्तं, सप्तांगप्रतिष्ठितं चतुर्दन्तम्।
वाहयति विमलयशः, नाम अतः विमलवाहन इति।)

विमल यश के भागी राजा महापद्म सर्वांग सुन्दर चतुर्दन्त नामक एक महान् एवं श्वेत रंग के हाथी पर आरोहण करेंगे इस लिये उनका तीसरा नाम विमलवाहन भी प्रसिद्ध होगा।१०५५।

सो देव-परिग्गहीओ, तीसं वासाइं वसति गिहवासे।
अंमापित्तीहिं भगवं, देवत्ति गतेहि पव्वइत्तो।१०५६।

[illegible] देव [illegible] [illegible] वर्षाणि [illegible] [illegible] ।
[illegible] भगवान् [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] द्वारा [illegible] के भगवान् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] होने पर [illegible] [illegible]

विज्ञापित करते हैं—"भगवन् ! तीर्थ का प्रवर्तन कीजिये' ।१०६५।

एवं अभिथुणन्तो, बुद्धो फुल्लारविंद सरिसमुहो ।
लोगंतिय देवेहिं, सयदारंमि य महा पउमो ।१०६६।
(एवं अभिस्तूयमानः, बुद्धः फुल्लारविन्द सदृशमुखः ।
लोकान्तिक देवैः, शतद्वारे च महापद्मः ।)

लोकान्तिक देवों द्वारा शतद्वार नगर में इस प्रकार की स्तुति की जाने पर कमल के खिले पुष्प के समान नेत्रों वाले भगवान् महापद्म बुद्ध—(विज्ञप्त) हुए अर्थात् प्रभु को तीर्थ--प्रवर्तन का ध्यान आयेगा ।१०६६।

मणपरिणामो य कतो, अभिनिक्खमणंमि जिणवरिंदेण ।
देवेहिं य देवीहिं य, समंतओ उच्छुयं गयणं ।१०६७।
(मन परिणामश्च कृतः, अभिनिष्क्रमणे जिनवरेन्द्रेण ।
देवैश्च देवीभिश्च, समन्ततः उत्सृतं गगनम् ।)

भगवान् महापद्म अपने मन में अभिनिष्क्रमण का दृढ़ निश्चय करेंगे और देवों तथा देवियों द्वारा आकाश दिव्य घोषों से गुंजरित कर दिया जायेगा ।१०६७।

भवणवइ वाणमंतर, जोइसवासी विमाणवासी य ।
धरणियले गयणयले, विज्जुज्जोओ कओ खिप्पं ।१०६८।
(भवनपतिः वाणव्यन्तर, ज्योतिषवासी विमानवासीभिश्च ।
धरणितले, गगनतले, विद्युद्द्योतः कृतः क्षिप्रम् ।)

भवनपति, वाणमन्त्रर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तत्क्षण पृथ्वीतल पर और आकाश में विजली का प्रकाश करेंगे ।१०६८।

जेट्ठं नलिणिकुमारं, रज्जेठविचु तं महापउमो ।
उत्तत्तकणगवण्णो, मगसिर बहुलस्स दसमीए ।१०६९।
(ज्येष्ठं नलिनिकुमारं, राज्ये स्थापयित्वातं महापद्मः ।
उत्तप्त कनकवर्णः, मार्गशीर्ष बहुलस्य दशम्याम् ।)

[illegible] के समान [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुमार, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए—।।१०६९।।

(१०७० तथा १०७१ संख्याके द्वे गाथे प्रतौ न स्तः)

[संपादकीय नोट:—[illegible] [illegible] की गाथा के [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] से १०६९ संख्या लिखी हुई है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं की गई है पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुई। इस गाथा के [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] गाथा [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] है और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] की गाथा [illegible] से छूटी नहीं है।]

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।।१०७२।।
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।।

[illegible] [illegible]—।।१०७२।।

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।।१०७३।।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible]

पण्णासमायामा, धणूणि वीसाय पणवीसायाया ।
छव्वीसइतुस्सेहा, सीता चंदप्पभा भणिया ।१०७४।
(पञ्चाशदायामा, धनूंषि विंशतिश्च पंचविंशत्यायाता ।
षड्विंशत्युत्सेधा, सीता चन्द्रप्रभा भणिता ।)

वह चन्द्रप्रभा नाम वाली पालकी ५० धनुष लम्बी, मध्य में २५ और शेष आगे पीछे के भागों में २० धनुष चौड़ी तथा छत्तीस धनुष ऊँची बताई गई है ।१०७४।

सीयाए मज्झयारे, दिव्वं मणिरयणकणग विंबइयं ।
सीहासणं महरिहं, सपाय पीढं जिणवरस्स ।१०७५।
(सीतायाः मध्यद्वारे, दिव्यं मणिरत्नकनकबिम्बितम् ।
सिंहासनं महार्घ्यं, सपादपीठं जिनवरस्य ।)

उस चन्द्रप्रभा शिविका के बीचोंबीच उन भगवान् महापद्म तीर्थंकर के लिये पादपीठ सहित दिव्य मणियों, रत्नों एवं स्वर्ण से निर्मित एक महा मूल्यवान् सिंहासन होगा ।१०७५।

आलइय माल मउडो, भासुर वोंदी [?] पलंबवणमालो ।
सियवत्थ संनियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं ।१०७६।
(आललित भालमुकुटः, भासुर बोंदि प्रलम्बवनमालः ।
सितवस्त्र सन्न्यस्तः, यस्य च मूल्यं शतसहस्रम् ।)

सुविशाल भाल पर अति ललित मुकुट धारण किये हुए, प्रकाशमान देह छवि वाले आजानु विशाल वनमालाओं से विभूषित एवं लाख स्वर्ण-मुद्राओं के मूल्य वाले श्वेत वस्त्र को धारण किये हुए—।१०७६।

छट्ठेणं भत्तेणं, अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो ।
लेसाहि विसुज्झंतो, आरुमती उत्तमं सीयं ।१०७७
(षष्ठेन भक्तेन, अध्यवसायेन शोभनेन जिनः ।
लेश्याभिः विशुद्ध्यमानः, आरोहति उत्तमां सीताम् ।)

[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible], [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

(वनखण्ड इव कुसुमितः पद्मसरो वा यथा शरत्काले ।
शोभते कुसुमभरेण, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

जिस प्रकार प्रफुल्लित सुविशाल पुष्प वन अथवा शरद् ऋतु में पद्म-सरोवर यत्र तत्र-सर्वत्र खिले फूलों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुरों एवं सुरबालाओं के समूहों से व्याप्त वहां का गगन मण्डल बड़ा सुशोभित हो उठता है ।१०८१।

अह सिद्धत्थवणं व जहा, असणवणं सणवणं असोगवणं ।
चूतवणं व कुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ।१०८२।
(अथ सिद्धार्थवनं वा यथा, अशनवनं सणवनं अशोकवनम् ।
चूतवनं वा कुसुमितं, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

देव-देवी वृन्द से व्याप्त गगन मण्डल इस प्रकार शोभायमान होने लगेगा मानो सिद्धार्थ वन अशनवन, सुरण वन. अशोक वन, और आम्रवन एक साथ ही वहां कुसुमित हो उठे हों ।१०८२।

अलसिवणं व कुसुमितं, कणियारवणं व चंपयवणं वा ।
तिलगवणं सुकुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ।१०८३।
(अलसिवनं वा कुसुमितं. कर्णिकारवनं वा चम्पकवनं वा ।
तिलकवनं सुकुसुमितं, एवं गगन-तलं सुरगणैः ।)

देवों एवं अप्सराओं के समूहों से व्याप्त वहां का गगन मण्डल उस समय ऐसा शोभायमान हो रहा होगा, मानो अलसी, कनेर, चंपक और तिलों के वन विविध सुन्दर पुष्पों से भरे पूरे हो लहलहा रहे हों ।१०८३।

वरपडहभेरि झल्लरि, दुंदुहि संखसतेहिंतुरीहिं ।
धरणि यलगयणयले, तुरिय निनाओ परम रम्मो ।१०८४।
(वर पटह-भेरि-झल्लरि-दुंदुभि-शंख शतैः तुर्गैभिः ।
धरणितल गगनतले, तूर्य निनादः परम रम्यः)

सैंकड़ों अत्युत्तम पटहों भेरियों झल्लरियों, दुंदुभियों शङ्खों एवं तूर्यों के कर्णप्रिय अतिरम्य निनाद धरातल पर और गगन मण्डल में होने लगेंगे ।१०८४।

एवं [illegible], परिव्वयाइ परिवुडो भगवं।
अभिथुव्वंतो गिरा हिं, मज्झं मज्झेण नयराए॥१०८४॥
(एवं [illegible], परिवृतः परिवृतः भगवान्।
अभिष्टूयमानः गीर्भिः, मध्ये मध्येन नगरस्य॥)

इस प्रकार देवों, मनुष्यों एवं असुरों के [illegible] द्वारा परि-वृत एवं स्तुति वचनों से स्तूयमान भगवान् [illegible] नगर के [illegible] होकर चले हैं—१०८४।

[illegible], [illegible] परिवुडो धीरो।
उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ॥१०८५॥
([illegible], [illegible] परिवृतः धीरः।
उद्यानं संप्राप्तः (सन्), अवतीर्णः उत्तमायाः [illegible])

[illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]
[illegible] [illegible] के [illegible]

[illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१०८६॥

[illegible]

([illegible], [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible])

जिणवरमरणुण्णविता, अंजणघणरूयगब्भमर संकासा ।
केसा खणेण नीता, खीर सरीस नाम यं उदहिं ।१०८८।
(जिनवर मनुज्ञाप्य, अंजन घन रुचक भ्रमर संकासा ।
केशा क्षणेन नीता क्षीर-सरिदीश नामकं उदधिम् ।)

शक्र प्रभु महापद्म की आज्ञा प्राप्त कर काजल, काले बादल, रुचक तथा भ्रमर के समान काले उन लुञ्चित केशों को क्षण मात्र में क्षीर सागर में डाल लौट आयेगा ।१०८८।

दिव्वो मणुस्स-घोसो तुरिय निनाओ य सक्क वयणेणं ।
खिप्पामेव निलुक्को, ताहे पडिवज्जइ चारित्रं ।१०८९।
(दिव्यो मनुष्यघोपस्तुरहीनिनादश्च शक्रवनेन ।
क्षिप्रमेव निलुप्त, ततः प्रतिपद्यते चारित्रम्)

तदनन्तर शक्र के कथन से तत्काल देवों तथा मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले जयघोष और तूर्य आदि वाद्यों की ध्वनि बन्द हो जायगी और प्रभु निर्ग्रन्थ चारित्र ग्रहण करेंगे ।१०८९।

काऊण नमोक्कारं, सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे ।
सव्वं मे अकरणिज्जं, पावंति चरित्तमारूढो ।१०९०।
(कृत्वा नमस्कारं, सिद्धेभ्योऽभिग्रहं तु स गृह्णोत् ।
सर्वं मे अकरणीयं, पापमिति चारित्रमारूढः ।)

वे सिद्धों को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा करेंगे:—"मेरे लिये सब प्रकार के पाप अकरणीय हैं" (अर्थात् मैं यावज्जीव अब किसी प्रकार का पाप नहीं करूंगा) और इस प्रकार की प्रतिज्ञा द्वारा वे चारित्र (पंच महाव्रत) ग्रहण करेंगे ।१०९०।

तिहिं नाणेहिं समग्गा, तित्थयरा जाव होंति गिहवासे ।
पडिवण्णम्मि चरित्ते, चउनाणी जाव छउमत्था ।१०९१।
(त्रिभिर्ज्ञानैः समग्राः तीर्थकराः यावत् भवन्ति गृहवासे ।
प्रतिपन्ने चारित्रे, चतुर्ज्ञानी यावत् छद्मस्था ।)

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible] ॥

([illegible] इति शेषः)

वइसाह सुद्धदसमीए, केवलं नाम साल हेट्ठं मि ।
छट्ठेणुक्कडुय सओ, उप्पण्णं जंभिया गामे ।१०९५।
(वैशाख शुद्धदशम्यां. केवलं नाम सालस्य अधः ।
षष्ठेन उत्कुट सतः, उत्पन्नं जृम्भिका ग्रामे ।)

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन जृंम्भिका नामक ग्राम के बाहर शालवृक्ष के नीचे उकडू (गोदोहिका) आसन से बैठे हुए बेले की तपस्या से केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे ।१०९५

सेसाणंपि नवण्हं, एवं वइसाह सुद्धद समीए ।
हत्थुत्तराहिं नाणं, होही जुगवं जिणंदाणं ।१०९६।
(शेषानामपि नवानां, एवं वैशाख शुद्ध दशम्याम् ।
हस्तोत्तराभिर्ज्ञानं, भविष्यति युगपज्जिनेन्द्राणाम्)

इसी प्रकार शेष ९ क्षेत्रों के ९ (प्रथम) तीर्थंकर भी वैशाख शुक्ला दशमी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में एक साथ (एक ही समय में) केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे ।१०९६।

उप्पण्णंमि अणंते, नट्ठंमिउ छाउमात्थिए नाणे ।
राइए संपत्तो, महसेणवणं तु उज्जाणं ।१०९७।
(उत्पन्ने अनन्ते, नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने ।
रात्रौ सम्प्राप्तः, महासेन वनं तु उद्यानम् ।)

अनन्त ज्ञान अनंत दर्शन और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने और छाद्मस्थिक ज्ञान के नष्ट होने पर जम्बू द्वीपस्थ भरत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल के) प्रथम तीर्थंकर भगवान् महापद्म रात्रि के समय में ही विहार कर महासेन वन नामक उद्यान में समवसृत होंगें ।१०९७।

अमरनर राय महिओ, पत्तो धम्मवर चक्कवट्टित्तं ।
बीयम्मि समोसरणे, पावाए मज्झिमाए उ ।१०९८।
(अमरनरराजमहितः, प्राप्तः धर्मवर चक्रवर्तित्वम् ।
द्वितीये समवसरणे, पावायां (अपापायां) मध्यमायां तु ।)

गुरुजी एवं महन्तों द्वारा पूजित ... सत्पुरुष साधक ... सन्तों में हुए इनके समकालीन में (अनुदित शब्दों का ...) ... के पद में निबुद्धित हुये ॥८८॥

एकस्मिन् हि समये, सर्वे उदय विनय कुर्वन्ति ।
शरण सद्गुरुनाम्, सर्वाः अस्माकं भवन्ति ॥१०९॥
(एकदाऽपि समये, सर्वे उदय-विनय कुर्वन्ति ।
शरणं सद्गुरुणाम्, मनकृपा करते ॥)

बहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान की ऋद्धि से सम्पन्न श्रमणों के समूह से परिवृत्त--सेवित वे त्रिभुवननाथ तीर्थंकर (अपने अपने क्षेत्रों में) विचरण करेंगे ।११०६।

वड्ढति जणवयवंसो,* नलिणिकुमार रायवंसो उ ।
सब्भावो वि य वड्ढति, एवं कालाणुभावेण ।१११०।
(वर्द्धते जनपदवंशः, नलिनीकुमार राजवंशस्तु ।
सद्भावोऽपि च वर्द्धते, एवं कालानुभावेन ।)

इस प्रकार उत्सर्पिणी काल के ऊर्ध्वगामी वर्द्धमान काल प्रभाव से, जनपदों की संख्या-श्री-समृद्धि नलिनी कुमार का राजवंश और सद्भाव (आगमज्ञान-सम्यग्ज्ञान) की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी ।१११०।

निट्ठविय कम्मजालो, कत्तियवहुलस्स चरम रातीए ।
सिज्झिहिति नाम पउमो, अण्णाए पावा नगरीए ।११११।
(निष्ठापित कर्मजालः, कार्तिकबहुलस्य चरम रात्रौ ।
सेत्स्यति नाम पद्मः, अन्यायां अपापा नगर्याम् ।)

अन्त में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर महापद्म कार्तिक की मास के कृष्ण पक्ष की अन्तिम रात्रि में शेष अघाती चार कर्मों के जाल को भी पूर्णतः समाप्त कर अपर अपापा नगरी में सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होंगे ।११११।

नवसु वि वासे सेवं, सिद्धत्थादीय जिणवरिंदाउ ।
साइंमि जोग-जुत्ते, कत्तियवहुलस्स अंतम्मि ।१११२।
(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, सिद्धार्थादयश्च जिनवरेन्द्रास्तु ।
स्वातौ योगयुक्ते, कार्तिकबहुलस्य अन्ते ।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत तथा पांच ऐरवत— इन ६ क्षेत्रों में भी सिद्धार्थ आदि उत्सर्पिणी काल के ६ प्रथम तीर्थंकर

---

* आहोर ग्रामस्थ श्री राजेन्द्रसूरि ग्रन्थागारादुपलब्ध प्रतौ तु 'वड्ढति जिणवयणवंसो"—इति पाठः विद्यते ।

(नगरं प्रतिलोमानि, तीर्थोद्गालिकेवीर भणितानि ।
तीर्थंकरान् आगमिष्यतः नाम नामभिः कीर्तयिष्यामि ।)

इस अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों के अन्तराल, आयु उत्सेध आदि का जो अनुक्रमशः वर्णन किया गया है, जिनेश्वर महावीर ने व्यतिक्रम अर्थात् प्रतिलोमात्मक अनुक्रम से वही अन्तर आयु उत्सेध आदि आगामी उत्सर्पिणी काल की दश चौवीसियों के तीर्थंकरों का भी तीर्थ-ओगाली (प्रवाहों) में बताया है। अब मैं आगामी उत्सर्पिणी काल के तीर्थङ्करों का नामस्मरण-पूर्वक कीर्तन करूँगा ।१११५।

महा पउमे हिय सुरदेवे सुपासे य सयंपभे ।
सव्वाणुभूति अरहा, देवगुत्तो य होहिहि ।१११६।
(महापद्मः हि च सुरदेवः सुपार्श्वश्च स्वयं प्रभः ।
सर्वानुभूति अर्हत्. देवगुप्तश्च भविष्यति ।)

महापद्म (१) सुरदेव (२), सुपार्श्व (३), स्वयंप्रभ (४), सर्वानुभूति जिन (५) देवगुप्त (६) और--।१११६।

उदग पेढाल पुत्ते य पोट्टिले सत्त गीत्तिय ।
मुणिसुव्वते य अरहा सत्वभाव विउजिणे ।१११७।
(उदकः पेढालपुत्रश्च, प्रोट्टिलः शतकीर्तिश्च ।
मुनि सुव्रतश्च अर्हत्, सर्वभावविदो जिनाः ।)

उदक (७), पेढाल पुत्र (८) पोट्टिल (९), शतकीर्ति (१०), मुनि सुव्रत अर्हत (११)—ये त्रिकालवर्ती भावों को देखने जानने वाले जिनेश्वर--।१११७।

अममे णिक्कसाए य, निप्पुलाए य निम्ममे ।
चित्तगुत्ते समाही य, आगमिस्साए ते होहिति ।१११८।
(अममः निष्कषायश्च, निष्पुलाकश्च निर्ममः ।
चित्रगुप्तः समाधिश्च, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।)

अमम (१२), निष्कषाय (१३), निष्पुलाक (१४), निर्मम (१५) चित्रगुप्त (१६), समाधि (१७)—ये आगामी चौवीसी के तीर्थंकर तथा--।१११८।

(अणंत विजय त्रियक् (?), एते उक्ता चतुर्विंशतिः ।
भारते वर्षे केवलिनः, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।
धर्मतीर्थस्य देशका ।)

अनन्त विचय (२३) और तियए [त्रियक् ?] (२४)- ये आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षत्र में चौवीस धर्मतीर्थ के उपदेशक अथवा प्रवर्तक तीर्थंकर होंगे ।११२०।

एत्तो परंतु वोच्छं, तित्थगराणं तु नाम संखेवं ।
एरवते आगामिस्से, सिरसा वंदित्तु कित्तेहं ।११२१।
(इतः परं तु वक्ष्ये, तीर्थकराणां तु नाम संक्षेपम् ।
ऐरवते आगामीनां, शिरसा वन्दित्वा कीर्तयिष्येऽहम् ।)

अब इससे आग मैं आगामी उत्सर्पिणी काल के ऐरवत क्षेत्र में होने वाले तीर्थंकरों को शिरः नमनपूर्वक वन्दन कर नामस्मरण के साथ संक्षेपतः कीर्तन करूंगा ।११२१।

सिद्धत्थे पुण्ण घोसे य, महाघोसे य केवली ।
सुयसागरे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२२।
(सिद्धार्थः पुण्यघोषश्च, महाघोषश्च केवली ।
श्रुतसागरश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशंतु मे ।)

सिद्धार्थ (१), पुण्य घोप (२), केवली महाघोष (३) अर्हत् श्रुतसागर (४) मुझे समाधि प्रदान करें ।११२२।

सुमंगले अत्थसिद्धे य, निव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झाए य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२३।
(सुमंगलोऽर्थसिद्धश्च, निर्वाणश्च महायशः ।
धर्मध्यातश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदर्शयंतु मे ।)

सुमंगल (५), अर्थसिद्ध (६), निर्वाण (७), महायश (८), धर्मध्यात (९) अर्हत् मुझे समाधि प्रदान करें ।११२३।

सिरिचंदे दढकेत्ते, महाचंदे य केवली ।
दीहपासे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२४।

(विमले उत्तरश्चैव, अर्हंच्च महाबलः ।
देवानन्दश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशन्तु मे ।)

विमल (१८), उत्तर (१९), अर्हत् महाबल (२०) और अर्हत् देवानन्द (२१) मुझे समाधि प्रदान करें ।११२७।

[इन गाथाओं में २४ के स्थान पर केवल २१ तीर्थंकरों के ही नाम हैं। बार-बार दुहराए गए—"समाहिं पडिदिसंतु मे"—इस पद में तीन नाम लुप्त हो गए हैं। आहोर से प्राप्त प्रति में तीसरे तीर्थंकर महाघोष का नाम नहीं है. कि लिपिक की असावधानी से वह नाम नहीं लिखा गया है ।]

एते वुत्ता चउव्वीसं, एरवतंमि य केवली ।
आगमेसाए होहिंति, धम्मतित्थस्स देसगा ।११२८।
(एते उक्ताश्चतुर्विंशति, एरवते च केवलिनः ।
आगामिन्यां भविष्यन्ति, धर्मतीर्थस्य देशकाः ।)

ये जो २४ तीर्थंकर बताये गये है वे आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले होंगे ।११२८।

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८७
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुय सागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८८
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८९
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्तेय होक्खई ।९०
सुपासे सुव्वए अरिहा, अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंतविजए, आयमिस्साण होक्खई ।९१
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।९२

(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, द्वादश द्वादश च चक्रवर्तिनः [चक्रवर्तयः]
एतेषां तु निधीन्, वक्ष्यामि समासतः शृणुत ।)

इस प्रकार ढाई द्वीप के पांच ऐरवत और शेष चार भरत— इन ९ क्षेत्रों में भी प्रत्येक में बारह-बारह चक्रवर्ती होंगे। अब मैं इन चक्रवर्तियों की निधियों का संक्षेपतः कथन करूंगा, उसे सुनिये ।११३१।

नेसप्प पंडु पिंगल, सव्वरयणवर तहा महापउमे ।
काले य महाकाले, माणवग महानिही संखे ।११३२।
(नैसर्पः पाण्डुकः पिङ्गलः, सर्वरत्नवर तथा महापद्मः ।
कालश्च महाकालः, माणवकः महानिधिः शंखः ।)

नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गल, सर्वरत्नवर, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शङ्ख—ये चक्रवर्तियों की ९ निधियां होती हैं ।११३२।

नेसप्पंमि निवेसा, गामागरनगर पट्टणाइं तु ।
दोणमुहमडंबाणं, खंधाराणं गिहाणं च ।११३३।
(नैसर्पे निवेशाः, ग्राम-आकर-नगर-पत्तनानि तु ।
द्रोणमुख-मडम्बानि, स्कन्धावाराणि गृहाणि च)

नैसर्प निधि द्वारा निवेशों, ग्रामों, आकरों, नगरों, पत्तनों, द्रोणमुखों, मडम्बों, स्कन्धावारों और गृहों का (तत्काल) निर्माण किया जाता है ।११३३।

गणियस्स य उप्पत्ती, माणुम्माणस्स जं पमाणं च ।
धण्णस्स य बीयाण य, उप्पत्ती पंडुए भणिया ।११३४।
(गणितस्य च उत्पत्तिः, मान-उन्मानस्य यत् प्रमाणं च ।
धान्यस्य च बीजानां च, उत्पत्तिः पाण्डुके भणिता ।)

पाण्डुक निधि में गणित, मान, उन्मान, परिमाण, धान्य एवं बीज आदि की उत्पत्ति बताई गई है ।११३४।

गणहरप्प सिद्धी, अज्जियाणं [illegible] पुरिसाणं।
[illegible] य इत्थीण य, [illegible] णिच्छि[illegible] ण अत्थि॥ १६३॥
[illegible] अज्जिकानां [illegible] पुरुषाणाम्।
[illegible] च स्त्रीणां च, [illegible] निर्वाणं न अस्ति॥)

[illegible] अज्जिकाओं [illegible] पुरुषों [illegible]
[illegible] [illegible] है। १६३॥

(काले [कालनिधौ] कालज्ञानं, नव्यं पुराणं च त्रिषु वर्षेषु= ।
शिल्पशतं कर्माणि च, त्रीणि@ प्रजायाः हितकराणि ।)

काल नामक निधि में वर्तमान वस्तु विषयों भावी तीन वर्षों के वस्तु विषयों का तथा अतीत तीन वर्षों के वस्तु विषयों का नवीन और पुरातन कालज्ञान तथा प्रजा के लिये हितकारी सैंकड़ों प्रकार के शिल्पों, कृषि वाणिज्यादि कर्मों एवं कालज्ञान की उत्पत्ति होती है ।११३८।

लोहाण य उप्पत्ती, होई महाकाले आगराणं च ।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य, मणि मोत्ति सिलप्पवालाणं ।११३९।
(लोहानां च उत्पत्तिः, भवति महाकाले आकराणां च ।
रूप्यस्य स्वर्णस्य च, मणिमौक्तिकशिला [स्फटिक] प्रवालानाम् ।)

महाकाल निधि में सभी प्रकार के लोहों, विविध खनिजों चांदी, सोना, मणि, मौक्तिक, स्फटिक आदि शिलाओं एवं मूंगों (प्रवालों) को उत्पत्ति होती है ।११३९।

सेणाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य दंडनीति, माणवगे रायनीती य ।११४०।
(सैन्यानां च उत्पत्तिः, आवरणानां [संनाहानां], च प्रहरणानां च ।
सर्वा च दण्डनीतिः, माणवके राजनीतिश्च ।)

चक्रवर्तियों की माणवक नामक निधि में चतुरग सैन्यों, आवरणों (शत्रु के शस्त्रास्त्रों से रक्षा करने वाले तनुत्राणों, कवचों, ढालों, प्रहार करने योग्य सभी शस्त्रों, अस्त्रों, सब प्रकार की दण्ड-नीतियों एवं राजनीति की उत्पत्ति होती है ।११४०।

नट्टविही नाडगविही, कव्वस्स चउ व्विहस्स उप्पत्ती ।
संखे महानिहिम्मि, होइ तुडियंगाणं च सव्वेसिं ।११४१।

= वर्तमानवस्तुविषय, अनागतवर्षत्रयविषयं अतीतवर्षत्रयविषयमित्यर्थः ।

@ त्रीणि—कालज्ञान-शिल्पशत-कृषिवाणिज्यादिकर्माणि च-इत्यर्थः ।

(पल्योपम स्थितिकाः, निधिसदृशनामानश्च तेषु खलु देवाः।
तेषां ते आवासाः, मनोहर गुणराशिसंपन्नाः ।)

एक पल्योपम की आयु वाले तथा उन निधियों के समान नाम वाले देवता उन निधियों में रहते हैं। मनोहर गुणराशियों से सम्पन्न वे निधियां ही उन देवों के आवास होती हैं।११४४।

एए ते नवनिहिओ, पभूयधणकणगरयणपडिपुण्णा ।
अणुसमयमणुव्वयंति, चक्कीणं सतत कालंमि * ।११४५।
(एते ते नवनिधयः, प्रभूतधनकनकरत्नप्रतिपूर्णाः ।
अनुसमयमनुव्रजन्ति, चक्रीन् सतत काले ।)

ये, वो नौ निधियां हैं जो विपुल धन स्वर्ण रत्नादि से परिपूर्ण रहती हैं। ये नौ निधियां चक्रवर्ती के सम्पूर्ण चक्रवर्तित्व काल में प्रतिक्षण चक्रवर्ती का अनुगमन करती हैं।।११४५

आउग उच्चत्ताइं, वण्णा रिद्धी य गति विसेसाइं ।
ओसप्पिणी ईमीसे, समाइं जा बंभदत्ताइं ।११४६।
(आयु-उच्चत्वादि वर्णाः रिद्धयश्च गति विशेषाणि ।
अवसर्पिण्यामिमायां, समानानि यावत ब्रह्मदत्तः ।)

प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम चक्रवर्ती भरत से लेकर अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के चक्रित्व काल तक इन ९ निधियों को आयु ऊंचाई, वर्ण ऋद्धि और गति आदि विशिष्टताएं समान रहती है।।११४६

एवं एते वुत्ता, कित्तीपुरिसाउ चक्किणो सव्वे ।
एत्तो परं तुवोच्छं, दसार वंसुब्भवा जेउ ।११४७।
(एवं एते उक्ताः, कीर्तिपुरुषास्तु चक्रिणः सर्वे ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, दशार्हवंशोद्भवाः ये तु ।)

* स्थानांगे तु—'जे वसमुव गच्छंती, सव्वेसि चक्कवट्टीणं ।" इति पाठः ।
द्वितीय चरणे 'कणग' शब्दस्याप्य भावः ।

(तिलकश्च जंघलोहश्च, वज्रजंघश्च केशरी चैव ।
प्रहरको ऽपराजितः, भीमः महाभीमः सुग्रीवः ।)

तिलक, लोहजङ्घ, वज्रजङ्घ, केशरी, प्रहरक, अपराजित भीम, महाभीम और सुग्रीव—।११५१।—

एते खलु पडिसत्तू, कित्ती पुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे विचक्क जोही, सव्वे वि हता सचक्केहिं= ।११५२।
(एते खलु प्रतिशत्रवः, कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः ।)

कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये ६ प्रतिशत्रु होंगे और अपने ही चक्रों द्वारा मारे जायेंगे ।११५२।

एवं एते भणिता, उस्सप्पिणीए उ उत्तमा पुरिसा ।
गरुय परक्कमपयडा, सम्मदिट्ठी चउप्पण्णं ।११५३।
(एवमेते भणिता, उत्सर्पिण्यास्त्वुत्तमाः पुरुषाः ।
गरुत् पराक्रमप्रकटाः, सम्यग्दृष्टयश्चतुःपञ्चाशत् ।)

इस प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल में जो कीर्तिपुरुष होंगे, उनका कथन किया गया । वे चौवन कीर्तिपुरुष सर्वतः विख्यात, महापराक्रमी और समदृष्टि होंगे ।११५३।

तेसीतिलक्ख णवणउति सहस्सा नवसता य पणनउया ।
(वासा) मासा सत्तद्धट्ठमा; दिणा य, धम्मो चउ समाए ।११५४।
(त्र्यशीतिलक्ष नवनवति सहस्रा नवशताश्च पंचनवतिः ।
(वर्षाः) मासा सप्त अर्द्धाष्टम दिनाश्च धर्मश्चतुः समायां ।)

तिरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ पच्यानवें (पूर्वांग ?) साढे सात मास और आठ दिन तक आगामी उत्सर्पिणी काल के

= समवायांगे तु "सव्वे वि चक्कजोही, हम्मिहिंति सचक्केहिं ।" अर्थात् सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः हनिष्यन्ते-घानिष्यते व स्वचक्रैः । भावी प्रतिवासुदेवेन्द्रः भविष्यत्कालक्रिया प्रयोग एव समीचीनः ।

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुःषम-सुषम आरक का यह वर्णन किया गया। तृतीय आरक का कथन समाप्त हुआ। अब मैं उत्सर्पिणी काल के सुषम-दुःषम नामक चतुर्थ आरक के सम्बन्ध में कथन करता हूँ।११५६।

पलितोवम लोहड्ढ (?) परमाउं होइ तेसि मणुयाणं।
उक्कोस चउत्थीए, पवड्ढमाणाउ रुक्खादी।११५७।
(पल्योपमं सार्द्ध (?) परमायुः भवति तेषां मनुष्याणाम्।
उत्कर्षं चतुर्थ्यां, प्रवर्द्धमानास्तु वृक्षादयः।)

उन (सुषम-दुःषम आरक के) मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम होती है। ज्यों ज्यों इस चतुर्थ आरक का समय व्यतीत होता जाता है त्यों त्यों कल्पवृक्ष आदि बढ़ते – वृद्धिगत रहते हैं।११५७।

जह जह वड्ढइ कालो, तह तह वड्ढंति कप्परुक्खादी।
एक्कं गाउगमुच्चा, नर नारी रूव संपण्णा।११५८।
(यथा यथा वर्द्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते कल्पवृक्षादयः।
एकं गाउकमुच्चा, नरनार्यः रूपसम्पन्नाः।)

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों कल्पवृक्षादि की वृद्धि होती रहती है। एक गाउ (माप विशेष क्रोश) की ऊंचाई वाले उस समय के नर-नारीगण बड़े रूप सम्पन्न होते हैं।११५८।

मूलफलकंदनिम्मल, नाणा विह इट्ठगंध रस भ ई।
ववगतरोगातंका, सुरू य सुर दुंदुहि थणिया।११५९।
(मूलफलकंदनिर्मल, नानाविधेष्टगंधरसभोजिनः।
व्यपगत रोगातंकाः, सुरूप-सुरदुंदुभिस्तनिताः।)

उस आरक के मानव अनेक प्रकार के सुगन्धित गन्ध रस वाले निर्मल कन्द-मूल-फलों का उपभोग करने वाले, रोग अथवा आतंक विहीन, सुन्दर रूप-सम्पन्न और देवदुन्दुभि के निर्घोष के समान मधुर स्वर वाले होते हैं।११५९।

[illegible] घण विडारी, ते पुरिसा नाम होंति महिलाउ ।
[illegible], ते च्चिय [illegible] गुणसमिद्धा ।।१६०।

([illegible]घनविदारिणः, ते पुरुषा नाम भवन्ति महिलास्तु ।
[illegible] पुष्पकलाः, तेऽपि न [illegible] गुणसमृद्धाः ।)

चित्तेसु य इह, नाणाविह भाइ सोयण विहीओ ।

कया सुंदरसीमा, बीयल्ला जलकलेसु ॥१९६०॥

(चित्रेषु च इह, नानाविध [illegible] [illegible]विधयः ।

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥)

(एषा उपभोगविधिः, समासतः भवति पंचमे आरके।
कोट्याकोट्यस्त्रीणिस्तु, षष्ठं आरकं तु वक्ष्यामि ।)

तीन कोटा-कोटि सागरोपम की स्थिति वाले सुःषमा नामक पंचम आरक में, जैसा कि संक्षेपतः बताया गया—इस प्रकार की उपभोग विधि होती है। अब मैं उत्सर्पिणी काल के छट्ठे आरक के सम्बन्ध में कथन करूंगा।११७०।

सुसम सुसमाए कालो, चत्तारि हवंति कोडिकोडीउ ।
इय सागरोवमाणं, काल पमाणेण नायव्वो।११७१।
(सुषम-सुषमायां कालः, चत्वारि भवन्ति कोटिकोट्यस्तु ।
एवं सागरोपमानां, कालप्रमाणेन ज्ञातव्यः)

सुषम-सुषम नामक (उत्सर्पिणी के षष्ठम) आरक काल प्रमाण से चार कोटाकोटि सागरोपम का होता है।११७१।

जह जह वड्डइ कालो, तह तह वड्ढंति आउ दीहादी ।
उवभोगा य नराणं, तिरियाणं चेक रुक्खेसु ।११७२।
(यथा यथा वर्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते आयुदीर्घतादि ।
उपभोगाश्च नराणां, तिर्यञ्चानां चैव वृक्षेषु)

ज्यों ज्यों समय आगे की ओर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की आयु, शरीर की ऊंचाई तथा उन्हें कल्पवृक्षों से प्राप्त होने वाली भोग सामग्री की वृद्धि होती जाती है।११७२।

सुसम सुसमाए मणुयाणं, तिण्णेव गाउयाइं उच्चत्तं ।
तिन्नि पलिओवमाइं, परमाउ तेसिं होइ बोधव्वं ।११७३।
(सुषम सुषमायां मनुजानां, तिस्त्र, एव गव्यूतयः उच्चत्वम् ।
त्रीण्येव पल्योपमानि, परमायुस्तेषां भवति (इति) बोद्धव्यम् ।)

सुःषम-सुःषम नामक आरक में मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई तीन गव्यूति (कोस) और उत्कृष्ट आयु ३ पल्योपम होती है, यह जानना चाहिये।११७३।

[illegible]
[illegible] १६७॥
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible] पन-[illegible]-गुहिकाञ्च यत्र [illegible] ।
[illegible], [illegible]-[illegible] [illegible] ॥

[illegible] (… ५०)

प्रकाशक :

श्वेताम्बर (चार थुई) जैन संघ, जालोर
श्वेताम्बर (चार थुई) जैन संघ तखतगढ (पाली)
श्री अचलचन्द, जोइतमल बालगोता
मोठवाड़ा (जालोर)

प्रथम संस्करण ५००

महावीर निर्वाण जयन्ती २५०० वाँ वर्ष

मू०

प्राप्ति स्थान (१) श्री कल्याण विजय शास्त्र समिति,
जालोर
(२) श्री नन्दीश्वर तीर्थ कार्यालय, जालोर

अहिंसा सत्याऽस्तेयादि, ब्रह्माऽपरिग्रहात्मक: ।
प्रोक्तो पंचशिखो धर्म-स्तं वीरं प्रणमाम्यहम् ॥

मुक्ते : शताब्दिसुमहे तव पञ्चविंशे,
भक्त्या प्रहृष्ट मनसा च समर्पयामि ।
तीर्थप्रवाहविषये स्फुटमर्थ पूर्ण,
तुभ्यं प्रकीर्णकमिदं श्रमणेन्द्र वीर !

जालोर, १ मई, १९७५

पंन्यासः गणिः कल्याणविजयः



नाणं च चरित्रमुत्तम,-तुब्भे पुव्वपुरिसाणुदिण्णं ।
लग्गंति जे य पुरिसा, मग्गं निव्वणगमणस्स ।११९७।
ज्ञानं च चारित्रमुत्तमं, युष्मभ्यं पूर्वपुरुषानुदत्तम् ।
लग्नन्ति ये च पुरुषाः, मार्गं निर्वाणगमनस्य ।)

पूर्व पुरुषों द्वारा तुम्हें प्रदत्त अर्थात बताये हुए मोक्षगमन के मार्ग उत्तम ज्ञान और चारित्र में जो पुरुष अग्रसर होते हैं (वे धन्य-हैं) ।११६७।

तह तह करेह सिग्घं, जह जह मुच्चह कसाय-जालेण ।
किसलदलग्गसंठिय, जललव इव चंचलं जीयं ।११९८।
तथा तथा कुरुत शीघ्रं, तथा यथा मुच्यते कषाय जालेन ।
किसलय दलाग्र संस्थित, जल लवेव च चंचल जीवितम् ।)

शीघ्रता पूर्व उस तरह के सब प्रयास करो, जिनके द्वारा कषायों के जाल से मुक्त हो सको क्योंकि किसी पौध के पत्ते पर पड़े जल-कण के समान जीवन अतीव चञ्चल अर्थात् क्षण विध्वंसी है ।११६८।

धण्णाणं तु कसाया, जगडिज्जंता वि अण्णमन्नं हिं ।
नेच्छंति समुट्ठेउं, सुणिविट्ठो पंगुलो जेव ।११९९।
धन्यानां तु कषायाः, जागृह्यमाना अपि अन्योन्यैः ।
नेच्छन्ति समुत्थातुं, सुनिविष्टः पंगुलः यथैव)

धन्यभाग्य प्राणियों के कषाय परस्पर एक दूसरे द्वारा जगाये जाते रहने पर भी अच्छी तरह सुख पूर्वक बैठे हुए पंगु की तरह उठने की इच्छा नहीं करते ।११६६

उवसाममुवणीयं, गुणमहयाजिणचरित्त सरिसं पि ।
पडिपाएंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ।१२००।
(उपशममुपनीतं, गुणमहत्तया जिनचरित्रसदृशमपि ।
प्रतिपातयन्ति कषायाः, किं पुनः शेषान् सरागस्थान् ।)

इन्हीं के माहात्म्य की दृष्टि से तीर्थंकरों के चरित्र की तुलना करने वाले उत्तम ग्रन्थ का ... पउमचरियं को ही पुराण ग्रंथ भी रचा गया है, पद्म के चरित और लोगों की लाभ ही कहा है ।१२०।

जिणवरमणु परूविया, पउमा जम्म उप्पन्ना होंति ।
अन्नाणि हन्तु पुरूवं, निययं गुण नामयं ॥१२०॥
(जिनवरानुसारतः, पद्मा जन्म उत्पन्ना भवन्ति ।
अन्ये तस्य पूर्वमिव, नियतं तस्य नामाधिपम् ॥)

जह जह दोसोवरमो, जह जह विसयेसु होइ वेरग्गं ।
तह नायव्वं तं खलु, आसन्नं मे पदं परमं ।१२०४।
(यथा यथा दोषो परमः, यथा यथा विषयेषु भवति वैराग्यम् ।
तथा ज्ञातव्यं तत् खलु, आसन्नं मे पदं परमम् ।)

ज्यों ज्यों दोषों में अनिच्छा अर्थात् दोषों से दूर रहने की वृत्ति होती है और ज्यों ज्यों विषय-कषायों के प्रति वैराग्य भावना जागृत होती है त्यों त्यों समझना चाहिये कि परमपद मोक्ष मेरे निकट आ रहा है।१२०४।

दुग्गमभवकंतारे, भममाणेहिं सुइरं पणट्ठे हिं ।
दल्लहो जिणोवदिट्ठो, सोग्गइ मग्गो इमो लद्धो ।१२०५।
(दुर्गम भवकान्तारे, भ्रममानैः सुचिरात् प्रणष्टैः ।
दुर्लभः जिनोपदिष्टः, सुगति मार्ग अयं लब्धः ।)

भव रूपी इस दुर्गम अटवी में भ्रमण करते करते चिरकाल से भटके-नष्ट हुए हमने, जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सुगति का यह दुर्लभ मार्ग पाया है।१२०५।

इणमो मुगतिगइ पहो, सुदेसिओ उ जओ जिणवरेण ।
ते धन्ना जे एयं, पहमणवज्जमोतिण्णा ।१२०६।
(एष मुक्तिगतिपथः, सुदेशितस्तु यत् जिनवरेण ।
ते धन्याः ये एतं पथमनवद्यमवतीर्णाः ।)

जो यह मोक्ष का मार्ग जिनवर ने उपदेश द्वारा दिखाया है, उस पर जो व्यक्ति अग्रसर हुए हैं, वे धन्य हैं।१२०६।

जाहे य पावियव्वं, इय परलोगे य होइ कल्लाणं ।
ताहे जिणवरभणियं, पडिवज्जह भावतो धम्मं ।१२०७।
(यदा च प्राप्तव्यं इह पर लोके च भवति कल्याणम् ।
तर्हि जिनवरभणितं, प्रतिपद्यस्व भावतः धर्मम् ।)

[illegible]

[illegible] ॥२०८॥

[illegible]

[illegible] ॥२०९॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥२१०॥

[illegible]

[illegible]

(सम्यग्दर्शन मूलं, द्विविधं धर्मं समासत उक्तम् ।
ज्येष्ठं च श्रमण धर्मं, श्रावक धर्मं च अनुज्येष्ठम् ।)

सम्यक् दर्शन का मूल संक्षेपतः दो प्रकार का धर्म बताया गया है उन दो प्रकार के धर्मों में से ज्येष्ठ धर्म है श्रमण धर्म और उस ज्येष्ठ धर्म के पश्चात् दूसरा धर्म है श्रावक धर्म ।१२११।

जा जिणवरदिट्ठाणं, भावाणं सद्दहणया सम्मं ।
अत्तणओ बुद्धीयया, सोऊण व बुद्धि मंताणं ।१२१२।
(या जिनवर दृष्टानां, भावानां श्रद्धनया सम्यक्त्वम् ।
आत्मनः बुद्ध्या, श्रुत्वा वा बुद्धिमन्तेभ्यः ।)

या तो त्रिकालदर्शी जिनेश्वरों द्वारा देखे-जाने एवं प्ररूपित भावों पर श्रद्धा करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है या तत्त्वदर्शी ज्ञान स्थावरों से सुनकर अथवा स्वयं की बुद्धि से तत्त्व चिन्तन द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त किया जा सकता है ।१२१२।

मिच्छाविगप्पिएसु य, अत्थिकुसासणोवदिट्ठेसु ।
एतं मेव मितिरुई, सुद्धं तं होइ संमत्तं ।१२१३।
(मिथ्या विकल्पितेषु च, अस्ति कुशासनोपदिष्टेषु ।
एतन्मैवमिति रुचिः, शुद्धं तद् भवति सम्यक्त्वम् ।)

मिथ्या विकल्पित कुशासनों द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों में जो कुछ है, वस्तुतः वह वैसा नहीं है, इस प्रकार की रुचि होने पर शुद्ध सम्यक्त्व होता है ।१२१३।

एगंते मिच्छत्तं, जिणाण आणा य होइ णेगंतो ।
एगं पि असद्दहिओ, मिच्छादिट्ठी जमालिव्व ।१२१४।
(एकान्ते मिथ्यात्वं, जिनानामाज्ञा च भवति नैकान्तः ।
एकमपि अश्रद्दधतः, मिथ्यादृष्टिः जमालीव ।)

वस्तुतः एकान्त में मिथ्यात्व है, जिनेश्वरों की आज्ञा अनेकान्त को स्वीकार करने की है। जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों में से

यदि कोई व्यक्ति किसी [illegible] पर भी [illegible] है [illegible]
[illegible] है [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥६२९॥
([illegible] ।
[illegible] ॥)

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥६३०॥
([illegible] ।
[illegible] ॥)

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥६३१॥
([illegible] ।
[illegible] ॥)

[illegible]

[illegible]

(भ्रष्टेन चारित्रात्, सुष्ठुतरं दर्शनं गृहीतव्यम् ।
सिद्धयन्ति चरणहीनाः, दर्शनहीना न सिद्धयन्ति ।)

यदि कदाचित् कोई व्यक्ति दुर्भाग्यवशात् चारित्र से भ्रष्ट भी हो जाय तो उसे दर्शन का अच्छी तरह दृढ़ता पूर्वक पकड़ लेना चाहिए। क्यों कि चारित्र से हीन व्यक्ति सिद्ध (कर्मबन्ध से विमुक्त) हो जाते हैं किन्तु दर्शन हीन व्यक्ति कभी सिद्ध नहीं होते।१२१८।

एत्थ य संका कंखा, वितिगिच्छा अन्नदिट्ठिय पसंसा ।
परतित्थिय संथव्वो, पंच हासंति सम्मत्तं १२१९।
(अत्र च शंकाऽऽकांक्षा, विचिकित्सा अन्य दृष्टिक प्रशंसा ।
परतीर्थिक संस्तवः, पञ्च ह्रासन्ति सम्यक्त्वम् ।)

यहां (यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि) शंका आकांक्षा, विचिकित्सा (संशय), अन्य दर्शन को मानने वालों की प्रशंसा और परतीर्थिकों की स्तुति-ये पांच दोष सम्यक्त्व का ह्रास करने वाले हैं।१२१९।

संकादि दोसरहियं, जिण सासण कुसलयाइ गुण जुत्तं ।
एयं तं जं भणियं, मूलं दुविहस्स धम्मस्स १२२०।
(शंकादि दोष रहितं, जिनशासन कुशलतादि गुणयुक्तम् ।
एतत्तद् यद् भणितं, मूलं द्विविधस्य धर्मस्य ।)

शंका, आकांक्षादि दोषों से सर्वथा दूर रहना और जिनशासन में प्रगाढ़ निष्ठा रखते हुए जिनाज्ञानुसार आचरण-प्रचार-प्रसार आदि गुणों से युक्त कौशल प्रकट करना यही दो प्रकार के धर्म (श्रमण धर्म और श्रावक धर्म) का मूल बताया गया है।१२२०।

जिण सासणे कुसलया, पभावणा य तणसेवणा य ।
विरति भत्ती य गुणा, सम्मत्त दीवगा उत्तमा पंच ।१२२१।
(जिन शासने कुशलता, प्रभावना च तृणसेवना च ।
विरतिः भक्तिश्च गुणाः, सम्यक्त्वदीपका उत्तमा पञ्च ।)

जिन शासन (जिनागमवचन) में कुशलता, प्रभावना, [illegible] सेवा (या सेवा ?), स्थिरता और भक्ति—ये पाँच सम्यक्त्व गुण सम्यक्त्व को उद्योत (प्रकाशित) करते हैं ॥२६१॥

सव्वन्नू सव्व दरिसीय, वीतरागाय जे जिणा ।
तम्हा जिणवयणमो, अवितहमिति भावतो गुणह ।२६२।
(सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनश्च, वीतरागाश्च जिनाः ।
तस्मात् जिनवचनं, अवितथमिति भावतः जानीहि ।)

क्योंकि जिनेश्वर भगवान् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी और वीतराग होते हैं, अतः जिनेश्वर भगवान् की वाणी [illegible] होती है [illegible] ॥२६२॥

[illegible] मग्गं, जिणवयणं नवनियं महाविजयं ।
[illegible], गुणवंतोमि गणिरिसी ।२६३।
([illegible] महाविजयम् ।
[illegible], गणिरिसम् ।)

[illegible] ॥२६३॥

[illegible] ।
[illegible] ॥२६४॥
([illegible] ।
[illegible] ।)

[illegible]

नाणाहिंतो चरणं. पंचहिं समिइहिं तिहिं गुत्तीहिं ।
एयं सीलं भणियं, जिणेहिं तेलोक्कदंसी हि ।१२२५।
(ज्ञानेभ्यः चरणं, पंचभिर्समितिभिस्त्रिभिगुप्तिभिः ।
एतत् शीलं भणितं, जिनैस्त्रैलोक्यदर्शिभिः ।

ज्ञान से पांच समितियों और तीन गुप्तियों सहित चारित्र की उपलब्धि होती है । त्रैलोक्यदर्शी जिनेश्वरों ने इसे शील बताया है ।१२२५।

सीले दोन्नि वि नियमा, सम्मत्तं तह य होइ नाणं च ।
तिण्हं वि समाओगे, मोक्खो जिण सासणे भणिओ ।१२२६।
(शीले द्वावपि नियमात्, सम्यक्त्वं तथा च भवति ज्ञानं च ।
त्रयाणामपि समायोगे, मोक्षः जिनशासने भणितः ।)

शील में नियमतः सम्यक्त्व और ज्ञान दोनों ही होते हैं । जिन शासन में इन तीनों (शील, सम्यक्त्व और ज्ञान) के समायोग पर मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है १-२६।

असरीरा जीव घणा, उवउत्ता दंसणे य नाणे यं ।
सागारमणागारं. लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ।१२२७।
(अशरीराः जीवघना, उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च ।
सागारमनागारं, लक्षणमेतत्तु सिद्धानाम् ।)

अशरीरी अर्थात् अरूपी, शरीर न होने के कारण केवल जीव-स्वरूप—अतः एव घन ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप अथवा ज्ञान-दर्शन की सज्ञा वाले तथा सागार अणगार-यह सिद्धों का स्वरूप है ।१२२७।

सव्वट्ठ विमाणाओ, सव्वोपरि सा उ थूमिया ।
बारसहिं जोयणेहिं, इसिपभार पुढवीओ ।१२२८।
(सर्वार्थ विमानात् सर्वोपरि सा तु स्तूपिका ।
द्वादशभिर्योजनैः, ईषत्प्राग्भारा नाम पृथिवीनः ।)

सर्वार्थसिद्धि विमान से १२ योजन ऊपर, लोक में सर्वोपरि अर्थात् लोक के अग्रभाग पर, ईषत्प्राग्भार नाम की अष्टम भूमि (सिद्ध शिला) छत्राकार से स्थित है ॥६५८॥

णिम्मल दप्पण सरिसा, सुगंध सोहंत हार परिपुण्णा ।
[illegible] णियवंहि, उत्ताणय छत्त संठाणा ॥६५९॥
(निर्मल दर्पणसदृशा, सुगन्ध[illegible] हार परिपूर्णा ।
[illegible] तु जिनवरैः, उत्तानकच्छत्र संस्थाना ॥)

[निर्मल दर्पण सदृश, [illegible] हार, [illegible] ॥६५९॥

[illegible] ॥६६०॥
[illegible] ॥)

[illegible] ॥६६१॥

[illegible] ॥६६२॥
[illegible] ॥)

[illegible]

वह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी ४५,०००० (पैंतालीस लाख) योजन विस्तीर्ण और तीन गुना अधिक योजनों की परिधि वाली है-यह जानना चाहिये ॥१२३१॥

एगा जोयण कोडी, बायालीसं च सयं संहस्साइं ।
तीस च सहस्साइं, दोयसयाअ ऊणवीसाउ ।१२३२।
(एका योजनकोटिः, द्वात्रिंशच्च शत सहस्राणि ।
त्रिशच्च सहस्राणि, द्वे शते च एकोनविंशतिस्तु)

उस पृथ्वी का, एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उन्नीस योजन ॥१२३२॥

[अ] खेत्त समत्थ वित्थिन्ना, अट्ठेव जोयणाइं बाहल्लं ।
परिहायइ चरिमंते, मच्छि य पत्ताउ तणुयतरी ।१२३३।
(क्षेत्र समस्त विस्तीर्णा, अष्टावेव योजनानि बाहल्या ।
परिहीयते चरमान्ते, मक्षिकापत्रात्तनुतरी ।)

विस्तृत क्षेत्रफल और मध्य में आठ योजन बाहल्य (दीर्घता-अथवा मोटाई) है। वह पृथ्वी मध्य भाग से चारों ओर उत्तरोत्तर पतली होते होते अन्त में मक्खी के पंख से अधिक प्रतली है।१२३३।(अ)

गंतूण जोयणं तु, परिहाइ अंगुल पहुत्तं ।
संखतूल संनिगासा+, परंता होति पतणु सा १२३३।
(गत्वा योजनं तु, परि हीयते अंगुल पृथक्त्वं ।
शंखतूल संनिकाशा, परं-परंतावत् भवति प्रतनु सा ।)

मध्य भाग से लेकर वह शंख अथवा रूई के समान वर्ण वाली ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी क्रमशः एक एक योजन के अन्तर पर एक एक अंगुल प्रमाण पतली होते होते अंत में नितान्त पतली हो गयी है।१२३३। (ब)

+ शंख तथा अर्कतूलवत् श्वेतवर्णा ।

अज्जुणसुवण्णगमई, नामेण सुदंसणा पमाणा य ।
[illegible] संठिया, छत्तागारा य सा पुढवी ।१२३४।
(अर्जुनस्वर्णमयी, नाम्ना सुदर्शना प्रमाणा च ।
[illegible], छत्राकारा च सा पृथ्वी ।)

अर्जुन स्वर्णमयी (श्वेत स्वर्णमयी — Mate of Platinum) [illegible]

ईसिं पब्भाराए उवरिं, खलु जोयणस्स जो कोसो ।
कोसस्स [य] छब्भाए, सिद्धाणो गाहणा भणिया ।१२३५।
(ईषत्प्राग्भाराया उपरि, खलु योजनस्य यः क्रोशः ।
क्रोशस्य [च] षड्भागे, सिद्धानामवगाहना भणिता ।)

[illegible]

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झई ।१२३६।
(क्व प्रतिहताः सिद्धाः, क्व सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
क्व बोन्दिं त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिध्यन्ति ।)

[illegible]

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झई ।१२३७।

[illegible]

(अलोके प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता ।
इह बोन्दिं (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयन्ति ।)

अलोक में सिद्धों की गति प्रतिहत (अवरुद्ध) हुई अर्थात् रुकी। वे लोक के (ऊपरी) अग्र भाग में प्रतिष्ठित हैं। यहां (तिर्यक लोक में) देह त्याग, वहां लोकाग्र में जाकर सिद्ध होते हैं।१२३८।

दीहं वा हस्सं वा, जं संठाणं तु आसि पुव्वभवे ।
तत्तो तिभाग हीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिता ।१२३८।
(दीर्घं वा ह्रस्वं वा, यत् संस्थानं तु आसीत् पूर्वभवे ।
ततः त्रिभागहीनाः, सिद्धानामवगाहनो भणिता ।)

पूर्व भव में, दीर्घ अथवा ह्रस्व जो भी शरीर का संस्थान था, उससे तीन भाग कम अर्थात् एक चौथाई अवगाहना कही गई है।१२३८।

जं संठाणं तु इहं, भवं चयन्तस्स चरिम समयम्मि ।
आसी य परासघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ।१२३९)
(यत् संस्थानं तु इह, भवं त्यजतः चरम समये ।
आसीत् च प्रदेशघनं, तत् संस्थानं तत्र तस्य ।)

यहां अन्तिम काल में भव अर्थात् जन्म-मरण का अन्त करते समय शरीर के प्रदेश घन रूपी शरीर का संस्थान था वही संस्थान उस सिद्धयमान व्यक्ति का सिद्ध हो जाने पर वहां उस ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) पर रहता है।१२३९।

उत्ताण उच्च पासिल्ल, उच्चट्ठियओनिसन्नओ चेव ।
जो जह करेइ कालीं (कालं) सो तह उववज्जए सिद्धो ।१२४०।
(उत्तान-उच्चपार्श्विल, उच्चैस्थितःनिषण्णश्चैव ।
यः यथा करोति कालं, स तथा उपपद्यते सिद्धः ।)

उत्तानक, पार्श्व, किसी पार्श्व पर बैठे, ऊपर बैठे और पद्मासन से बैठे आदि भिन्न भिन्न आसन से जो सिद्ध प्रमाण और उत्कृष्ट [illegible] का कथन करता है वह उसी आसन से [illegible] मुक्ति पर सिद्धावस्था में स्थित रहता है ॥१२४॥

तिण्णिसया तेत्तीसा, धणु ति भागो य होइ बोधव्वो ।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥१२५॥
(त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशत् धनुस्त्रिभागश्च भवति बोद्धव्यः ।
एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टावगाहना भणिता ॥)

तीन सौ तैंतीस धनुष और एक धनुष का तीसरा भाग—यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना बताई गई है ॥१२५॥

चत्तारि य रयणीओ, रयणि तिभागूणिया य बोधव्वा ।
एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमओगाहणा भणिया ॥१२६॥
(चतस्रश्च रत्नयः, रत्निस्त्रिभागोनिका च बोद्धव्या ।
एषा खलु सिद्धानां, मध्यमावगाहना भणिता ॥)

चार हाथ और तीसरा भाग कम एक हाथ—यह सिद्धों की मध्यम अवगाहना बताई गई है ॥१२६॥

एगा य होइ रयणी, अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया ।
एसा खलु सिद्धाणं, जहन्न ओगाहणा भणिया ॥१२७॥
(एका च भवति रत्निः, अष्टैव चाङ्गुलानि साधिकानि ।
एषा खलु सिद्धानां, जघन्यावगाहना भणिता ॥)

[illegible] ॥१२७॥

([illegible] ।
[illegible] ॥१२८॥)

(यत्र चैकः सिद्धः, तत्र अनन्ताः भवरजोविमुक्ताः ।
अन्योऽन्यं समवगाढाः, स्पृष्टाः लोकान्ताः लोकान्ते)

उस ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर जहां एक सिद्ध है, वहां जन्म-मरण रूपी भव की रज से सर्वथा विमुक्त अनन्त सिद्ध हैं। लोक (संसार) का अन्त कर देने वाले वे अनन्त सिद्ध लोकान्त अर्थात् लोक के अग्रभाग पर एक परस्पर एक दूसरे से समवगाढ़ और स्पृष्ट हैं।१२४३ (ब)

फुसइ अणंते सिद्धे, सव्व पदेसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा, देस पदेसेहिं जे पुट्ठा ।१२४४।
(स्पृशन्ति अनन्तान् सिद्धान् सर्व प्रदेशैः नियमशः सिद्धाः ।
तेऽपि असंख्यात गुणिताः, देशप्रदेशैर्येस्पृष्टाः ।)

नियमतः सिद्ध अपने सर्व आत्म प्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श करते हैं. इनके अतिरिक्त उनके द्वारा जो सिद्ध उनके देश अर्थात् कतिपय आत्म प्रदेशों से स्पृष्ट हैं वे सर्वात्म प्रदेशों से स्पृष्ट सिद्धों से असंख्यात गुना अधिक हैं।१२४४।

केवलनाणुवउत्ता, जाणंति सव्वभावगुणभावे ।
पासंति सव्वतो खलु, केवलदिट्ठी अणंताहिं ।१२४५।
(केवलज्ञानोपयुक्ताः, जानन्ति सर्वभाव गुणभावान् ।
पश्यन्ति सर्वतो खलु, केवलदृष्ट्या अनन्ताभिः ।)

केवल-ज्ञान में उपयुक्त वे लोकालोक के त्रिकालवर्ती भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी भावों और गुणों को जानते तथा अनन्त केवल-दृष्टि द्वारा सब देखते हैं।१२४५।

न वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं न वि य सव्व देवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगताणं १२४६।

[illegible] मनुष्याणां, तद् सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम्।
यद् सिद्धानां सौख्यं, अव्याबाधं उपगतानाम्॥

अव्याबाध सौख्य को प्राप्त हुए सिद्धों को जो सुख है वह सुख न तो मनुष्यों में से किसी को प्राप्त है और न सब देवताओं में से किसी को ही ॥१३८॥

सुरगण सुह समत्तं, सव्वद्धा पिंडियं अणंत गुणं।
न वि पावइ मुत्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं ॥[illegible]॥
सुरगण-सुखं समस्तं सर्वाद्धा-पिण्डितं अनन्तगुणम्।
नापि प्राप्नोति मुक्तिसुखं, अनन्तैरपि वर्गवर्गैः॥

[illegible]

(यथा नाम कोऽपि म्लेच्छः, नगर गुणान् बहुविधानपि जानन्।
न शक्यते परिकथयितुं उपमायास्तत्र अभावात्।)

जिस प्रकार कोई म्लेच्छ (वर्षों तक एक समृद्ध नगर में राजा का अतिथि रहकर पुन अपने म्लेच्छ बन्धुओं के बीच म्लेच्छ देश में जावे तो वह) नगर के बहुत से गुणों अथवा सुखों का भली भांति जानता हुआ भी. उनका कथन करने में असमर्थ ही रहता है, क्यों कि उसके उस म्लेच्छ देश में नगर के गुणों का अथवा सुखों का वर्णन करने के लिये कोई उपमा ही नहीं है।१२४९।

इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं नत्थि तस्स उवमंउ ।
किंचि विसेसेणेत्तो, सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ।१२५०।
(एवं सिद्धानां सौख्यं, अनुपमं नास्ति तस्य उपमा तु ।
किंचित् विशेषेण इतः, सादृश्यमेतस्य शृणुत वक्ष्यामि ।)

इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है. उसको बताने के लिये समस्त संसार में कोई उपमा है ही नहीं। इस से मिलता जुलता पर कुछ विशेष दृष्टान्त मैं बताऊंगा, उसे सुनो ।१२५०।

जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।
तण्हा छुहाविमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमिय तित्तो ।१२५१।
(यथा सर्वकामगुणिकं, पुरुषः भुक्त्वा भोजनं कोऽपि ।
तृष्णा-क्षुधाविमुक्तः, तिष्ठेत् यथा अमित तृप्तः ।)

जिस प्रकार कोई पुरुष पुष्टि तुष्टि आदि सब प्रकार के गुणों से सम्पन्न अत्यन्त स्वादु भोजन खाकर तृष्णा तथा क्षुधा से विमुक्त हो पूर्णतः तृप्तावस्था में बैठता है ।१२५१।

इय निच्चकालतित्ता, अतुलं निव्वाणमुवगता सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ।१२५२।

[illegible] निष्कम्प[illegible] [illegible] निर्वाणमुपगताः सिद्धाः ।
[illegible], तिष्ठन्ति सुखिनः सुखं प्राप्ताः ॥)

इसी प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुए सिद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्ध-सुख को प्राप्त कर [illegible] [illegible] हैं ।१२५२।

जह वि य ते अभेदा, अवेयणा निम्ममा निसंगा य ।
संजोग विप्पमुक्का, अपएसा निच्च एग संठाणा ।१२५३।
(यथापि च ते अभेदाः, अवेदनाः निर्ममा निःसंगाश्च ।
संयोग विप्रमुक्ता, अप्रदेशा नित्य एक संस्थाना ॥)

जहाँ पर (सिद्ध स्थान में) वे भेद रहित, वेदना रहित, ममत्व रहित निःसंग, संयोग से विप्रमुक्त, प्रदेशों से रहित, नित्य एक ही संस्थान में स्थित —१२५३।

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ।१२५४।
([illegible] [illegible], [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] सिद्धाः ॥)

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ।१२५५।
[illegible] ।
[illegible] ॥)

[illegible]

सोउं तित्थोगालिं, जिणवरवेसहस्स वद्धमाणस्स।
पणमह सुगइगयाणं, सिद्धाणं निट्ठितट्ठाणं ।१२५६।
(श्रुत्वा तीर्थोद्गालिं, जिनवरवृषभास्य वर्द्धमानस्य।
प्रणमत सुगतिगतान्, सिद्धान् निष्ठिता र्थान् ।)

जिनेश्वरों में वृषभ तुल्य वर्द्धमान द्वारा वर्णित तीर्थ प्रवाह को सुनकर सुगति-मुक्ति में विराजमान सर्वकाम सिद्ध सिद्धों को प्रणाम करो ।१२५६।

भद्दं सव्व जगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स।
भद्दं सुरासुर नमं सियस्स, भद्दं धुअरयस्य ।१२५७।
(भद्रं सर्व जगदुद्योत कस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य।
भद्रं सुरासर नमस्यितस्य, भद्रं धुतरजसः।)

केवल्यालोक से समग्र संसार को प्रकाशित करने वाले का भद्र कल्याण हो, जिनेन्द्र वीर का कल्याण हो, देवासुरों द्वारा वन्दनी का कल्याण हो कर्मरंज को नष्ट कर देने वाले का कल्याण हो ।१२५७।

गुण गहण भवण सुतरयण भरित दंसण विसुद्ध रत्थागा।
संघनगर! भद्दं ते, अक्खंड चारित्र पागारा ।१२५८।
(गुण गहन भवन, श्रुतरत्न भरित दर्शन विशुद्ध रथ्याक!
संघनगर! भद्रं ते, अखण्ड चारित्र प्राकारः।).

अमित गुण रूपी भवनों से व्याप्त होने के कारण अति गहन! आचारांगादि अनेक सुखद श्रुतरत्नों से परिपूर्ण! मिथ्यात्व आदि कचरे से रहित विशुद्ध दर्शन रूपी रथ्याओं वाले! और अखण्ड चारित्र रूपी प्राकार द्वारा सदा सुरक्षित ओ संघ-नगर! तुम्हारा कल्याण हो ।१२५८।

जं इद्विवतं सुयाओ, अहव मतीए य थोव दोसेण।
तं च विऊव नाउं, सोहियव्वं सुयधरेहिं ।१२५९।

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

॥ गाथा [illegible] श्लोक [illegible] ॥
इति श्री [illegible] समाप्तम् ॥
॥ [illegible] ॥





जम्मणमरणजलोघं दुखयरकिलेससोगवीचीयं ।
इय संसार-समुद्दं तरंति चदुरंगणावाए ।।

यह संसार समुद्र जन्म-मरण रूप जल प्रवाह वाला, दुःख, क्लेश और शोक रूप तंरगों वाला है । इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप चतुरंग नाव से मुमुक्षुजन पार करते हैं ।

